मीरा चरित

- सौभाग्य कुँवरी राणावत

मीरा चरित

(नोट: यह सम्पूर्ण पुस्तक नहीं है, पुस्तक का सार मात्र है जो कि विभिन्न भागों में विभक्त स्त्रोतों से एकत्र करके तैयार किया गया है।)

लेखिका :
- सौभाग्य कुँवरी राणावत

मीरा चरित

भारत के एक प्रांत राज्यस्थान का क्षेत्र है मारवाड़ - जो अपने वासियों की शूरता, उदारता, सरलता और भक्ति के लिये प्रसिद्ध रहा है। मारवाड़ के शासक राव दूदा सिंह बड़े प्रतापी हुए। उनके चौथे पुत्र रत्नसिंह जी और उनकी पत्नी वीर कुंवरी जी के यहाँ मीरा का जन्म संवत 1561 (1504 ई०) में हुआ।

राव दूदा जी जैसे तलवार के धनी थे, वैसे ही वृद्धावस्था में उनमें भक्ति छलकी पड़ती थी। पुष्कर आने वाले अधिकांश संत मेड़ता आमंत्रित होते और सम्पूर्ण राजपरिवार सत्संग-सागर में अवगाहन कर धन्य हो जाता।

मीरा का लालन पालन दूदा जी की देख-रेख में होने लगा। मीरा की सौंदर्य सुषमा अनुपम थी। मीरा के भक्ति संस्कारों को दूदा जी पोषण दे रहे थे। वर्ष भर की मीरा ने कितने ही छोटे-छोटे कीर्तन दूदा जी से सीख लिए थे। किसी भी संत के पधारने पर मीरा दूदा जी की प्रेरणा से उन्हें अपनी तोतली भाषा में भजन सुनाती और उनका आशीर्वाद पाती। अपने बाबोसा की गोद में बैठकर शांत मन से संतो से कथा वार्ता सुनती।

दूदा जी की भक्ति की छत्रछाया में धीरे-धीरे मीरा पाँच वर्ष की हुई। एक बार ऐसे ही मीरा राजमहल में ठहरे एक संत के समीप प्रातःकाल जा पहुँची। वे उस समय अपने ठाकुर जी की पूजा कर रहे थे। मीरा प्रणाम कर पास ही बैठ गई और उसने जिज्ञासा वश कितने ही प्रश्न पूछ डाले, यह छोटे से ठाकुर जी कौन है ? आप इनकी कैसे पूजा करते

हैं ? संत भी मीरा के प्रश्नों का एक-एक कर उत्तर देते गये। फिर मीरा बोली, "यदि यह मूर्ति आप मुझे दे दें तो मैं भी इनकी पूजा किया करूँगी।" संत बोले, "नहीं बेटी ! अपने भगवान किसी को नहीं देने चाहिए। वे हमारी साधना के साध्य हैं।"

मीरा की आँखें भर आई। निराशा से निश्वास छोड़ उसने ठाकुर जी की तरफ़ देखा और मन ही मन कहा - "यदि तुम स्वयं ही न आ जाओ तो मैं तुम्हें कहाँ से पाऊँ?" और मीरा भरे मन से उस मूर्ति के बारे में सोचती अपने महल की ओर बढ़ गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल मीरा उन संत के निवास पर ठाकुर जी के दर्शन हेतु जा पहुँची। मीरा प्रणाम करके एक तरफ बैठ गई। संत ने पूजा समापन कर मीरा को प्रसाद देते हुए कहा, "बेटी, तुम ठाकुर जी को पाना चाहती हो न!" मीरा: बाबा, किन्तु यह तो आपकी साधना के साध्य है (मीरा ने कांपते स्वर में कहा)। बाबा: अब ये तुम्हारे पास रहना चाहते हैं। तुम्हारी साधना के साध्य बनकर, ऐसा मुझे इन्होने कल रात स्वप्न में कहा कि अब मुझे मीरा को दे दो। (कहते-कहते बाबा के नेत्र भर आये) इनके सामने किसकी चले ? मीरा : क्या सच ? (आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से बोली जैसे उसे अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ।) बाबा: (भरे कण्ठ से बोले) हाँ। पूजा तो तुमने देख ही ली है। पूजा भी क्या, अपनी ही तरह नहलाना, धुलाना, वस्त्र पहनाना और श्रृंगार करना, खिलाना-पिलाना। केवल आरती और धूप विशेष है। मीरा: किन्तु वे मन्त्र, जो आप बोलते हैं, वे तो मुझे नहीं आते। बाबा: मन्त्रों की आवश्यकता नहीं है बेटी। ये मन्त्रों के वश में नहीं रहते। ये तो मन की भाषा समझते हैं। इन्हें वश में करने का एक ही उपाय है कि इनके सम्मुख ह्रदय खोलकर रख दो। कोई छिपाव या दिखावा नहीं करना। ये धातु के दिखते है पर हैं नहीं। इन्हें अपने जैसा ही मानना।

मीरा ने संत के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और जन्म-जन्म के भूखे की भाँति अंजलि फैला दी। संत ने अपने प्राणधन ठाकुरजी को मीरा को देते हुए उसके सिर पर हाथ रखकर गदगद कण्ठ से आशीर्वाद दिया। "भक्ति महारानी अपने पुत्र ज्ञान और वैराग्य सहित तुम्हारे ह्रदय में निवास करें, प्रभु सदा तुम्हारे सानुकूल रहें।" मीरा ठाकुरजी को दोनों हाथों से छाती से लगाये उन पर छत्र की भांति थोड़ी

झुक गई और प्रसन्नता से डगमगाते पदों से वह अन्तःपुर की ओर चली।

कृपण के धन की भाँति मीरा ठाकुरजी को अपने से चिपकाये माँ के कक्ष में आ गई। वहाँ एक झरोखे में लकड़ी की चौकी रख उस पर अपनी नई ओढ़नी बिछा ठाकुरजी को विराजमान कर दिया। थोड़ी दूर बैठ उन्हें निहारने लगी। रह-रह कर आँखों से आँसू झरने लगे।

आज की इस उपलब्धि के आगे सारा जगत तुच्छ हो गया। जो अब तक अपने थे वे सब पराये हो गये और आज आया हुआ यह मुस्कुराता हुआ चेहरा ऐसा अपना हुआ जैसा अब तक कोई न था। सारी हँसी खुशी और खेल तमाशे सब कुछ इन पर न्यौछावर हो गया। ह्रदय में मानों उत्साह उफन पड़ा कि ऐसा क्या करूँ, जिससे यह प्रसन्न हो। अहा, कैसे देख रहा है मेरी ओर? अरे मुझसे भूल हो गई। तुम तो भगवान हो और मैं आपसे तू तुम कर बात कर गई। आप कितने अच्छे हैं जो स्वयं कृपा कर उस संत से मेरे पास चले आये। मुझसे कोई भूल हो जाये तो आप रूठना नहीं, बस बता देना।

मीरा के यूँ अचेत होने से माँ कुछ व्याकुल सी गई और उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए सब बात रतन सिंह जी को बताई। वीर कुंवरी चाहती थी कि मीरा महल में और राजकुमारियों की तरह शस्त्राभ्यास, राजनीति, घुड़सवारी और घर गृहस्थी के कार्य सीखे ताकि वह ससुराल में जा कर प्रत्येक परिस्थिति का सामना कर सके। पर इधर दूदा जी के संरक्षण में मीरा ने योग और संगीत की शिक्षा प्रारम्भ कर दी। मीरा का झुकाव ठाकुर पूजा में दिन प्रतिदिन बढ़ता देख माँ को स्वाभाविक चिन्ता होती।

मीरा को पूजा और शिक्षा के बाद जितना अवकाश मिलता वह दूदाजी के साथ बैठ श्री गदाधर जोशी जी से श्री मदभागवत सुनती। आने वाले प्रत्येक संत का सत्संग लाभ लेती। उसके भक्तियुक्त प्रश्नों को सुनकर सब मीरा की प्रतिभा से आश्चर्यचकित हो जाते। माँ को मीरा का यूँ संतो से बात करना उनके समक्ष भजन गाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था पर दूदाजी जी की लाड़ली मीरा को कुछ कहते भी नहीं बनता था।

दूदाजी की छत्रछाया में मीरा की भक्ति बढ़ने लगी। वृंदावन से पधारे बाबा बिहारीदास जी से मीरा की नियमित संगीत शिक्षा भी प्रारम्भ

हो गई। रनिवास में यही चर्चा होती - अहा, इस रूप गुण की खान को अन्नदाता हुकम न जाने क्यों साधु बना रहे हैं?

एक दिन मीरा दूदाजी से बोली, "बाबोसा, मुझे अपने गिरधर के लिए अलग कक्ष चाहिए, माँ के महल में छोरे-छोरी मिलकर उनसे मिलकर छेड़छाड़ करते हैं।"

दूदाजी ने अपनी लाडली के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा, "हाँ बेटी क्यों नहीं।"

और दूसरे ही दिन महल के परकोटे में लगी फुलवारी के मध्य गिरधर गोपाल के लिए मन्दिर का निर्माण आरम्भ हो गया।

एक दिन मीरा अपने गिरधर की पूजा से निवृत्त हो माँ के पास बैठी थीं तो अचानक बाहर से आने वाले संगीत से उसका ध्यान बंट गया। वह झट से बाहर झरोखे से देखने लगी। भाबू! यह इतने लोग सज धज करके गाजे बाजे के साथ कहाँ जा रहे हैं?

यह तो बारात आई है बेटा! यह उत्तर देते माँ की आँखों में सौ-सौ सपने तैर उठे। बारात क्या होती है भाबू! यह इतने गहने पहन कर हाथी पर कौन बैठा है?

यह तो बींद (दूल्हा) है बेटी। बहू को ब्याहने जा रहा है। अपने नगर सेठ जी की बेटी से विवाह होगा। माँ ने दूल्हे की तरफ देखते हुये कहा। सभी बेटियों के वर होते हैं क्या? सभी से ब्याह करने बींद आते हैं? मीरा ने पूछा। हाँ बेटा! बेटियों को तो ब्याहना ही पड़ता है। बेटी बाप के घर में नहीं खटती। चलो, अब नीचे चले। माँ ने मीरा को झरोखे से उतारने का उपक्रम किया।

मीरा ने अपनी ही धुन में मग्न कहा, "तो मेरा बींद कहाँ है भाबू?" "तेरा वर?" माँ हँस पड़ी।" मैं कैसे जानूँ बेटी कि तेरा वर कहाँ है, जहाँ के विधाता ने लेख लिखे होंगे, वहीं जाना पड़ेगा। मीरा उछल कर दूर खड़ी हो गई और जिद करती हुईं बोली, "आप मुझे बताइये मेरा वर कौन है?" उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। माँ मीरा की ऐसी जिद देख आश्चर्य में पड़ गई और बात बनाते हुये बोली, "बड़ी माँ से या अपने बाबोसा से पूछना। "नहीं मैं किसी से नहीं पूछुँगी, बस आप ही मुझे बतलाईये" मीरा रोते-रोते भूमि पर लोट गई।

माँ ने मीरा को मनाते हुए उठाया और बोलीं, "अच्छा मैं बताती हूँ

तेरा वर। तू रो मत। इधर देख, ये कौन है?" "ये?" ये तो मेरे गिरधर गोपाल हैं। "अरी पागल, यही तो तेरे वर हैं। उठ, कब से एक ही बात की रट लगाई है। "माँ ने बहलाते हुये कहा।

"क्या सच भाबू? सुख भरे आश्चर्य से मीरा ने पूछा। "सच नहीं तो क्या झूठ है? चल मुझे देर हो रही है।" मीरा ने गिरधर की तरफ ऐसे देखा, मानों आज उन्हें पहली बार ही देखा हो, ऐसे चाव और आश्चर्य से देखने लगी। मीरा रोना भूल गई। माँ का सहज ही कहा एक-एक शब्द उसकी नियति भी थी और जीने के लिये सम्बल और आश्वासन भी।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।।
मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु आपनो न कोई।।
छांडि दई कुलकी कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि लोकलाज खोई।।
अंसुवन जल सीचि सीचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आंणद फल होई।।
दूध की मथनियाँ बड़े प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिये कोई।।
भगति देखि राजी हुई जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर तारो अब मोही।।

महल के परकोटे में लगी फुलवारी के मध्य गिरधर गोपाल के लिए मन्दिर बन कर दो महीनों में तैयार हो गया। धूमधाम से गिरधर गोपाल का गृह प्रवेश और विधिपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा हुईं। मन्दिर का नाम रखा गया "श्याम कुन्ज"। अब मीरा का अधिकतर समय श्याम कुन्ज में ही बीतने लगा।

ऐसे ही धीरे-धीरे समय बीतने लगा। मीरा पूजा करने के पश्चात् भी श्याम कुन्ज में ही बैठे-बैठे सुनी और पढ़ी हुई लीलाओं के चिन्तन में प्रायः खो जाती। वर्षा के दिन थे। चारों ओर हरितिमा छायी हुई थीं। ऊपर गगन में मेघ उमड़-घुमड़ कर आ रहे थे। आँखें मूँदे हुये मीरा गिरधर के सम्मुख बैठी है। बंद नयनों के समक्ष उमड़ती हुई यमुना के तट पर मीरा

हाथ से भरी हुई मटकी को थामें बैठी है। यमुना के जल में श्याम सुंदर की परछाई देख वह पलक झपकाना भूल गई। यह रूप, ये कारे कजरारे दीर्घ नेत्र। मटकी हाथ से छूट गई और उसके साथ न जाने वह भी कैसे जल में जा गिरी। उसे लगा कोई जल में कूद गया और फिर दो सशक्त भुजाओं ने उसे ऊपर उठा लिया और घाट की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मुस्कुरा दिया। वह यह निर्णय नहीं कर पाई कि कौन अधिक मारक है - दृष्टि या मुस्कान? निर्णय हो भी कैसे? बुद्धि तो लोप हो गई, लज्जा ने देह को जड़ कर दिया और मन,? मन तो बैरी बन उनकी आँखों में जा समाया था। उसे शिला के सहारे घाट पर बिठाकर वह मुस्कुराते हुए जल से उसका घड़ा निकाल लाये। हँसते हुये अपनत्व से कितने ही प्रश्न पूछ डाले उन्होंने ब्रज भाषा में। अमृत सी वाणी वातावरण में रस सी घोलती प्रतीत हुईं।

"थोड़ा विश्राम कर ले, फिर मैं तेरो घड़ो उठवाय दूँगो। कहा नाम है री तेरो? बोलेगी नाय? मो पै रूठी है क्या? भूख लगी है का? तेरी मैया ने कछु खवायो नाय? ले, मो पै फल हैं। खावेगी?" उन्होंने फेंट से बड़ा सा अमरूद और थोड़े जामुन निकाल कर मेरे हाथ पर धर दिये - "ले खा।"

मैं क्या कहती, आँखों से दो आँसू ढुलक पड़े। लज्जा ने जैसे वाणी को बाँध लिया था। "कहा नाम है तेरो?" "मी....रा" बहुत खींच कर बस इतना ही कह पाई। वे खिलखिला कर हँस पड़े। "कितना मधुर स्वर है तेरो री।"

"श्याम सुंदर ! कहाँ गये प्राणाधार !" वह एकाएक चीख उठी। समीप ही फुलवारी से चम्पा और चमेली दौड़ी आई और देखा मीरा अतिशय व्याकुल थीं और आँखों से आँसू झर रहे थे। दोनों ने मिल कर शैय्या बिछाई और उस पर मीरा को यत्न से सुला दिया।

सांयकाल तक जाकर मीरा की स्थिति कुछ सुधरी तो वह तानपुरा ले गिरधर के सामने जा बैठी। फिर ह्रदय के उदगार प्रथम बार पद के रूप में प्रसरित हो उठे -

मेहा बरसबों करे रे, आज तो रमैया म्हाँरे घरे रे।
नान्हीं नान्हीं बूंद मेघघन बरसे, सूखा सरवर भरे रे॥
घणा दिनाँ सूँ प्रीतम पायो, बिछुड़न को मोहि डर रे।

मीरा कहे अति नेह जुड़ाओ, मैं लियो पुरबलो वर रे॥

पद पूरा हुआ तो मीरा का ह्रदय भी जैसे कुछ हल्का हो गया। पथ पाकर जैसे जल दौड़ पड़ता है वैसे ही मीरा की भाव सरिता भी शब्दों में ढलकर पदों के रूप में उद्धाम बह निकली।

या मोहन के रूप लुभानी।
सुंदर बदन कमलदल लोचन, बांकी चितवन मंद मुसकानी॥
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर बारूं, चरणकंवल मीरा लपटानी॥

मीरा अभी भी तानपुरा ले गिरधर के सम्मुख श्याम कुन्ज में ही बैठी थी। वह दीर्घ कजरारे नेत्र, वह मुस्कान, उनके विग्रह की मदमाती सुगन्ध और वह रसमय वाणी सब मीरा के स्मृति पटल पर बार-बार उजागर हो रही थी।

मेरे नयना निपट बंक छवि अटके।
देखत रूप मदनमोहन को पियत पीयूख न भटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो अति सुगन्ध रस अटके॥
टेढ़ी कटि टेढ़ी कर मुरली टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी गिरधर नागर नटके॥

मीरा को प्रसन्न देखकर मिथुला समीप आई और घुटनों के बल बैठकर धीमे स्वर में बोली - "जीमण पधराऊँ बाईसा (भोजन लाऊँ) ?" "अहा मिथुला! अभी थोड़ा ठहर जा।" मीरा के ह्रदय पर वही छवि बार-बार उबर आती थी। फिर उसकी उंगलियों के स्पर्श से तानपुरे के तार झंकृत हो उठे -

नन्दनन्दन दिठ (दिख) पड़िया माई,
साँ..........वरो............. साँ.........वरो।
नन्दनन्दन दिठ पड़िया माई,
छाड़या सब लोक लाज,
साँ..........वरो............. साँ.........वरो।
मोरचन्द्र का किरीट, मुकुट जब सुहाई।

केसररो तिलक भाल, लोचन सुखदाई।
साँ.........वरो............. साँ.........वरो।
कुण्डल झलकाँ कपोल, अलका लहराई,
मीरा तज सरवर जोऊ,मकर मिलन धाई।
साँ.........वरो...... .... साँ.........वरो।
नटवर प्रभु वेश धरिया, रूप जग लुभाई,
गिरधर प्रभु अंग अंग, मीरा बलि जाई।
साँ.........वरो.............. साँ.........वरो।

"अरी मिथुला, थोड़ा ठहर जा। अभी प्रभु को रिझा लेने दे। कौन जाने ये परम स्वतंत्र हैं, कब भाग निकलें? आज प्रभु आयें हैं तो यहीं क्यों न रख लें?"

मीरा जैसे धन्यातिधन्य हो उठी। लीला चिन्तन के द्वार खुल गये और अनुभव की अभिव्यक्ति के भी। दिन पर दिन उसके भजन पूजन का चाव बढ़ने लगा। वह नाना भाँति से गिरधर का श्रृंगार करती कभी फूलों से और कभी मोतियों से। सुंदर पोशाकें बना धारण कराती। भाँति-भाँति के भोग बना कर ठाकुर को अर्पण करती और पद गा कर नृत्य कर उन्हें रिझाती। शीत काल में उठ-उठ कर उन्हें ओढ़ाती और गर्मियों में रात को जागकर पंखा झलती। तीसरे -चौथे दिन ही कोई न कोई उत्सव होता।

मीरा की भक्ति और भजन में बढ़ती रूचि देखकर रनिवास में चिन्ता व्याप्त होने लगी। एक दिन वीरमदेव जी (मीरा के सबसे बड़े काका) को उनकी पत्नी श्री गिरिजा जी ने कहा, "मीरा दस वर्ष की हो गई है, इसकी सगाई - सम्बन्ध की चिन्ता नहीं करते आप?" वीरमदेव जी बोले, "चिन्ता तो होती है पर मीरा का व्यक्तित्व, प्रतिभा और रूचि असधारण है--फिर बाबोसा मीरा के ब्याह के बारे में कैसा सोचते हैं--पूछना पड़ेगा।" बड़ी माँ ने कहा, "बेटी की रूचि साधारण हो या असधारण - पर विवाह तो करना ही पड़ेगा।" वीरमदेव जी ने कहा, "पर मीरा के योग्य कोई पात्र ध्यान में हो तो ही मैं अन्नदाता हुक्म से बात करूँ।" बड़ी माँ बोलीं, "एक पात्र तो मेरे ध्यान में है। मेवाड़ के महाराज कुँवर और मेरे भतीजे भोजराज।" "क्या कहती हो, हँसी तो नहीं कर रही ? अगर ऐसा हो जाये तो हमारी बेटी के भाग्य खुल जायें। वैसे मीरा है भी

उसी घर के योग्य।" प्रसन्न हो वीरमदेव जी ने कहा। गिरिजा जी ने अपनी तरफ़ से पूर्ण प्रयत्न करने का आश्वासन दिया।

मीरा की सगाई की बात मेवाड़ के महाराज कुंवर से होने की चर्चा रनिवास में चलने लगी। मीरा ने भी सुना। वह पत्थर की मूर्ति की तरह स्थिर हो गई थोड़ी देर तक। वह सोचने लगी, माँ ने ही बताया था कि तेरा वर गिरधर गोपाल है ; और अब माँ ही मेवाड़ के राजकुमार के नाम से इतनी प्रसन्न हैं, तब किससे पूछुँ? वह धीमे कदमों से दूदाजी के महल की ओर चल पड़ी। पलंग पर बैठे दूदाजी जप कर रहे थे। मीरा को यूँ अप्रसन्न सा देख बोले, "क्या बात है बेटा?" "बाबोसा! एक बेटी के कितने बींद होते हैं?" दूदाजी ने स्नेह से मीरा के सिर पर हाथ रखा और हँस कर बोले, "क्यों पूछती हो बेटी! वैसे एक बेटी के एक ही बींद होता है। एक बींद के बहुत सी बीनणियाँ तो हो सकती हैं पर किसी भी तरह एक कन्या के एक से अधिक वर नहीं होते। पर क्यों ऐसा पूछ रही हो?" "बाबोसा! एक दिन मैंने बारात देख माँ से पूछा था कि मेरा बींद कौन है? उन्होंने कहा कि तेरा बींद गिरधर गोपाल है। और आज... आज...। (उसने हिलकियों के साथ रोते हुए अपनी बात पूरी करते हुये कहा) आज भीतर सब मुझे मेवाड़ के राजकुवंर को ब्याहने की बात कर रहे हैं।"

दूदाजी ने अपनी लाडली को चुप कराते हुए कहा- "तूने भाबू से पूछा नहीं?" "पूछा! तो वह कहती हैं कि- "वह तो तुझे बहलाने के लिए कहा था। पीतल की मूरत भी कभी किसी का पति होती है? अरी बड़ी माँ के पैर पूज। यदि मेवाड़ की राजरानी बन गई तो भाग्य खुल गया समझ। आप ही बताईये बाबोसा! मेरे गिरधर क्या केवल पीतल की मूरत हैं? संत ने कहा था न कि यह विग्रह (मूर्ति) भगवान की प्रतीक है। प्रतीक वैसे ही तो नहीं बन जाता? कोई हो, तो ही उसका प्रतीक बनाया जा सकता है। जैसे आपका चित्र कागज भले हो, पर उसे कोई भी देखते ही कह देगा कि यह दूदाजी राठौड़ हैं। आप हैं, तभी तो आपका चित्र बना है। यदि गिरधर नहीं है तो फिर उनका प्रतीक कैसा? भाबू कहती हैं - "भगवान को किसने देखा है? कहाँ है? कैसे हैं? मैं कहती हूँ बाबोसा वो कहीं भी हों, कैसे भी हो, पर हैं, तभी तो मूरत बनी है, चित्र बनते हैं। ये शास्त्र, ये संत सब झूठे हैं क्या? इतनी बड़ी उम्र में आप क्यों राज्य का

भार बड़े कुंवरसा पर छोड़कर माला फेरते हैं? क्यों मन्दिर पधारते हैं? क्यों सत्संग करते हैं? क्यों लोग अपने प्रियजनों को छोड़ कर उनको पाने के लिए साधु हो जाते हैं? बताईये न बाबोसा?" मीरा ने रोते-रोते कहा।

हेरी म्हा दरद दिवाणौ, म्हारा दरद ना जाण्याँ कोय।
घायल री गत घायल जाण्याँ, हिबडो अगण संजोय॥
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्या जाण्याँ जण खोय।
मीरा री प्रभु पीर मिटाँगा, जब वैद साँवरो होय॥

राव दूदाजी अपनी दस वर्ष की पौत्री मीरा की बातें सुनकर चकित रह गये। कुछ क्षण तो उनसे कुछ बोला नहीं गया। "आप कुछ तो कहिये बाबोसा"! मेरा जी घबराता है। किससे पूछुँ यह सब? भाबू ने पहले मुझे क्यों कहा कि गिरधर ही मेरे वर हैं और अब स्वयं ही अपने कहे पर पानी फेर रही हैं? जो हो ही नहीं सकता, उसका क्या उपाय है? आप ही बताईये - क्या तीनों लोकों के धणी (स्वामी) से भी बड़ा मेवाड़ का राजकुमार है? और यदि है तो होने दो, मुझे नहीं चाहिए।"

"तू रो मत बेटा! धैर्य धर! उन्होंने दुपट्टे के छोर से मीरा का मुँह पौंछा - तू चिन्ता मत कर। मैं सबको कह दूँगा कि मेरे जीते जी मीरा का विवाह नहीं होगा। तेरे वर गिरधर गोपाल हैं और वही रहेंगे, किन्तु मेरी लाड़ली! मैं बूढ़ा हूँ। कै दिन का मेहमान? मेरे मरने के पश्चात यदि ये लोग तेरा ब्याह कर दें तो तू घबराना मत। सच्चा पति तो मन का ही होता है। तन का पति भले कोई बने, मन का पति ही पति है। गिरधर तो प्राणी मात्र का धणी है, अन्तर्यामी है उनसे तेरे मन की बात छिपी तो नहीं है बेटा। तू निश्चिंत रह।" "सच फरमा रहे हैं, बाबोसा?" "सर्व साँची बेटा।" "तो फिर मुझे तन का पति नहीं चाहिए। मन का पति ही पर्याप्त है।" दूदाजी से आश्वासन पाकर मीरा के मन को राहत मिली।

दूदाजी के महल से मीरा सीधे श्याम कुन्ज की ओर चली। कुछ क्षण अपने प्राणाराध्य गिरधर गोपाल की ओर एकटक देखती रही। फिर तानपुरा झंकृत होने लगा। आलाप लेकर वह गाने लगी .....

आओ मनमोहना जी, जोऊँ थाँरी बाट।
खान पान मोहि नेक न भावे,नैणन लगे कपाट॥

तुम आयाँ बिन सुख नहीं मेरे दिल में बहुत उचाट।
मीरा कहे मैं भई रावरी, छाँड़ो नाहिं निराट॥

भजन पूरा हुआ तो अधीरतापूर्वक नीचे झुक कर दोनों भुजाओं में सिंहासन सहित अपने ह्रदयधन को बाँध चरणों में सिर टेक दिया। नेत्रों से झरते आँसू उनका अभिषेक करने लगे। ह्रदय पुकार रहा था - "आओ सर्वस्व! इस तुच्छ दासी की आतुर प्रतीक्षा सफल कर दो। आज तुम्हारी साख और प्रतिष्ठा दाँव पर लगी है।"

उसे फूट-फूट कर रोते देख मिथुला ने धीरज धराया। कहा कि, "प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, आपकी व्यथा इनसे छिपी नहीं है।" "मिथुला, तुम्हें लगता है वे मेरी सुध लेंगे? वे तो बहुत बड़े हैं। मेरी क्या गिनती? मुझ जैसे करोड़ों जन बिलबिलाते रहते हैं। किन्तु मिथुला! मेरे तो केवल वही एक अवलम्ब हैं। न सुने, न आयें, तब भी मेरा क्या वश है?" मीरा ने मिथुला की गोद में मुँह छिपा लिया। "पर आप क्यों भूल जाती हैं बाईसा कि वे भक्तवत्सल हैं, करूणासागर हैं, दीनबन्धु हैं। भक्त की पीड़ा वे नहीं सह पाते, दौड़े आते है।" "किन्तु मैं भक्त कहाँ हूँ मिथुला? मुझसे भजन बनता ही कहाँ है? मुझे तो केवल वह अच्छे लगते हैं। वे मेरे पति हैं - मैं उनकी हूँ। वे क्या कभी अपनी इस दासी को अपनायेगें? उनके तो सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ हैं उनके बीच मेरी प्रेम हीन रूखी-सूखी पुकार सुन पायेंगे क्या? तुझे क्या लगता है मिथुला! वे कभी मेरी ओर देखेंगे भी क्या?" मीरा अचेत हो मिथुला की गोद में लुढ़क गई।"

हेरी म्हारा दरद दिवाणौ, म्हारा दरद ना जाण्याँ कोय।
घायल री गत घायल जाण्याँ, हिबडो अगण संजोय॥
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्या जाण्याँ जण खोय।
मीरा री प्रभु पीर मिटाँगा, जब वैद साँवरो होय॥

आज श्री कृष्ण जन्माष्टमी है। राजमन्दिर में और श्याम कुन्ज में प्रातःकाल से ही उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। मीरा का मन विकल है पर कहीं आश्वासन भी है कि प्रभु आज अवश्य पधारेगें। बाहर गये हुये लोग, भले ही नौकरी पर गये हो, सभी पुरुष तीज तक घर लौट आते हैं। फिर आज तो उनका जन्मदिन है। कैसे न आयेंगे भला? पति के आने पर

स्त्रियाँ कितना श्रृंगार करती हैं, तो मैं क्या ऐसे ही रहूँगी? तब.... मैं भी क्यों न पहले से ही श्रृंगार धारण कर लूँ? कौन जाने, कब पधार जावें वे!"

मीरा ने मंगला से कहा, "जा मेरे लिए उबटन, सुगंध और श्रृंगार की सब सामग्री ले आ।" और चम्पा से बोली कि माँ से जाकर सबसे सुंदर काम वाली पोशाक और आभूषण ले आये। सभी को प्रसन्नता हुईं कि मीरा आज श्रृंगार कर रही है।

बाबा बिहारी दास जी की इच्छा थी कि आज रात मीरा चारभुजानाथ के यहाँ होने वाले भजन कीर्तन में उनका साथ दें। बाबा की इच्छा जान मीरा असमंजस में पड़ गई। थोड़े सोचने के बाद बोली - "बाबा रात्रि के प्रथम प्रहर में राजमन्दिर में रह आपकी आज्ञा का पालन करूँगी और फिर अगर आप आज्ञा दें तो मैं जन्म के समय श्याम कुन्ज में आ जाऊँ?" "अवश्य बेटी!" उस समय तो तुम्हें श्याम कुन्ज में ही होना चाहिए "बाबा ने मीरा के मन के भावों को समझते हुये कहा।" मेरी तो यह इच्छा थी कि तुम मेरे साथ एक बार मन्दिर में गाओ। बड़ी होने पर तो तुम महलों में बंद हो जाओगी। कौन जाने, ऐसा सुयोग फिर कब मिले।"

मीरा आज नख से शिख तक श्रृंगार किये चारभुजानाथ के मन्दिर में राव दूदाजी और बाबा बिहारी दास जी के बीच तानपुरा लेकर बैठी हुई पदगायन में बाबा का साथ दे रही है। मीरा के रूप सौंदर्य के अतुलनीय भण्डार के द्वार आज श्रृंगार ने उदघाटित कर दिए थे। नवबालवधु के रूप में मीरा को देख कर सभी राजपुरूष के मन में यह विचार स्फुरित होने लगा कि मीरा किसी बहुत गरिमामय घर - वर के योग्य है। वीरमदेव जी भी आज अपनी बेटी का रूप देख चकित रह गये और मन ही मन दृढ़ निश्चय किया कि चित्तौड़ की महारानी का पद ही मीरा के लिए उचित स्थान है।

"बेटी! अब तुम अपने संगीत के द्वारा सेवा करो।" बाबा बिहारी दास जी ने गर्व से अपनी योग्य शिष्या को कहा। मीरा ने उठकर पहले गुरुचरणों में प्रणाम किया। फिर चारभुजानाथ और दूदाजी आदि बड़ों को प्रणाम कर गायन प्रारम्भ किया। आलाप की तान ले मीरा ने सम्पूर्ण वातावरण को बाँध दिया

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।

मोहिनी मूरत साँवरी सूरत, नैना बने विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर वैजंती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट शोभित नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदायी, भगत बछल गोपाल॥

वहाँ उपस्थित सब भक्त जन मीरा के गायन से मन्त्रमुग्ध हो गये। बिहारी दास जी सहित दूदाजी मीरा का वह स्वरचित पद श्रवण कर चकित एवं प्रसन्न हो उठे। दोनों आनन्दित हो गदगद स्वर में बोले -"वाह बेटी!" मीरा ने संकोच वश अपने नेत्र झुका लिये। बाबा ने उमंग से मीरा से एक और भजन गाने का आग्रह किया तो उसने फिर से तानपुरा उठाया। अबकि मीरा ने ठाकुर जी की करूणा का बखान करते हुये पद गाया।

सुण लीजो बिनती मोरी, मैं सरण गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे, भवसागर से तारे।
मीरा प्रभु तुम्हरे रंग राती, या जानत सब दुनियाई॥

दूदाजी नेत्र मूंद कर एकाग्र होकर श्रवण कर रहे थे। भजन पूरा होने पर उन्होंने आँखें खोली, प्रशंसा भरी दृष्टि से मीरा की ओर देखा और बोले, "आज मेरा जीवन धन्य हो गया। बेटा, तूने अपने वंश, अपने पिता पितृव्यों को धन्य कर दिया।" फिर मीरा के सिर पर हाथ रखते हुए अपने वीर पुत्रों को देखते हुये अश्रु विगलित स्वर से बोले, "इनकी प्रचण्ड वीरता और देश प्रेम को कदाचित लोग भूल जायें, पर मीरा तेरी भक्ति और तेरा नाम अमर रहेगा, बेटा ......अमर रहेगा।" उनकी आँखें छलक पड़ी।

मीरा यूँ तों श्याम कुन्ज में अपने गिरधर को रिझाने के लिये प्रतिदिन ही गाती थी -पर आज श्री कृष्ण जन्माष्टमी के दिन राजमन्दिर में सार्वजनिक रूप से उसने पहली बार ही गायन किया। सब घर परिवार और बाहर के मीरा की असधारण भक्ति एवं संगीत प्रतिभा देख आश्चर्य चकित हो गये।

अतिशय भावुक हुये दूदाजी को प्रणाम करते हुए मीरा बोली, "बाबोसा मैं तो आपकी हूँ, जो कुछ है वह तो आपका ही है और रहा

संगीत, यह तो बाबा का प्रसाद है।" मीरा ने बाबा बिहारी दास की ओर देखकर हाथ जोड़े। थोड़ा रूक कर वह बोली -"अब मैं जाऊँ बाबा?" "जाओ बेटी! श्री किशोरी जी तुम्हारा मनोरथ सफल करें।" भरे कण्ठ से बाबा ने आशीर्वाद दिया। सभी को प्रणाम कर मीरा अपनी सखियों-दासियों के साथ श्याम कुन्ज चल दी। बाबा बिहारी दास जी का आशीर्वाद पाकर वह बहुत प्रसन्न थी, फिर भी रह-रह कर उसका मन आशंकित हो उठता था- "कौन जाने, प्रभु इस दासी को भूल तो न गये होंगे? किन्तु नहीं, वे विश्वम्बर हैं, उनको सबकी खबर है, पहचान है। आज अवश्य पधारेगें अपनी इस चरणाश्रिता को अपनाने। इसकी बाँह पकड़ कर भवसागर में डूबती हुई को ऊपर उठाकर ...।" आगे की कल्पना कर वह आनन्दानुभूति में खो जाती।

सखियों-दासियों के सहयोग से मीरा ने आज श्याम कुन्ज को फूल मालाओं की बन्दनवार से अत्यंत सजा दिया था। अपने गिरधर गोपाल का बहुत आकर्षक श्रृंगार किया। सब कार्य सुंदर रीति से कर मीरा ने तानपुरा उठाया।

आय मिलो मोहिं प्रीतम प्यारे। हमको छाँड़ भये क्यूँ न्यारे॥
बहुत दिनों से बाट निहारूँ। तेरे ऊपर तन मन वारूँ॥
तुम दरसन की मो मन माहीं। आय मिलो किरपा कर साईं॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। आय दरस द्यो सुख के सागर॥

मीरा की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। रोते-रोते मीरा फिर गाने लगी। चम्पा ने मृदंग और मिथुला ने मंजीरे संभाल लिए।

जोहने गुपाल करूँ ऐसी आवत मन में।
अवलोकत बारिज वदन बिबस भई तन में॥
मुरली कर लकुट लेऊँ पीत वसन धारूँ।
पंखी गोप भेष मुकुट गोधन सँग चारूँ॥
हम भई गुल काम लता वृन्दावन रैना।
पसु पंछी मरकट मुनि श्रवण सुनत बैना॥
गुरूजन कठिन कानिं कासों री कहिये।
मीरा प्रभु गिरधर मिली ऐसे ही रहिये॥

गान विश्रमित हुआ तो मीरा की निमीलित पलकों तले लीला - सृष्टि विस्तार पाने लगी। वह गोप सखा के वेश में आँखों पर पट्टी बाँधे श्याम सुंदर को ढूँढ रही है। उसके हाथ में ठाकुर को ढूँढते-ढूँढते कभी तो वृक्ष का तना, कभी झाड़ी के पत्ते और कभी गाय का मुख आ जाता है। वह थक गयी, व्याकुल हो पुकार उठी - "कहाँ हो "गोविन्द ! आह, मैं ढूँढ नहीं पा रही हूँ। श्याम सुन्दर! कहाँ हो...कहाँ हो...कहाँ हो..?"

श्री कृष्ण जन्माष्टमी का समय है। मीरा श्याम कुन्ज में ठाकुर के आने की प्रतीक्षा में गायन कर रही है। उसे लीला अनुभूति हुई कि वह गोप सखा वेश में आँखों पर पट्टी बाँधे श्यामसुन्दर को ढूँढ रही है।

तभी गढ़ पर से तोप छूटी। चारभुजानाथ के मन्दिर के नगारे, शंख, शहनाई एक साथ बज उठे। समवेत स्वरों में उठती जय ध्वनि ने दिशाओं को गुँजा दिया - "चारभुजानाथ की जय! गिरिधरण लाल की जय।" उसी समय मीरा ने देखा - जैसे सूर्य-चन्द्र भूमि पर उतर आये हों, उस महाप्रकाश के मध्य शांत स्निग्ध ज्योति स्वरूप मोर मुकुट पीताम्बर धारण किए सौन्दर्य-सुषमा-सागर श्यामसुन्दर खड़े मुस्कुरा रहे हैं।। वे आकर्ण दीर्घ दृग, उनकी वह ह्रदय को मथ देने वाली दृष्टि, वे कोमल अरूण अधर-पल्लव, बीच में तनिक उठी हुई सुघड़ नासिका, वह स्पृहा-केन्द्र विशाल वक्ष, पीन प्रलम्ब भुजायें, कर-पल्लव, बिजली सा कौंधता पीताम्बर और नूपुर मण्डित चारू चरण। एक दृष्टि में जो देखा जा सका.. फिर तो दृष्टि तीखी धार-कटार से उन नेत्रों में उलझ कर रह गईं। क्या हुआ ? क्या देखा ? कितना समय लगा ? कौन जाने ? समय तो बेचारा प्रभु और उनके प्रेमियों के मिलन के समय प्राण लेकर भाग छूटता है।

"इतनी व्याकुलता क्यों, क्या मैं तुमसे कहीं दूर था ?" श्यामसुन्दर ने स्नेहासिक्त स्वर में पूछा। मीरा प्रातःकाल तक उसी लीला अनुभूति में ही मूर्छित रही। सबह मूर्छा टूटने पर उसने देखा कि सखियाँ उसे घेर करके कीर्तन कर रही हैं। उसने तानपुरा उठाया। सखियाँ उसे सचेत हुई जानकार प्रसन्न हुई। कीर्तन बन्द करके वे मीरा का भजन सुनने लगीं -

म्हाँरा ओलगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया जी॥
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आनन्द छाया जी।

मगन भई मिल प्रभु अपणा सूँ, भौं का दरद मिटाया जी॥
चंद को निरख कुमुदणि फूलै, हरिख भई मेरी काया जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी॥
सब भक्तन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीरा बिरहणि सीतल भई, दुख द्वदं दूर नसाया जी॥
म्हाँरा ओलगिया घर आया जी॥

इस प्रकार आनन्द ही आनन्द में अरूणोदय हो गया। दासियाँ उठकर उसे नित्यकर्म के लिए ले चली।

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव सम्पन्न होने के पश्चात बाबा बिहारी दास जी ने वृन्दावन जाने की इच्छा प्रकट की। भारी मन से दूदाजी ने स्वीकृति दी। मीरा को जब मिथुला ने बाबा के जाने के बारे में बताया तो उसका मन उदास हो गया। वह बाबा के कक्ष में जाकर उनके चरणों में प्रणाम कर रोते रोते बोली, "बाबा आप पधार रहें है।" "हाँ बेटी! वृद्ध हुआ अब तेरा यह बाबा। अंतिम समय तक वृन्दावन में श्री राधामाधव के चरणों में ही रहना चाहता हूँ।" "बाबा! मुझे यहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मुझे भी अपने साथ वृन्दावन ले चलिए न बाबा।" मीरा ने दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर सुबकते हुए कहा।

"श्री राधे! श्री राधे! बिहारी दास जी कुछ बोल नहीं पाये। उनकी आँखों से भी अश्रुपात होने लगा। कुछ देर पश्चात उन्होंने मीरा के सिर पर हाथ फेरते हुये कहा -"हम सब स्वतन्त्र नहीं है पुत्री। वे जब जैसा रखना चाहे, उनकी इच्छा में ही प्रसन्न रहे। भगवत्प्रेरणा से ही मैं इधर आया। सोचा भी नहीं था कि शिष्या के रूप में तुम जैसा रत्न पा जाऊँगा। तुम्हारी शिक्षा में तो मैं निमित्त मात्र रहा। तुम्हारी बुद्धि, श्रद्धा, लग्न और भक्ति ने मुझे सदा ही आश्चर्य चकित किया है। तुम्हारी सरलता, भोलापन और विनय ने ह्रदय के वात्सल्य पर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। राव दूदाजी के प्रेम, विनय और संत-सेवा के भाव इन सबने मुझ विरक्त को भी इतने दिन बाँध रखा। किन्तु बेटा ! जाना तो होगा ही।"

"बाबा! मैं क्या करूँ? मुझे आप आशीर्वाद दीजिये कि...।" मीरा की रोते-रोते हिचकी बँध गई...,"मुझे भक्ति प्राप्त हो, अनुराग प्राप्त हो, श्यामसुन्दर मुझ पर प्रसन्न हो।" उसने बाबा के चरण पकड़ लिए। बाबा

कुछ बोल नहीं पाये, बस उनकी आँखों से झर-झर आँसू चरणों पर पड़ी मीरा को सिक्त करते रहे। फिर भरे कण्ठ से बोले, "श्री किशोरी जी और श्यरश्यामसुन्दर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें, पर मैं एक तरफ जब तुम्हारी भाव भक्ति और दूसरी ओर समाज के बँधनों का विचार करता हूँ तो मेरे प्राण व्याकुल हो उठते है। बस प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारा मंगल हो। चिन्ता न करो पुत्री! तुम्हारे तो रक्षक स्वयं गिरधर है।"

अगले दिन जब बाबा श्याम कुन्ज में ठाकुर को प्रणाम करने आये तो मीरा और बाबा की झरती आँखों ने वहाँ उपस्थित सब जन को रूला दिया। मीरा अश्रुओं से भीगी वाणी में बोली, "आप वृन्दावन जा रहे हैं बाबा! मेरा एक संदेश ले जायेंगे?" "बोलो बेटी! तुम्हारा संदेश-वाहक बनकर तो मैं भी कृतार्थ हो जाऊँगा।" मीरा ने कक्ष में दृष्टि डाली। दासियों-सखियों के अतिरिक्त दूदाजी व रायसल काका भी थे। लाज के मारे क्या कहती। शीघ्रता से कागज कलम ले लिखने लगी। ह्रदय के भाव तरंगों की भांति उमड़ आने लगे; आँसुओं से दृष्टि धुँधला जाती। वह ओढ़नी से आँसू पौंछ फिर लिखने लगती। लिख कर उसने मन ही मन पढ़ा

गोविन्द....!, गोविन्द कबहुँ मिलै पिया मेरा।
चरण कँवल को हँस हँस देखूँ, राखूँ नैणा नेरा।
निरखन का मोहि चाव घणेरौ, कब देखूँ मुख तेरा॥
व्याकुल प्राण धरत नहीं धीरज, मिल तू मीत सवेरा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताप तपन बहु तेरा॥

पत्र को समेट कर और सुन्दर रेशमी थैली में रखकर मीरा ने पूर्ण विश्वास से उसे बाबा की ओर बढ़ा दिया। बाबा ने उसे लेकर सिर चढ़ाया और फिर उतने ही विश्वास से गोविन्द को देने के लिए अपने झोले में सहेज कर रख लिया। गिरधर को सबने प्रणाम किया। मीरा ने पुनः प्रणाम किया। बिहारी दास जी के जाने से ऐसा लगा, जैसे गुरु, मित्र और सलाहकार खो गया हो।

कल गुरु पूर्णिमा है। मीरा श्याम कुन्ज में बैठी हुई सोच रही है, सदा से इस दिन गुरु-पूजा करते आ रहे हैं। शास्त्र कहते हैं कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता, वही परमतत्व का दाता है। तब मेरे गुरु कौन? वह

एकदम से उठकर दूदाजी के पास चल पड़ी। वहाँ जयमल, (वीरमदेव जी के पुत्र और मीरा के छोटे भाई) दूदाजी से तलवारबाजी के दाव पैंच सीख रहे थे। मीरा दूदाजी को प्रणाम कर भाई की बात खत्म होने की प्रतीक्षा करते बैठ गई। पर जयमल तो युद्ध, घोड़ों और धनुष तलवार के बारे में वीरता से दूदाजी से कितने ही प्रश्न पूछते जा रहे थे। मीरा ने भाई को टोकते हुए कहा, "बाबोसा से मुझे कुछ पूछना था। पूछ लूँ तो फिर भाई, आप बाबोसा के साथ पुनः महाभारत प्रारम्भ कर लेना। तलवार जितने तो आप हो नहीं अभी और युद्ध पर जाने की बातें कर रहे हो।" जयमल और दूदाजी दोनों मीरा की बात पर हँस पड़े। मीरा अपनी जिज्ञासा रखती हुई बोली, "बाबोसा! शास्त्र और संत कहते है कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। मेरे गुरु कौन हैं?"

"हैं तो सही, बाबा बिहारी दास और योगी निवृतिनाथ जी।" जयमल ने कहा। "नहीं बेटा! वे दोनों मीरा के शिक्षा गुरू हैं, एक संगीत के और दूसरे योग के, पर वे दीक्षा गुरू नहीं। सुनो बेटी! इस क्षेत्र में अधिकारी कभी भी वंचित नहीं रहता। तृषित यदि स्वयं सरोवर के पास नहीं पहुँच पाता तो सरोवर ही प्यासे के समीप पहुँच जाता है। बेटी! तुम अपने गिरधर से प्रार्थना करो, वे उचित प्रबन्ध कर देंगें।"

"गुरु होना आवश्यक तो है न बाबा ?" "आवश्यकता होने पर अवश्य ही आवश्यक है। गुरु तो एक ऐसी जलता हुआ दिया है जो तुम्हारा भी अध्यात्मिक पथ प्रकाशित कर देते हैं। फिर गुरु के होने से उनकी कृपा तुम्हारे साथ जुड़ जाती है। यों तो तुम्हारे गिरधर स्वयं जगदगुरू है।"

"वो तो हैं बाबोसा पर मन्त्र?" उसके इस प्रश्न पर दूदाजी हँस दिये, "भगवान का प्रत्येक नाम मन्त्र है बेटी। उनका नाम उनसे भी अधिक शक्तिशाली है, यही तो अभी तक सुनते आये हैं।" "वह कानों को प्रिय लगता है बाबोसा! पर आँखें तो प्यासी रह जाती हैं।" अनायास ही मीरा के मुख से निकल पड़ा पर बात का मर्म समझ में आते ही सकुचा गई और उसने दूदाजी की ओर पीठ फेर ली। "उसमें(भगवान के नाम में) इतनी शक्ति है कि आँखों की प्यास बुझाने वाले को भी खींच लाये।" उसकी पीठ की ओर देखते हुये मुस्कुरा कर दूदाजी ने कहा। "जाऊँ बाबोसा ?" मीरा ने सकुचा कर पूछा। "हाँ, जाओ बेटी।" जयमल ने

आश्चर्य से पूछा, "बाबोसा! जीजा ने यह क्या कहा और उन्हें लाज क्यों आई ?" "वह तुम्हारे क्षेत्र की बात नहीं है बेटा। बात इतनी सी है कि भगवान के नाम में भगवान से भी अधिक शक्ति है और उस शक्ति का लाभ नाम लेने वाले को मिलता है।"

मीरा श्याम कुन्ज लौट आई और ठाकुर से निवेदन कर बोली, "कल गुरु पूर्णिमा है, अतः कल जो भी संत हमारे घर पधारेगें, वे ही प्रभु आपके द्वारा निर्धारित गुरू होंगे।" मीरा ने अपना तानपुरा उठाया और गाने लगी...

मोहि लागी लगन गुरु चरणन की।
चरण बिना मोहे कछु नहिं भावे,
जग माया सब सपनन की॥
भवसागर सब सूख गयो है,
फिकर नहीं मोही तरनन की॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
आस लगी गुरु सरनन की॥
मोहे लागी लगन गुरू चरणन की।

रात्रि में मीरा ने स्वप्न देखा कि महाराज युधिष्ठिर की सभा में प्रश्न उठा कि प्रथम पूज्य, सर्वश्रेष्ठ कौन है जिसका प्रथम पूजन किया जाय। चारों तरफ़ से एक ही निर्णय हुआ -**"कृष्णं वंदे जगदगुरूम।"** युधिष्ठिर ने सपरिवार अतिशय विनम्रता से श्रीकृष्ण के चरणों को धोया। सुबह हुई तो मीरा सोचने लगी - "गिरधर वे सब सत्य कह रहे थे कि तुम्हीं ही तो सच्चे गुरु हो। आज तुम जिस संत के रूप में पधारोगे, मैं उनको ही अपना गुरु मान लूँगी।"

आज गुरु पूर्णिमा है। मीरा ने गिरधर गोपाल को नया श्रृंगार धारण कराया, गुरु भाव से उनकी पूजा की और गाने लगी...।

म्हाँरा सतगुरू बेगा आजो जी। म्हारे सुख री सीर बहाजो जी॥
अरज करै मीरा दासी जी। गुरु पद रज की प्यासी जी॥

सारा दिन बीत गया। सायंकाल अकस्मात विचरते हुए काशी के संत रैदास जी का मेड़ते में पधारना हुआ। दूदाजी बहुत प्रसन्न हुये और

उन्होंने शक्ति भर उनका सत्कार किया और आवास प्रदान किया। मीरा को बुलाकर उनका परिचय दिया। मीरा प्रसन्न हो उठी। मन ही मन उन्हें गुरुवत बुद्धि से प्रणाम किया। उन्होंने भी कृपा दृष्टि से उसे निहारते हुये आशीर्वाद दिया -"प्रभु चरणों में दिनानुदिन तुम्हारी प्रीति बढ़ती रहे।" आशीर्वाद सुनकर मीरा के नेत्र भर आये। उसने कृतज्ञता से उनकी ओर देखा। उस असाधारण निर्मल दृष्टि और मुख के भाव देख कर संत सब समझ गये। उसके जाने के पश्चात उन्होंने दूदाजी से मीरा के बारे में पूछा। सब सुनकर वे बोले - "राजन! तुम्हारे पुण्योदय से घर में गंगा आई है। अवगाहन कर लो जी भरकर। सबके सब तर जाओगे।"

रात को राजमहल के सामने वाले चौगान में सार्वजनिक सत्संग समारोह हुआ। रैदास जी के उपदेश-भजन हुए। दूदाजी के आग्रह से मीरा ने भी भजन गाकर उन्हें सुनाये।

लागी मोहि राम खुमारी हो।
रिमझिम बरसै मेहरा भीजै तन सारी हो।
चहुँ दिस दमकै दामणी, गरजै घन भारी हो॥
सतगुरू भेद बताईया खोली भरम किवारी हो।
सब घर दीसै आतमा सब ही सूँ न्यारी हो॥
दीपक जोऊँ ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो।
मीरा दासी राम की इमरत बलिहारी हो॥

मीरा के संगीत-ज्ञान, पद रचना और स्वर माधुरी से संत बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने पूछा -"तुम्हारे गुरु कौन हैं बेटी?" "कल मैंने प्रभु के सामने निवेदन किया था कि मेरे लिए गुरु भेजें और फिर निश्चय किया कि आज गुरु पूर्णिमा है, अतः जो भी संत आज पधारेगें, वे ही प्रभु द्वारा निर्धारित गुरु होंगे। कृपा कर इस अज्ञानी को शिष्या के रूप में स्वीकार करें!" मीरा ने रैदास जी के चरणों में गिरकर प्रणाम किया तो उसकी आँखों से आँसू निकल उनके चरणों पर गिर पड़े।

मीरा ने जब इतनी दैन्यता और क्रन्दन करते हुए रैदास जी से उसे शिष्या स्वीकार करने की प्रार्थना की तो वे भी भावुक हो उठे। सन्त ने मीरा के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "बेटी! तुम्हें कुछ अधिक कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है। नाम ही निसेनी (सीढ़ी) है और लगन ही

प्रयास, अगर दोनों ही बढ़ते जायें तो अगम अटारी घट में प्रकाशित हो जायेगी। इन्हीं के सहारे उसमें पहुँच अमृतपान कर लोगी। समय जैसा भी आये, पाँव पीछे न हटें, फिर तो बेड़ा पार है।" इतना कह वह स्नेह से मुस्कुरा दिये।

"मुझे कुछ प्रसाद देने की कृपा करें।" मीरा ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। सन्त ने एक क्षण सोचा। फिर गले से अपनी जप-माला और इकतारा मीरा के फैले हाथों पर रख दिये। मीरा ने उन्हें सिर से लगाया, माला गले में पहन ली और इकतारे के तार पर पर उँगली रखकर उसने रैदास जी की ओर देखा। उसके मन की बात समझ कर उन्होंने इकतारा मीरा के हाथ से लिया और बजाते हुये गाने लगे...।

प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी। जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभुजी, तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चन्द्र चकोरा॥
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती। जाकी जोत बरे दिन राती॥
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सुहागा॥
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भगति करे रैदासा॥

रैदास जी ने भजन पूरा कर अपना इकतारा पुनः मीरा को पकड़ा दिया, जो उसने जीवन पर्यन्त गुरु के आशीर्वाद की तरह अपने साथ सहेज कर रखा। गुरु जी के इंगित करने पर मीरा ने उसे बजाते हुए गायन प्रारम्भ किया ...।

कोई कछु कहे मन लागा।
ऐसी प्रीत लगी मनमोहन, ज्युँ सोने में सुहागा।
जनम जनम का सोया मनुवा, सतगुरू सबद सुन जागा।
मात-पिता सुत कुटुम्ब कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा।
कोई कुछ कहे मन लागा॥

चारों ओर दिव्य आनन्द सा छा गया। उपस्थित सब जन एक निर्मल आनन्द धारा में अवगाहन कर रहे थे। मीरा ने पुनः आलाप की तान ली....।

पायो जी मैंने राम रत्न धन पायो।

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरू, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खुवायो॥
खरच न खूटे, चोर न लूटे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरू, भवसागर तैरायो॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥
पायो जी मैंने राम रत्न धन पायो॥

रैदास जी मीरा का भजन सुनकर अत्यंत भावविभोर हो उठे। वे मीरा सी शिष्या पाकर स्वयं को धन्य मान रहे थे। उन्होंने उसे कोटिश आशीर्वाद दिया। दूदाजी भी संत की कृपा पाकर कृत कृत्य हुये।

संत रैदास जी दो दिन मेड़ता में रहे। उनके जाने से मीरा को सूना सूना लगा। वह सोचने लगी कि, "दो दिन सत्संग का कैसा आनन्द रहा? सत्संग में बीतने वाला समय ही सार्थक है।"

प्रतिदिन की तरह मीरा पूजा सम्पन्न कर श्याम कुन्ज में बैठी भजन गा रही थी। माँ, वीरकुँवरी जी आई तो ठाकुर जी को प्रणाम करके बैठ गई। मीरा ने भजन पूरा होने पर तानपुरा रखते समय माँ को देखा तो चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया।

माँ ने जब बेटी का अश्रुसिक्त मुख देखा तो पीठ पर स्नेह से हाथ रखते हुए बोली, "मीरा! क्या भजन गा-गा कर ही आयु पूरी करनी है बेटी? जहाँ विवाह होगा, वह लोग क्या भजन सुनने के लिए तुझे ले जायेंगे?"

"जिसका ससुराल और पीहर एक ही ठौर हो भाबू! उसे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है?" " मैं समझी नहीं बेटी!" माँ ने कहा।

"महलों में मेरा पीहर है और श्याम कुन्ज ससुराल।" मीरा ने सरलता से कहा।

"तुझे कब समझ आयेगी बेटी! कुछ तो जगत व्यवहार सीख। बड़े बड़े घरों में तुम्हारे सम्बन्ध की चर्चा चल रही है। इधर रनिवास में हम लोगों का चिन्ता के मारे बुरा हाल है। यह रात दिन गाना-बजाना, पूजा-पाठ और रोना-धोना इन सबसे संसार नहीं चलता। ससुराल में सास-ननद का मन रखना पड़ता है, पति को परमेश्वर मानकर उसकी सेवा टहल करनी पड़ती है। मीरा ! सारा परिवार तुम्हारे लिए चिन्तित है।"

"भाबू! पति परमेश्वर है, इस बात को तो आप सबके व्यवहार को

देखकर मैं समझ गई हूँ। ये गिरधर गोपाल मेरे पति ही तो हैं और मैं इन्हीं की सेवा में लगी रहती हूँ, फिर आप ऐसा क्यों फरमाती है?"

"अरे पागल लड़की! पीतल की मूरत भी क्या किसी का पति हो सकती है? मैं तो थक गई हूँ। भगवान ने एक बेटी दी वह भी आधी पागल।" "माँ! आप क्यों अपना जी जलाती हैं सोच-सोच कर। बाबोसा ने मुझे बताया है कि मेरा विवाह हो गया है। अब दूसरा विवाह नहीं होगा।" "कब हुआ तेरा विवाह? हमने न देखा, न सुना। कब हल्दी चढ़ी, कब बारात आई, कब विवाह-विदाई हुई? न ही किसने कन्यादान किया? यह तुझे बाबोसा ने ही सिर चढ़ाया है।"

"यदि आपको लगता है कि विवाह नहीं हुआ तो अभी कर दीजिए। न तो वर को कहीं से आना है न कन्या को। दोनों आपके सम्मुख हैं दूसरी तैयारी ये लोग कर देंगी। दो जनी जाकर पुरोहित जी और कुवँर सा (पिता जी) को बुला लायेगीं।" मीरा ने कहा।

"हे भगवान! अब मैं क्या करूँ? रनिवास में सब मुझे ही दोषी ठहराते है कि बेटी को समझाती नहीं और यहाँ यह हाल है कि इस लड़की के मस्तिष्क में मेरी एक बात भी नहीं घुसती।" फिर थोड़ा शांत हो कर प्यार से वीरकुवंरी जी मनाते हुए कहने लगी, "बेटा नारी का सच्चा गुरु पति होता है।"

"पर भाबू! आप मुझे गिरधर से विमुख क्यों करती हैं? ये तो आपके सुझाये हुये मेरे पति है न?"

"अहा! जिस विधाता ने इतना सुन्दर रूप दिया उसे इतनी भी बुद्धि नहीं दी कि यह सजीव मनुष्य में और पीतल की मूरत में अन्तर ही नहीं समझती। वह तो उस समय तू जिद कर रही थी, इसलिए तुझे बहलाने के लिए कह दिया था।"

"आप ही तो कहती हैं कि कच्ची हाँडी पर खींची रेखा मिटती नहीं और पकी हाँडी पर गारा ठहरता नहीं। उस समय मेरे कच्ची बुद्धि में बिठा दिया कि गिरधर तेरे पति है और अब दस वर्ष की होने पर कहती हैं कि वह बात तो बहलाने के लिये कही थी। भाबू! पर सब संत यही कहते है कि मनुष्य शरीर भगवत्प्राप्ति के लिए मिला है इसे व्यर्थ कार्यों में नहीं लगाना चाहिए।"

वीरकुवंरी जी उठकर चल दी। सोचती जाती थीं - ये शास्त्र ही

आज बैरी हो गये- मेरी सुकुमार बेटी को यह बाबाओं वाला पथ कैसे पकड़ा दिया। उनकी आँखों में चिन्ता से आँसू आ गये।

मीरा माँ की बातें सोचते हुए कुछ देर एकटक गिरधर की ओर निहारती रही। फिर रैदास जी का इकतारा उठाया और गाने लगी -

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
कोई कहे कालो, कोई कहे गोरो,
लियो है मैं आँख्याँ खोल।
कोई कहे हलको, कोई कहे भारो
लियो है तराजू तोल॥
कोई कहे छाने, कोई कहे चवड़े
लियो है बंजता ढोल।
तनका गहणा मैं सब कुछ दीनाँ
दियो है बाजूबँद खोल॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
पूरब जनम को है कौल॥

यों तो मेड़ते के रनिवास में गिरिजा जी, वीरमदेव जी (दूदा जी के सबसे बड़े बेटे) की तीसरी पत्नी थीं, किन्तु पटरानी वही थीं। उनका ऐश्वर्य देखते ही बनता था। पीहर से उनके विवाह के समय में पचासों दास दासियाँ साथ आये थे और परम प्रतापी हिन्दुआ सूर्य महाराणा साँगा की लाडली बहन का वैभव एवं सम्मान यहाँ सबसे अधिक था। पूरे रनिवास में उनकी उदार व्यवहारिकता में भी उनका ऐश्वर्य उपस्थित रहता।

मीरा उनकी बहुत दुलारी बेटी थी। ये उसकी सुन्दरता, सरलता पर जैसे न्यौछावर थीं। बस, उन्हें उसका आठों प्रहर ठाकुर जी से चिपके रहना नहीं सुहाता था। किसी दिन त्योहार पर भी मीरा को श्याम कुन्ज से पकड़ कर लाना पड़ता। मीरा को बाँधने के तो दो ही पाश थे,भक्त-भगवत चर्चा अथवा वीर गाथा। जब भी गिरिजा जी मीरा को पातीं, उसे बिठाकर अपने पूर्वजों की शौर्य गाथा सुनातीं। मीरा को वीर और भक्तिमय चरित्र रूचिकर लगते।

रात ठाकुर जी को शयन करा कर मीरा उठ ही रही थी कि गिरिजा जी की दासी ने आकर संदेश दिया -"बड़े कुँवरसा आपको बुलवा रहे है।" "क्यों अभी ही?" मीरा ने चकित हो पूछा और साथ ही चल दी। उसने महल में जाकर देखा कि उसके बड़े पिताजी और बड़ी माँ दोनों प्रसन्न चित बैठे थे। मीरा भी उन्हें प्रणाम कर बैठ गई।

"मीरा तुम्हें अपनी यह माँ कैसी लगती हैं?" वीरमदेव जी ने मुस्कुरा कर पूछा। "माँ तो माँ होती है। माँ कभी बुरी नहीं होती।" मीरा ने मुस्कुरा कर कहा। "और इनके पीहर का वंश, वह कैसा है?" "यों तो इस विषय में मुझसे अधिक आप जानते होंगे। पर जितना मुझे पता है तो हिन्दुआ सूर्य, मेवाड़ का वंश संसार में वीरता, त्याग, कर्तव्य पालन और भक्ति में सर्वोपरि है। मेरी समझ में तो बाव जी हुकम ! आरम्भ में सभी वंश श्रेष्ठ ही होते हैं उसके किसी वंशज के दुष्कर्म के कारण अथवा हल्की जगह विवाह-सम्बन्ध से लघुता आ जाती है।"

"बेटी, तुम्हारे इन माँ के भतीजे हैं भोजराज। रूप और गुणों की खान...." "मैंने सुना है।" मीरा ने बीच में ही कहा। "वंश और पात्र में कहीं कोई कमी नहीं है। गिरिजा जी तुझे अपने भतीजे की बहू बनाना चाहती हैं।" "बाव जी हुकम!" मीरा ने सिर झुका लिया -"ये बातें बच्चों से तो करने की नहीं हैं।"

"जानता हूँ बेटी! पर दादा हुकम ने फरमाया है कि मेरे जीवित रहते मीरा का विवाह नहीं होगा। बेटी बाप के घर में नहीं खटती बेटा! यदि तुम मान जाओ तो दादा हुकम को मनाना सरल हो जायेगा। बाद में ऐसा घर-वर शायद न मिले। मुझे भी तुमसे ऐसी बातें करना अच्छा नहीं लग रहा है, किन्तु कठिनाई ही ऐसी आन पड़ी है तुम्हारी माताएँ कहती हैं कि हमसे ऐसी बात कहते नहीं बनती। पहले योग-भक्ति सिखाई अब विवाह के लिये पूछ रहे हैं। इसी कारण स्वयं पूछ रहा हूँ बेटी।"

'बावजी हुकम!' रूंधे कंठ से मीरा केवल सम्बोधन ही कर पायी। ढलने को आतुर आंसुओं से भरी बड़ी-बडी आँखें उठाकर उसने अपने बड़े पिता की और देखा। ह्रदय के आवेग को अदम्य पाकर वह एकदम से उठकर माता-पिता को प्रणाम किये बिना ही दौड़ती हुई कक्षसे बाहर निकल गयी।

वीरमदेवजी नें देखा - मीरा के रक्तविहीन मुखपर व्याघ्र के पंजे में फँसी गाय के समान भय, विवशता और निराशा के भाव और मरते पशु के आर्तनाद सा विकल स्वर 'बावजी हुकम' कानों में पड़ा तो वे विचलित हो उठे। वे रण में प्रलयंकर बन कर शवों से धरती पाट सकते हैं; निशस्त्र व्याघ्र से लड़ सकते हैं, किन्तु अपनी पुत्री की आँखों में विवशता नहीं देख सकें। उन्हें तो ज्ञात ही नहीं हुआ कि मीरा "बाव जी हुकम" कहते कब कक्ष से बाहर चली गई।

बड़े पिताजी और बड़ी माँ के यूँ मीरा से सीधे-सीधे ही मेवाड़ के राजकुवंर भोजराज से विवाह के प्रस्ताव पर मीरा का ह्रदय विवशता से क्रन्दन कर उठा। वह शीघ्रता पूर्वक कक्ष से बाहर आ सीढ़ियाँ उतरती चली गई। वह नहीं चाहती थी कि कोई भी उसकी आँखों में आँसू भी देखे। जिसने उसे दौड़ते हुए देखा, चकित रह गया, बबल्कि पुकारा भी, पर मीरा ने किसी की बात का उत्तर नहीं दिया।

मीरा अपने ह्रदय के भावों को बाँधे अपने कक्ष में गई और धम्म से पलंग पर औंधी गिर पड़ी। ह्रदय का बाँध तोड़ कर रूदन उमड़ पड़ा - "यह क्या हो रहा है मेरे सर्व-समर्थ स्वामी! अपनी पत्नी को दूसरे के घर देने अथवा जाने की बात तो साधारण-से-साधारण, कायर-से-कायर राजपूत भी नहीं कर सकता। शायद तुमने मुझे अपनी पत्नी स्वीकार ही नहीं किया, अन्यथा ......। हे गिरिधर! यदि तुम अल्पशक्ति होते तो मैं तुम्हें दोष नहीं देती। तब तो यही सत्य है न कि तुमने मुझे अपना माना ही नहीं ....। न किया हो, स्वतन्त्र हो तुम। किसी का बन्धन तो नहीं है तुम पर।"

"हे प्राणनाथ! पर मैंने तो तुम्हें अपना पति माना है...., मैं कैसे अब दूसरा पति वर लूँ? और कुछ न सही, शरणागत के सम्बन्ध से ही रक्षा करो.....रक्षा करो। अरे ऐसा तो निर्बल-से-निर्बल राजपूत भी नहीं होने देता। यदि कोई सुन भी लेता है कि अमुक कुमारी ने उसे वरण किया है तो प्राणप्रण से वह उसे बचाने का, अपने यही लाने का प्रयत्न करता है।

तुम्हारी शक्ति तो अनन्त है, तुम तो भक्त-भयहारी हो। हे प्रभु ! तुम तो करूणावरूणालय हो, शरणागतवत्सल हो, पतितपावन हो, दीनबन्धु हो........कहाँ तक गिनाऊँ.....। इतनी अनीति मत करो मोहन ....मत करो। मेरे तो तुम्हीं एकमात्र आश्रय हो.. रक्षक हो.......तुम्हीं सर्वस्व हो, मैं

अपनी रक्षा के लिये तुम्हें छोड़ किसे पुकारूँ......किसे पुकारूँ......किसे .?

जो तुम तोड़ो पिया, मैं नहीं तोडूं।
तोसों प्रीत तोड़ कृष्ण, कौन संग जोडूं॥
तुम भये तरूवर, मैं भई पंखिया।
तुम भये सरोवर, मैं तेरी मछिया॥
तुम भये गिरिवर, मैं भई चारा।
तुम भये चन्दा, मैं भई चकोरा॥
तुम भये मोती, प्रभु हम भये धागा।
तुम भये सोना, हम भये सुहागा॥
मीरा कहे प्रभु बृज के वासी।
तुम मेरे ठाकुर मुझे तेरी दासी॥
जो तुम तोड़ो पिया, मैं नहीं तोडूं।
तोसो प्रीत तोड़ कृष्ण, कौन संग जोडूं॥

राव दूदाजी अब अस्वस्थ रहने लगे थे। अपना अंत समय समीप जानकर उनकी ममता मीरा पर अधिक बढ़ गयी थी। उसके मुख से भजन सुने बिना उन्हें दिन सूना लगता। मीरा भी समय मिलते ही दूदाजी के पास जा बैठती। उनके साथ भगवत चर्चा करती। अपने और अन्य संतो के रचे हुए पद सुनाती।

ऐसे ही उस दिन मीरा गिरधर की सेवा पूजा कर बैठी ही थी कि गंगा ने बताया कि दूदाजी ने आपको याद फरमाया है। मीरा ने जाकर देखा तो उनके पलंग के पास पाँचों पुत्र, दीवान जी, राजपुरोहित और राजवैद्यजी सब वहीं थे। सहसा आँखें खोल कर दूदाजी ने पुकारा, "मीरा....। "जी मैं हाजिर हूँ बाबोसा।" मीरा उनके पास आ बोली। "मीरा भजन गाओ बेटी!"

मीरा ने ठाकुर जी की भक्त वत्सलता का एक पद गाया। पद पूरा होने पर दूदाजी ने चारभुजानाथ के दर्शन की इच्छा प्रकट की। तुरन्त पालकी मंगवाई गई। उन्हें पालकी में पौढ़ा कर चारों पुत्र कहार बने। वीरमदेव जी छत्र लेकर पिताजी के साथ चले। दो घड़ी तक दर्शन करते रहे। पुजारी जी ने चरणामृत, तुलसी माला और प्रसाद दिया। वहाँ से लौटते श्याम कुन्ज में गिरधर गोपाल के दर्शन किए और मन ही मन कहा,

"अब चल रहा हूँ स्वामी! अपनी मीरा को संभाल लेना प्रभु।" महल में वापिस लौट कर थोड़ी देर आँखें मूंद कर लेटे रहे। फिर अपनी तलवार वीरमदेव जी को देते हुये कहा, "प्रजा की रक्षा का और राज्य के संचालन का पूर्ण दायित्व तुम्हारे सबल स्कन्ध वाहन करे।" मीरा और जयमल को पास बुला कर आशीर्वाद देते हुये कहने लगे, "प्रभु कृपा से, तुम दोनों के शौर्य व भक्ति से मेड़तिया कुल का यश संसार में गाया जायेगा। भारत की भक्त माल में तुम दोनों का सुयश पढ़ सुनकर लोग भक्ति और शौर्य पथ पर चलने का उत्साह पायेंगे। उनकी आँखों से मानों आशीर्वाद स्वरूप आँसू झरने लगे। वीरमदेव जी ने दूदाजी से विनम्रता से पूछा, "आपकी कोई इच्छा हो तो आज्ञा दें।" "बेटा! सारा जीवन संत सेवा का सौभाग्य मिलता रहा। अब संसार छोड़ते समय बस संत दर्शन की ही लालसा है। पर यह तो प्रभु के हाथ की बात है।" वीरमदेव जी ने उसी समय पुष्कर की ओर सवार दौड़ाये संत की खोज में। मीरा आज्ञा पाकर गाने लगी ......

नहीं ऐसो जनम बारम्बार।
क्या जानूँ कुछ पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार॥
बढ़त पल पल घटत दिन दिन जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे लगे नहिं पुनि डार॥
भवसागर अति जोर कहिये विषम ऊंडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥
ज्ञान चौसर मँडी चौहटे सुरत पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी जीत भावै हार॥
साधु संत मंहत ज्ञानी चलत करत पुकार।
दास मीरा लाल गिरधर जीवणा दिन चार॥

पद पूरा करके मीरा ने अभी तानपुरा रखा ही था कि द्वारपाल ने आकर निवेदन किया- "अन्नदाता! दक्षिण से श्री चैतन्यदास नाम के संत पधारे हैं।" उसकी बात सुनने ही दूदाजी एकदम चैतन्य हो गये। मानो बुझते हुए दीपक की लौ भभक उठी हो। आँख खोल कर उन्होंने संत को सम्मान से पधराने का संकेत किया। सब राजपुरोहित जी के साथ उनके स्वागत के लिया बढ़े ही थे कि द्वार पर गम्भीर और मधुर स्वर सुनाई

दिया ....'राधेश्याम'

मीरा के दूदाजी, परम वैष्णव भक्त आज अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर हैं। लगभग समस्त परिवार उनके कक्ष में जुटा हुआ है, पर उन्हें लालसा है कि मैं संसार छोड़ते समय संत दर्शन कर पाऊँ। उसी समय द्वार से मधुर स्वर सुनाई दिया....... राधेश्याम! दूदाजी में जैसे चेतना लौट आई। सब की दृष्टि उस ओर उठ गई। मस्तक पर घनकृष्ण केश, भाल पर तिलक , कंठ और हाथ तुलसी माला से विभूषित, श्वेत वस्त्र, भव्य मुख वैष्णव संत के दर्शन हुए। संत के मुख से राधेश्याम, यह प्रियतम का नाम सुनकर उल्लासित हो मीरा ने उन्हें प्रणाम किया। फिर दूदाजी से बोली, "आपको संत-दर्शन की इच्छा थी न बाबोसा? देखिये, प्रभु ने कैसी कृपा की।" संत ने मीरा को आशीर्वाद दिया और परिस्थिति समझते हुये स्वयं दूदाजी के समीप चले गये। बेटों ने संकेत पा पिता को सहारे से बिठाया। प्रणाम कर बोले, "कहाँ से पधारना हुआ महाराज?" "मैं दक्षिण से आ रहा हूँ राजन। नाम चैतन्यदास है। कुछ समय पहले गौड़ देश के प्रेमी सन्यासी श्री कृष्ण चैतन्य तीर्थाटन करते हुये मेरे गाँव पधारे और मुझ पर कृपा कर श्री वृंदावन जाने की आज्ञा की।"

"श्री कृष्ण चैतन्य सन्यासी हो कर भी प्रेमी हैं महाराज"? मीरा ने उत्सुकता से पूछा। संत बोले, "यों तो उन्होंने बड़े-बड़े दिग्विजयी वेदान्तियों को भी पराजित कर दिया है, परन्तु उनका सिद्धांत है कि सब शास्त्रों का सार भगवत्प्रेम है और सब साधनों का सार भगवान का नाम है। त्याग ही सुख का मूल है। तप्तकांचन गौरवर्ण सुन्दर सुकुमार देह, बृजरस में छके श्रीकृष्ण चैतन्य का दर्शन करके लगता है मानो स्वयं गौरांग कृष्ण ही हो। वे जाति-पाति, ऊँच-नीच नहीं देखते। 'हरि को भजे सो हरि का होय' मानते हुए सबको हरि-नामामृत का पान कराते हैं। अपने ह्रदय के अनुराग का द्वार खोलकर सबको मुक्त रूप से प्रेमदान करते है।" इतना कहते-कहते उनका कंठ भाव से भर आया। मीरा और दूदाजी दोनों की आँखें इतना रसमय सत्संग पाकर आँसुओं से भर आई। फिर संत कहने लगे, "मैं दक्षिण से पण्डरपुर आया तो वहाँ मुझे एक वृद्ध सन्यासी केशवानन्द जी मिले। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं वृंदावन जा रहा हूँ तो उन्होंने मुझे एक प्रसादी माला देते हुये कहा कि तुम पुष्कर होते हुये मेड़ते जाना और वहाँ के राजा दूदाजी राठौड़ को यह माला देते हुये

कहना कि वे इसे अपनी पौत्री को दे दें। पण्डरपुर से चल कर मैं पुष्कर आया और देखिए प्रभु ने मुझे सही समय पर यहाँ पहुँचा दिया।" ऐसा कह संत ने अपने झोले से माला निकाल दूदाजी की ओर बढ़ाई।

दूदाजी ने संकेत से मीरा को उसे लेने को कहा। उसने बड़ी श्रद्धा और प्रसन्नता से उसे अंजलि में लेकर उसे सिर से लगाया। दूदाजी लेट गये और कहने लगे, "केशवानन्द जी मीरा के जन्म से पूर्व पधारे थे। उन्हीं के आशीर्वाद का फल है यह मीरा। महाराज आज तो आपके रूप में स्वयं भगवान पधारे हैं। यों तो सदा ही संतों को भगवत्स्वरूप समझ कर जैसी बन पड़ी, सेवा की है, किन्तु आज महाप्रयाण के समय आपने पधार कर मेरा मरण भी सुधार दिया।" उनके बन्द नेत्रों की कोरों से आँसू झरने लगे। "पर ऐसे कर्तव्य परायण और वीर पुत्र, फुलवारी सा यह मेरा परिवार, भक्तिमति पौत्री मीरा, अभिमन्यु सा पौत्र जयमल, ऐसे भरे-पूरे परिवार को छोड़कर जाना मेरा सौभाग्य है।" फिर बोले, "मीरा !" "हकम बाबोसा !" "जाते समय एक भजन तो सुना दे बेटा !" मीरा ने आज्ञा पा तानपुरा उठाया और गाने लगी .....

मैं तो तेरी शरण पड़ी रे रामा, ज्यूँ जाणे सो तार।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नहीं मानी हार।
या जग में कोई नहीं अपणा, सुणियो श्रवण कुमार।
मीरा दासी राम भरोसे, जम का फेरा निवार।

मधुर संगीत और भावमय पद श्रवण करके चैतन्य दास स्वयं को रोक नहीं पाये-"धन्य, धन्य हो मीरा। तुम्हारा आलौकिक प्रेम, संतों पर श्रद्धा, भक्ति की लगन, मोहित करने वाला कण्ठ, प्रेम रस में पगे यह नेत्र - इन सबको तो देख लगता है - मानो तुम कोई ब्रजगोपिका हो। वे जन भाग्यशाली होंगे जो तुम्हारी इस भक्ति-प्रेम की वर्षा में भीगकर आनन्द लूटेंगें। धन्य है आपका यह वंश, जिसमें यह नारी रत्न प्रकट हुआ।" मीरा ने सिर नीचा कर प्रणाम किया और अतिशय विनम्रता से बोली, "कोई अपने से कुछ नहीं होता महाराज ......।" संत कुछ आहार ले चलने को प्रस्तुत हुए। रात्रि बीती। दूदाजी का अंतर्मन चैतन्य था पर शरीर शिथिल हो रहा था। ब्रह्म-मुहूर्त में मीरा ने दासियों के साथ धीमे-धीमे संकीर्तन आरम्भ किया।

जय चतुर्भुजनाथ दयाल। जय सुन्दर गिरधर गोपाल॥

उनके मुख से अस्फुट स्वर निकले - "प्र......भु .....प......धार.......रहे...... हैं.....। ज.....य .....हो"। पुरोहित जी ने तुलसी मिश्रित चरणामृत दिया। मीरा की भक्ति संस्कारों को पोषण देने वाले, मेड़ता राज्य के संस्थापक, परम वैष्णव भक्त, वीर शिरोमणि राव दूदाजी पचहत्तर वर्ष की आयु में यह भव छोड़कर गोलोक सिधारे।

दूदाजी के जाने के बाद मीरा बहुत गम्भीर हो गई। उसके सबसे बड़े सहायक और अवलम्ब उसके बाबोसा के न रहने से उसे अकेलापन खलने लगा। यह तो प्रभु की कृपा और दूदाजी की भक्ति का प्रताप था कि पुष्कर आने वाले संत मेड़ता आकर दर्शन देते। इस प्रकार मीरा को अनायास सत्संग प्राप्त होता। पर धीरे-धीरे रनिवास में इसका भी विरोध होने लगा - "लड़की बड़ी हो गई है, अतः इस प्रकार देर तक साधुओं के बीच में बैठे रहना और भजन गाना अच्छा नहीं है।" "सभी साधु तो अच्छे नहीं होते। पहले की बात ओर थी। तब अन्नदाता हुकम साथ रहते थे और मीरा भी छोटी ही थी। अब वह चौदह वर्ष की हो गई है। आख़िर कब तक कुंवारी रखेंगे?"

एक दिन माँ ने फिर श्याम कुन्ज आकर मीरा को समझाया -"बेटी अब तू बड़ी हो गई है इस प्रकार साधुओं के पास देर तक मत बैठा कर। उन बाबाओं के पास ऐसा क्या है जो किसी संत के आने की बात सुनते ही तू दौड़ जाती है। यह रात-रात भर रोना और भजन गाना, क्या इसलिए भगवान ने तुम्हें ऐसे रूप गुण दिये हैं?"

"ऐसी बात मत फरमाओ भाबू! भगवान को भूलना और सत्संग छोड़ना दोनों ही अब मेरे बस की बात नहीं रही। जिस बात के लिए आपको गर्व होना चाहिए, उसी के लिए आप मन छोटा कर रही है।" मीरा ने तानपुरा उठाया ..

म्हाँने मत बरजे ऐ माय साधाँ दरसण जाती।
राम नाम हिरदै बसे माहिले मन माती॥
मीरा व्याकुल बिरहणि, अपनी कर लीजे॥

माता उठकर चली गई। मीरा को समझाना उनके बस का न रहा।

सोचती - अब इसके लिए जोगी राजकुवंर कहाँ से ढूँढें? मीरा भी उदास हो गयी। बार-बार उसे दूदाजी याद आते।

इन्हीं दिनों अपनी बुआ गिरिजा जी को लेने चितौड़ से कुँवर भोजराज अपने परिकर के साथ मेड़ता पधारे; रूप और बल की सीमा, धीर-वीर, समझदार बीसेक वर्ष का नवयुवक। जिसने भी देखा, प्रशंसा किए बिना नहीं रह पाया। जहाँ देखो, महल में यही चर्चा करते -"ऐसी सुन्दर जोड़ी दीपक लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी। भगवान ने मीरा को जैसे रूप - गुणों से संवारा है, वैसा भाग्य भी दोनों हाथों से दिया है।"

भीतर ही भीतर यह तय हुआ कि गिरिजा जी के साथ यहाँ से पुरोहित जी जायँ बात करने। और अगर वहाँ साँगा जी अनुकूल लगे तो गिरिजा जी को वापिस लिवाने के समय वीरमदेव जी बात पक्की कर लगन की तिथि निश्चित कर लें। हवा के पंखों पर उड़ती हुईं ये बातें मीरा के कानों तक भी पहुँची। वह व्याकुल हो उठी। मन की व्यथा किससे कहे? जन्मदात्री माँ ही जब दूसरों के साथ जुट गई है तो अब रहा ही कौन? मन के मीत को छोड़कर मन की बात समझे भी और कौन? पर वो भी क्या समझ रहे हैं? भारी ह्रदय और रूधाँ कण्ठ ले उसने मन्दिर में प्रवेश किया -"मेरे स्वामी! मेरे गोपाल! मेरे सर्वस्व! मैं कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? मुझे बताओ, यह तुम्हें अर्पित तन-मन क्या अब दूसरों की सम्पत्ति बनेंगे? मैं तो तुम्हारी हूँ....... या तो मुझे संभाल लो अथवा आज्ञा दो मैं स्वयं को बिखेर दूँ....... पर अनहोनी न होने दो मेरे प्रियतम!" झरते नेत्रों से मीरा अपने प्राणाधार को उनकी करूणा का स्मरण दिला मनाने लगी ....

म्हाँरी सुध लीजो दीनानाथ।
जल डूबत गजराज उबारायो जल में पकड़यो हाथ।
जिन प्रह्लाद पिता दुख दीनो नरसिंघ भया यदुनाथ॥
नरसी मेहता रे मायरे राखी वाँरी बात।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भव में पकड़ो हाथ॥
म्हाँरी सुध लीजो दीनानाथ॥

कुँवर भोजराज पहली बार बुआ गिरिजा के ससुराल आये थे। भुवा के दुलार की सीमा न थी। एक तो मेवाड़ के उत्तराधिकारी, दूसरे

गिरिजा जी के लाडले भतीजे और तीसरे मेड़ते के भावी जमाई होने के कारण पल-पल महल में सब उनकी आवभगत में जुटे थे।

जयमल और भोजराज की सहज ही मैत्री हो गई। दोनों ही इधर-उधर घूमते-घामते फुलवारी में आ निकले। सुन्दर श्याम कुन्ज मन्दिर को देखकर भोजराज के पाँव उसी ओर उठने लगे। मीठी रागिनी सुनकर उन्होंने उत्सुकता से जयमल की ओर देखा। जयमल ने कहा, "मेरी बड़ी बहन मीरा है। इनके रोम-रोम में भक्ति बसी हुई है।"

"जैसे आपके रोम-रोम में वीरता बसी हुई है।" भोजराज ने हँस कर कहा, "भक्ति और वीरता, भाई बहन की ऐसी जोड़ी कहाँ मिलेगी? विवाह कहाँ हुआ इनका ?" "विवाह ? विवाह की क्या बात फरमाते हैं आप ? विवाह का तो नाम भी सुनते ही जीजा (दीदी) की आँखों से आँसुओं के झरने बहने लगते हैं। हुआ यों कि किसी बारात को देखकर जीजा ने काकीसा से पूछा कि हाथी पर यह कौन बैठा है ? उन्होंने बतलाया कि नगर सेठ की लड़की का वर है। यह सुनकर इन्होने जिद की कि मेरा वर बताओ। काकीसा ने इन्हें चुप कराने के लिए कह दिया कि तेरा वर गिरधर गोपाल है। बस, उसी समय से इन्होंने भगवान को अपना वर मान लिया है। रात-दिन बस भजन-पूजन, भोग-राग, नाचने-गाने में लगी रहती हैं। जब यह गाने बैठती हैं तो अपने आप मुख से भजन निकलते जाते हैं। बाबोसा के देहांत के पश्चात पुनः इनके विवाह की रनिवास में चर्चा होने लगी है। इसलिए अलग रह श्याम-कुन्ज में ही अधिक समय बिताती हैं।" जयमल ने बाल स्वभाव से ही सहज ही सब बातें भोजराज को बताई।

"यदि आज्ञा हो तो ठाकुर जी और राठौड़ों की इस विभूति का मैं भी दर्शन कर लूँ?" भोजराज ने प्रभावित होकर सर्वथा अनहोनी सी बात कही। न चाहते हुये भी केवल उनका सम्मान रखने के लिए ही जयमल बोले, "हाँ हाँ अवश्य, पधारो।" उन दोनों ने फुलवारी की बहती नाली में ही हाथ पाँव धोये और मन्दिर में प्रवेश किया। सीढ़ियाँ चढ़ते हुये भोजराज ने उस करूणा के पद की अंतिम पंक्ति सुनी..........

मीरा के प्रभु गिरधर नागर भव में पकड़ो हाथ॥

वह भजन पूरा होते ही बेखबर मीरा ने अपने प्राणाधार को मनाते

हुये दूसरा भजन आरम्भ कर दिया .....

गिरधर लाल प्रीत मति तोड़ो।
गहरी नदिया नाव पुरानी अधबिच में काँई छोड़ो॥
थें ही म्हाँरा सेठ बोहरा ब्याज मूल काँई जोड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर रस में विष काँई घोल॥

अश्रुसिक्त मुख और भरे कण्ठ से मीरा ह्रदय की बात, संगीत के सहारे अपने आराध्य से कह रही थी। ठाकुर को उन्हीं के गुणों का वास्ता दे कर, उन्हें ही एकमात्र आश्रय मान कर,अत्यन्त दीन भाव से कृपा की गुहार लगा रही थी। मीरा अपने भाव में इतनी तन्मय थीं कि किसी के आने का उसे ज्ञात ही नहीं हुआ।

एक दृष्टि मूर्ति पर डालकर भोजराज ने उन्हें प्रणाम किया। गायिका पर दृष्टि पड़ी तो देखा कि उसके नेत्रों से अविराम आँसू बह रहे थे, जिससे बरबस ही मीरा का फूल सा मुख कुम्हला सा गया था। यह देख कर युवक भोजराज ने अपना आपा खो दिया। भजन पूरा होते ही जयमल ने चलने का संकेत किया। तब तक मीरा ने इकतारा एक ओर रख आँखें खोली और तनिक दृष्टि फेर पूछा, "कौन है?"

भोजराज को पीछे ही छोड़ कर आगे बढ़ कर स्नेह युक्त स्वर में जयमल बोले, "मैं हूँ जीजा।" समीप जाकर और घुटनों के बल पर बैठकर अंजलि में बहन का आँसुओं से भीगा मुख लेते हुए आकुल स्वर में पूछा, "किसने दुख दिया आपको?" बस भाई के तो पूछने की देर भर थी कि मीरा के रूदन का तो बाँध टूट पड़ा। वह भाई के कण्ठ लग फूट-फूट कर रोने लगी। "आप मुझसे कहिये तो जीजा, जयमल प्राण देकर भी आपको सुखी कर सके तो स्वयं को धन्य मानेगा।" दस वर्ष का बालक जयमल जैसे आज बहन का रक्षक हो उठा। मीरा क्या कहे, कैसे कहे? उसका यह दुलारा छोटा भाई कैसे जानेगा कि प्रेम-पीर क्या होती है?

जयमल जब भी बहन के पास आता या कभी महल में रास्ते में मिल जाता तो मीरा कितनी ही आशीष भाई को देती न थकती - "जीवता रीजो जग में, काँटा नी भाँगे थाँका पग में!"और" हूँ, बलिहारी म्हाँरा वीर थाँरा ई रूप माथे।" सदा हँसकर सामने आने वाली बहन को यूँ रोते देख जयमल तड़प उठा, "एक बार, जीजा आप कहकर तो देखो, मैं आपको

यूँ रोते नहीं देख सकता।"

"भाई! आप मुझे बचा लीजिए, बचा लीजिए, मीरा भरे कण्ठ से हिल्कियों के मध्य कहने लगी - "सभी लोग मुझे मेवाड़ के महाराज कुँवर से ब्याहना चाहते है। स्त्री का तो एक ही पति होता है भाई! अब गिरधर गोपाल को छोड़ ये मुझे दूसरे को सौंपना चाहते हैं। मुझे इस पाप से बचा लीजिए भाई; आप तो इतने वीर हैं। मुझे आप तलवार के घाट उतार दीजिए। मुझसे यह दु:ख नहीं सहा जाता। मैं आपसे मेरी राखी का मूल्य माँग रही हूँ। भगवान आपका भला करेंगे।"

जयमल बहन की बात सुनकर सन्न रह गये। एक तरफ बहन का दु:ख और दूसरी तरफ़ अपनी असमर्थता। जयमल दु:ख से अवश होकर बहन को बाँहो में भर रोते हुये बोले, "मेरे वीरत्व को धिक्कार है कि आपके किसी काम न आया।........यह हाथ आप पर उठें, इससे पूर्व जयमल के प्राण देह न छोड़ देंगे? मुझे क्षमा कर दीजिये जीजा। मेरे वीरत्व को धिक्कार है कि आपके किसी काम न आया.......।"

दोनों भाई बहन को भावनाओं में बहते, रोते ज्ञात ही नहीं हुआ कि श्याम कुन्ज के द्वार पर एक पराया एवं सम्माननीय अतिथि खड़ा आश्चर्य से उन्हें देख और सुन रहा है।

श्याम कुन्ज में मीरा और जयमल, दोनों भाई बहन एक दूसरे के कण्ठ लगे रूदन कर रहे हैं। जयमल स्वयं को अतिशय असहाय मान रहे हैं जो बहन की कैसे भी सहायता करने में असमर्थ पा रहे हैं।

भोजराज श्याम कुन्ज के द्वार पर खड़े उन दोनों की बातें आश्चर्य से सुन रहे थे। वे थोड़ा समीप आते ही सीधे मीरा को ही सम्बोधित करते हुए बोले, "देवी!" उनका स्वर सुनते ही दोंनो ही चौंक कर अलग हो गये। एक अन्जान व्यक्ति की उपस्थिति से बेखबर मीरा ने मुँह फेर कर उघड़ा हुआ सिर ढक लिया। पलक झपकते ही वह समझ गई कि यह अन्जान, तनिक दु:ख और गरिमा युक्त स्वर और किसी का नहीं, मेवाड़ के राजकुमार का है। थोड़े संकोच के साथ उसने उनकी ओर पीठ फेर ली।

"देवी! आत्महत्या महापाप है। और फिर बड़ो की आज्ञा का उल्लंघन भी इससे कम नहीं। आपने जिस चित्तौड़ के राजकुवंर का नाम लिया, वह अभागा अथवा सौभाग्यशाली जन आपके सामने उपस्थित है। मुझ भाग्यहीन के कारण ही आप जैसी भक्तिमती कुमारी को इतना

परिताप सहना पड़ रहा है। उचित तो यह है कि मैं ही देह छोड़ दूँ ताकि सारा कष्ट ही कट जाये, किन्तु क्या इससे आपकी समस्या सुलझ जायेगी? मैं नहीं तो मेरा भाई - या फिर कोई और - राजपूतों में वरों की क्या कमी? हम लोगों का अपने गुरूजनों पर बस नहीं चलता। वे भी क्या करें? क्या कभी किसी ने सुना है कि बेटी बाप के घर कुंवारी बैठी रह गई हो? पीढ़ियों से जो होता आया है, उसी के लिए तो सब प्रयत्नशील है।"

भोजराज ने अत्यंत विनम्रता से अपनी बात समझाते हुये कहा, "हे देवी! कभी किसी के घर आप जैसी कन्याएँ उत्पन्न हुईं है कि कोई अन्य मार्ग उनके लिए निर्धारित हुआ हो? मुझे तो इस उलझन का एक ही हल समझ में आया है। और वो यह कि माता-पिता और परिवार के लोग जो करे, सो करने दीजिए और अपना विवाह आप ठाकुर जी के साथ कर लीजिए। यदि ईश्वर ने मुझे निमित्त बनाया तो मैं वचन देता हूँ कि केवल दुनिया की दृष्टि में बींद बनूँगा आपके लिए नहीं। जीवन में कभी भी आपकी इच्छा के विपरीत आपकी देह को स्पर्श भी नहीं करूँगा। आराध्य मूर्ति की तरह ....।" भोजराज का गला भर आया। एक क्षण रूककर वे बोले, "आराध्य मूर्ति की भाँति आपकी सेवा ही मेरा कर्तव्य रहेगा। आपके पति गिरधर गोपाल मेरे स्वामी और आप ... आप.... मेरी स्वामिनी।"

भीष्म प्रतिज्ञा कर, भोजराज पल्ले से आँसू पौंछते हुये पलट करके मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर गये। एक हारे हुये जुआरी की भाँति पाँव घसीटते हुये वे पानी की नाली पर आकर बैठे। दोनों हाथों से अंजलि भर भर करके मुँह पर पानी के छींटे मारने लगे ताकि आते हुये जयमल से अपने आँसु और उनकी वजह छुपा पायें। पर मन ने तो आज नेत्रों की राह से आज बह जाने की ठान ही ली थी। वे अपनी सारी शक्ति समेट उठे और चल पड़े।

जयमल शीघ्रतापूर्वक उनके समीप पहुँचे। उन्होंने देखा, आते समय तो भोजराज प्रसन्न थे, परन्तु अब तो उदासी मुख से झर रही है। उसने सोचा संभवतः जीजा के दु:ख से दु:खी हुए हैं, तभी तो ऐसा वचन दिया। कुछ भी हो, जीजा इनसे विवाह कर सुखी ही होंगी। और भोजराज? वे चलते हुये जयमल से बीच से ही विदा ले मुड़ गये ताकि कहीं एकान्त पा अपने मन का अन्तर्दाह बाहर निकालें।

भोजराज श्याम कुन्ज से प्रतिज्ञा कर अपने डेरे लौट आये। वहाँ आकर कटे वृक्ष की भाँति पलंग पर जा पड़े। पर चैन नहीं पड़ रहा था। कमर में बंधी कटार चुभी, तो म्यान से बाहर निकाल धार देखते हुये अनायास ही अपने वक्ष पर तान ली। एक क्षण में ही लगा जैसे बिजली चमकी हो। अंतर में मीरा आ खड़ी हुईं। उदास मुख, कमल-पत्र पर ठहरे ओस-कण से आँसू गालों पर चमक रहे हैं। जलहीन मत्स्या (मछली) सी आकुल दृष्टि मानो कह रही हो - आप ऐसा करेंगे - तो मेरा क्या होगा?

भोजराज ने तड़पकर कटार दूर फैंक दी। मेवाड़ का उत्तराधिकारी, लाखों वीरों का अग्रणी, जिसका नाम सुनकर ही शत्रुओं के प्राण सूख जाते हैं और दीन-दुखी श्रद्धा से जय-जयकार कर उठते हैं, जिसे देख माँ की आँखों में सौ-सौ सपने तैर उठते हैं, वही मेदपाट का भावी नायक आज घायल शूर की भाँति धरा पर पड़ा है। आशा-अभिलाषा और यौवन की मानों अर्थी उठ गई हो। उनका धीर-वीर ह्रदय प्रेम पीड़ा से कराह उठा। उन्हें इस दुःख में भाग बाँटने वाला कोई दिखाई नहीं देता। उनके कानों में मीरा की गिरधर को करूण पुकार ....

म्हाँरा सेठ बोहरा, ब्याज मूल काँई जोड़ो। गिरधर लाल प्रीति मति तोड़ो॥

गूँज रही है......। "हाय! कैसा दुर्भाग्य है इस अभागे मन का? कहाँ जा लगा यह? जहाँ इसकी रत्ती भर भी परवाह नहीं। पाँव तले रूँदने का भाग्य लिखाकर आया है बदनसीब!"

'मीरा' कितना मीठा नाम है यह, जैसे अमृत से सिंचित हो। अच्छा इसका अर्थ क्या है भला? किससे पूछुँ?" "अब तो उन्हीं से पूछना होगा। उनके चित्तौड़ आने पर।" उनके होंठों-पर मुस्कान, ह्रदय में विद्युत तरंग थिरक गई। वे मीरा से मानों प्रत्यक्ष बात करने लगे -"मुझे केवल तुम्हारे दर्शन का अधिकार चाहिए। तुम प्रसन्न रहो। तुम्हारी सेवा का सुख पाकर यह भोज निहाल हो जायेगा। मुझे और कुछ नहीं चाहिए .. कुछ भी नहीं।"

अगले दिन ही भोजराज ने गिरिजा बुआ से और वीरमदेव जी से घर जाने की आज्ञा माँगी। गिरिजा जी ने भतीजे का मुख थोड़ा मलिन देख पूछा तो भोजराज ने हँस कर बात टाल दी। हालांकि वे मेड़ता में सबका सम्मान करते पर अब उनका यहाँ मन न लग रहा था।

भोजराज चित्तौड़ आ गये पर उनका मन अब यहाँ भी नहीं लगता

था। न जाने क्यों अब उन्हें एकान्त प्रिय लगने लगा। एकान्त मिलते ही उनका मन श्याम कुन्ज में पहुँच जाता। रोकते-रोकते भी वह उन बड़ी-बड़ी झुकी आँखों, स्वर्ण गौर वर्ण, कपोलों पर ठहरी अश्रु बूँदों, सुघर नासिका, उसमें लगी हीरक कील, कानों में लटकती झूमर वह आकुल व्याकुल दृष्टि, उस मधुर कंठ-स्वर के चिन्तन में खो जाता।

वे सोचते, "एक बार भी तो उसने आँख उठाकर नहीं देखा मेरी ओर। पर क्यों देखे ? क्या पड़ी है उसे ? उसका मन तो अपने अराध्य गिरधर में लगा है। यह तो तू ही है, जो अपना ह्रदय उनके चरणों में पुष्प की तरह चढ़ा आया है, जहाँ स्वीकृति के कोई आसार भी नहीं और न ही आशा।"

मेड़ता से गये पुरोहित जी के साथ चित्तौड़ के राजपुरोहित और उनकी पत्नी मीरा को देखने आये। राजमहल में उनका आतिथ्य सत्कार हो रहा है। पर मीरा को तो जैसे वह सब दीखकर भी दिखाई नहीं दे रहा है। उसे न तो कोई रूचि है न ही कोई आकर्षण।

दूसरे दिन माँ सुन्दर वस्त्राभूषण लेकर एक दासी के साथ मीरा के पास आई। आग्रह से स्थिति समझाते हुये मीरा को सब पहनने को कहा। मीरा ने बेमन से कहा, "आज जी ठीक नहीं है, भाबू! रहने दीजिये, किसी और दिन पहन लूँगी।" माँ खिन्न हो कर उठकर चली गईं। तो मीरा ने उदास मन से तानपुरा उठाया और गाने लगी -

राम नाम मेरे मन बसियो रसियो राम रिझाऊँ ए माय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर रज चरणन की पाऊँ ए माय॥

भजन विश्राम कर वह उठी ही थी कि माँ और काकीसा के साथ चित्तौड़ के राजपुरोहित जी की पत्नी ने श्याम कुन्ज में प्रवेश किया। मीरा उनको यथायोग्य प्रणाम कर बड़े संकोच के साथ एक ओर हटकर ठाकुर जी को निहारती हुईं खड़ी हो गई। पुरोहितानी जी ने तो ऐसे रूप की कल्पना भी न की थी। वह, लज्जा से सकुचाई मीरा के सौंदर्य से विमोहित सी हो गई और उनसे प्रणाम का उत्तर, आशीर्वाद भी स्पष्ट रूप से देते न बना। वे कुछ देर मीरा को एकटक निहारते ही बैठी रही। दासियों ने आगे बढ़िया चरणामृत प्रसाद दिया। कुछ समय और यूँ ही मन्त्रमुग्ध बैठी फिर काकीसा के साथ चली गई।

माँ ने सबके जाने के बाद फिर मीरा से कहा, "तेरा क्या होगा, यह आशंका ही मुझे मारे डालती है। अरे विनोद में कहे हुये भगवान से विवाह करने की बात से क्या जगत का व्यवहार चलेगा? साधु-संग ने तो मेरी कोमलांगी बेटी को बैरागन ही बना दिया है। मैं अब किससे जा कर बेटी के सुख की भिक्षा माँगू?"

"माँ आप क्यों दु:खी होती हैं? सब अपने भाग्य का लिखा ही पाते हैं। यदि मेरे भाग्य में दु:ख लिखा है तो क्या आप रो-रो कर उसे सुख में पलट सकती हैं? तब जो हो रहा है उसी में संतोष मानिये। मुझे एक बात समझ में नहीं आती भाबू! जो जन्मा है वह मरेगा ही, यह बात तो आप अच्छी तरह जानती हैं। फिर जब आपकी पुत्री को अविनाशी पति मिला है तो आप क्यों दु:ख मना रही हैं? आपकी बेटी जैसी भाग्यशालिनी और कौन है, जिसका सुहाग अमर है।"

वीरकुवंरी जी एक बार फिर मीरा के तर्क के आगे चुप हो चली गई। मीरा श्याम कुन्ज में अकेली रह गई। आजकल दासियों को भी कामों की शिक्षा दी जा रही है क्योंकि उन्हें भी मीरा के साथ चितौड़ जाना है। मीरा ने एकान्त पा फिर आर्त मन से प्रार्थना आरम्भ की............

तुम सुनो दयाल म्हाँरी अरजी।
भवसागर में बही जात हूँ काढ़ो तो थाँरी मरजी।
या संसार सगो नहीं कोई साँचा सगा रघुबर जी॥
मात पिता अर कुटुम कबीलो सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी॥

मीरा श्याम कुन्ज में एकान्त में गिरधर के समक्ष बैठी है। आजकल दो ही भाव उस पर प्रबल होते है - या तो ठाकुर जी की करूणा का स्मरण कर उनसे वह कृपा की याचना करती है और या फिर अपने ही भाव-राज्य में खो अपने श्यामसुन्दर से बैठे बातें करती रहती है। इस समय दूसरा भाव अधिक प्रबल है। मीरा गोपाल से बैठे निहोरा कर रही है -

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हाँरा सांवरा गिरधारी।

पूरब जनम की प्रीति म्हाँरी, अब नहीं जात निवारी॥
सुन्दर बदन जोवताँ सजनी, प्रीति भई छे भारी।
म्हाँरे घराँ पधारो गिरधर, मंगल गावें नारी॥
मोती चौक पूराऊँ व्हाला, तन मन तो पर वारी।
म्हाँरो सगपण तो सूँ साँवरिया, जग सूँ नहीं विचारी॥
मीरा कहे गोपिन को व्हालो, हम सूँ भयो ब्रह्मचारी।
चरण शरण है दासी थाँरी, पलक न कीजे न्यारी॥

मीरा गाते-गाते अपने भाव जगत में खो गई। वह सिर पर छोटी सी कलशी लिए यमुना जल लेकर लौट रही है। उसके तृषित नेत्र इधर-उधर निहार कर अपना धन खोज रहे हैं। वो यहीं कहीं होंगे, आयेंगे, नहीं आयेंगे, बस इसी ऊहापोह में धीरे-धीरे चल रही थी कि पीछे से किसी ने मटकी उठा ली। उसने अचकचाकर ऊपर देखा तो - कदम्ब पर एक हाथ से डाल पकड़े और एक हाथ में कलशी लटकाये मनमोहन बैठे हँस रहे है। लाज के मारे उसकी दृष्टि ठहर नहीं रही। लज्जा नीचे और प्रेम उत्सुकता ऊपर देखने को विवश कर रही है। वे एकदम वृक्ष से उसके सम्मुख कूद पड़े। वह चौंककर चीख पड़ी, और साथ ही उन्हें देख लजा गई।

"डर गई न?" उन्होंने हँसते हुए पूछा और हाथ पकड़ कर कहा - "चल आ, थोड़ी देर बैठकर बातें करें।" सघन वृक्ष तले एक शिला पर दोनों बैठ गये। मुस्कुरा कर बोले, "तुझे क्या लगा - कोई वानर कूद पड़ा है क्या ? अभी पानी भरने का समय है क्या ? दोपहर में पता नहीं घाट नितान्त सूने रहते हैं। जो कोई सचमुच वानर आ जाता तो?"

"तुम हो न।" उसके मुख से निकला। "मैं क्या यहाँ ही बैठा ही रहता हूँ? गईयाँ नहीं चरानी मुझे?"

"एक बात कहूँ?" मैने सिर नीचा किए हुये कहा। "एक नहीं सौ कह, पर माथा तो ऊँचा कर! तेरो मुख ही नाय दिख रहो मोकू।" उन्होंने मुख ऊँचा किया तो फिर लाज ने आ घेरा। "अच्छो-अच्छो मुख नीचो ही रहने दे। कह, का बात है?"

"तुम्हें कैसे प्रसन्न किया जा सकता है?" बहुत कठिनाई से मैंने कहा। "तो सखी! तोहे मैं अप्रसन्न दीख रहयो हूँ।" "नहीं, मेरा वो मतलब

नहीं था। सुना है तुम प्रेम से वश में होते हो।"

"मोको वश में करके क्या करेगी सखी! नाथ डालेगी कि पगहा बाँधेगी ? मेरे वश हुये बिना तेरो कहा काज अटक्यो है भला?"

"सो नहीं श्यामसुन्दर!" "तो फिर क्या ? कब से पूछ रहो हूँ। तेरो मोहढों (मुख) तो पूरो खुले हु नाय। एकहु बात पूरी नाय निकसै। अब मैं भोरो-भारो कैसे समझूँगो?"

"सुनो श्यामसुन्दर! 'मैंने आँख मूँदकर पूरा ज़ोर लगाकर कह दिया' "मुझे तुम्हारे चरणों में अनुराग चाहिए।" "सो कहा होय सखी?" उन्होंने अन्जान बनते हुये पूछा। अपनी विवशता पर मेरी आँखों में आँसू भर आये। घुटनों में सिर दे मैं रो पड़ी।

"सखी, रोवै मति।" उन्होंने मेरे आँसू पौंछते हुये पूछा -"और ऐसो अनुराग कैसो होवे री?" "सब कहते हैं, उसमें अपने सुख की आशा-इच्छा नहीं होती।" "तो और कहा होय?" श्यामसुन्दर ने पूछा। "बस तुम्हारे सुख की इच्छा।" "और कहा अब तू मोकू दु:ख दे रही है?" ऐसा कह हँसते हुये मेरी मटकी लौटाते हुये बोले, "ले अपनी कलशी! बावरी कहीं की!" और वह वन की ओर दौड़ गये। मैं वहीं सिर पर मटकी ठगी सी बैठी रही।

विवाह के उत्सव घर में होने लगे- हर तरफ कोलाहल सुनाई देता था। मेड़ते में हर्ष समाता ही न था। मीरा तो जैसी थी, वैसी ही रही। विवाह की तैयारी में मीरा को पीठी (हल्दी) चढ़ी। उसके साथ ही दासियाँ गिरधरलाल को भी पीठी करने और गीत गाने लगी।

मीरा को किसी भी बात का कोई उत्साह नहीं था। किसी भी रीति -रिवाज के लिए उसे श्याम कुन्ज से खींच कर लाना पड़ता था। जो करा लो, सो कर देती। न कराओ तो गिरधर लाल के वागे (पोशाकें), मुकुट, आभूषण संवारती, श्याम कुन्ज में अपने नित्य के कार्यक्रम में लगी रहती। खाना पीना, पहनना उसे कुछ भी नहीं सुहाता। श्याम कुन्ज अथवा अपने कक्ष का द्वार बंद करके वह पड़ी-पड़ी रोती रहती।

मीरा का विरह बढ़ता जा रहा है। उसके विरह के पद जो भी सुनता, रोये बिना न रहता। किन्तु सुनने का, देखने का समय ही किसके पास है? सब कह रहे है कि मेड़ता के तो भाग जगे हैं कि हिन्दुआ सूरज का युवराज इस द्वार पर तोरण वन्दन करने आयेगा। उसके स्वागत में ही

सब बावले हुये जा रहे हैं। कौन देखे-सुने कि मीरा क्या कह रही है?

वह आत्महत्या की बात सोचती -

ले कटारी कंठ चीरूँ कर लऊँ मैं अपघात।
आवण आवण हो रह्या रे नहीं आवण की बात॥

किन्तु आशा मरने नहीं देती। जिया भी तो नहीं जाता, घड़ी भर भी चैन नहीं था। मीरा अपनी दासियों-सखियों से पूछती कि कोई संत प्रभु का संदेशा लेकर आये हैं? उसकी आँखें सदा भरी-भरी रहतीं। मीरा का विरह बढ़ता जा रहा है। उसके विरह के पद जो भी सुनता, रोये बिना न रहता।

कोई कहियो रे प्रभु आवन की, आवन की मनभावन की॥
आप न आवै लिख नहीं भेजे, बान पड़ी ललचावन की।
ऐ दोऊ नैण कह्यो नहीं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की॥
कहा करूँ कछु बस नहिं मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, चेरी भई तेरे दाँवन की॥
कोई कहियो रे प्रभु आवन की, आवन की मनभावन की॥

मीरा का विरह बढ़ता जा रहा था। इधर महल में, रनिवास में जो भी रीति रिवाज चल रहे थे, उन पर भी उसका कोई वश नहीं था। मीरा को एक घड़ी भी चैन नहीं था। ऐसे में न तो उसका ढंग से कुछ खाने को मन होता और न ही किसी ओर कार्य में रूचि। सारा दिन प्रतीक्षा में ही निकल जाता। शायद ठाकुर किसी संत को अपना संदेश दे भेजें या कोई संकेत कर मुझे कुछ आज्ञा दें, और रात्रि किसी घायल की तरह रो-रो कर निकलती। ऐसे में जो भी गीत मुखरित होता वह विरह के भाव से सिक्त होता।

घड़ी एक नहीं आवड़े तुम दरसण बिन मोय।
जो मैं ऐसी जाणती रे प्रीति कियाँ दुख होय।
नगर ढिंढोरा फेरती रे प्रीति न कीजो कोय।
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ ऊभी मारग जोय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगा तुम मिलियाँ सुख होय।
(ऊभी अर्थात किसी स्थान पर रूक कर प्रतीक्षा करनी)

कभी मीरा अन्तर्व्यथा से व्याकुल होकर अपने प्राणधन को पत्र लिखने बैठती। कौवे से कहती- "तू ले जायेगा मेरी पाती, ठहर मैं लिखती हूँ।" किन्तु एक अक्षर भी लिख नहीं पाती। आँखों से आँसुओं की झड़ी कागज को भिगो देती -

पतियां मैं कैसे लिखूँ लिखी ही न जाई॥
कलम धरत मेरो कर काँपत हिय न धीर धराई॥
मुख सो मोहिं बात न आवै नैन रहे झराई॥
कौन विध चरण गहूँ मैं सबहिं अंग थिराई॥
मीरा के प्रभु आन मिलें तो सब ही दुख बिसराई॥

मीरा दिन पर दिन दुबली होती जा रही थी। देह का वर्ण फीका हो गया, मानों हिमदाह से मुरझाई कुमुदिनी हो। वीरकुवंरी जी ने पिता रतनसिंह को बताया तो उन्होंने वैद्य को भेजा। वैद्य जी ने निरीक्षण करके बताया - "बाईसा को कोई रोग नहीं, केवल दुर्बलता है।" वैद्य जी गये तो मीरा मन ही मन में कहने लगी - "यह वैद्य तो अनाड़ी है, इसको मेरे रोग का मर्म क्या समझ में आयेगा।" मीरा ने इकतारा लिया और अपने ह्रदय की सारी पीड़ा इस पद में उड़ेल दी -

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विध होय।
गगन मँडल पर सेज पिया की, किस विध मिलना होय॥
घायल की गति घायल जाणे, जो कोई घायल होय।
जौहर की गति जौहरी जाणे, और न जाणे कोय॥
दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहीं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटै जब, वैद साँवरिया होय॥

मीरा श्याम कुन्ज में अपने गिरधर के समक्ष बैठी उन्हें अश्रुसिक्त नेत्रों से निहोरा कर रही थी।

"बाईसा ! बाईसा हुकम !" केसर दौड़ी हुई आयी। उसका मुख प्रसन्नता से खिला हुआ था। "बाईसा जिन्होंने आपको गिरधरलाल बख्शे थे न, वे संत नगर मन्दिर में पधारे हैं।" एक ही सांस में केसर ने सब

बतलाया। "ठाकुर ने बड़ी कृपा की जो इस समय संत दर्शन का सुयोग बनाया।" मीरा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा। "जा केसर उन्हें राजमन्दिर में बुला ला! मैं तेरा अहसान मानूँगी।"

"अहसान क्या बाईसा हुकम! मैं तो आपकी चरण रज हूँ। मैं तो अपने घर से आ रही थी तो वे मुझे रास्ते में मिले, उन्होंने मुझसे सब बात कहकर यह प्रसादी तुलसी दी और कहा कि मुझे एक बार मेरे ठाकुर जी के दर्शन करा दो। अपने ठाकुर जी का नाम लेते ही उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। बाईसा! उनका नाम भी गिरधरदास है।" मीरा शीघ्रता से उठकर महल में भाई जयमल के पास गई और उनसे सारी बात कही। "उन संत को आप कृपया कर श्याम कुन्ज ले पधारिये भाई।"

"जीजा! किसी को ज्ञात हुआ तो गजब हो जायेगा। आजकल तो राजपुरोहित जी नगर के मन्दिर से ही आने वाले संतो का सत्कार कर विदा कर देते हैं। सब कहते हैं, इन संत बाबाओं ने ही मीरा को बिगाड़ा है।" "म्हूँ आप रे पगाँ पड़ू भाई! मीरा रो पड़ी।" भगवान आपरो भलो करेला।"

"आप पधारो जीजा! मैं उन्हें लेकर आता हूँ। किन्तु किसी को ज्ञात न हो। पर जीजा, मैंने तो सुना है कि आप जीमण (खाना) नहीं आरोगती, आभूषण नहीं धारण नहीं करती। ऐसे में मैं अगर साधु ले आऊँ और आप गाने-रोने लग गई तो सब मुझ पर ही बरस पड़ेगें।" "नहीं भाई! मैं अभी जाकर अच्छे वस्त्र आभूषण पहन लेती हूँ। और गिरधर का प्रसाद भी रखा है। संत को जीमा कर मैं भी पा लूँगी। और आप जो भी कहें, मैं करने को तैयार हूँ।"

"और कुछ नहीं जीजा! बस विवाह के सब रीति रिवाज सहज से कर लीजिएगा। आपको पता है जीजा आपके किसी हठ की वजह से बात युद्ध तक भी पहुँच सकती है। आपका विवाह और विदाई सब निर्विघ्न हो जाये- इसकी चिन्ता महल में सबको हो रही है।" "बहन-बेटी इतनी भारी होती है भाई? मीरा ने भरे मन से कहा।" "नहीं जीजा!" जयमल केवल इतना ही बोल पाये।

"आप उन संत को ले आईये भाई! मैं वचन देती हूँ कि ऐसा कुछ न करूँगी, जिससे मेरी मातृभूमि पर कोई संकट आये अथवा मेरे

परिजनों का मुख नीचा हो। आप सबकी प्रसन्नता पर मीरा न्यौछावर है। बस अब तो आप संत दर्शन करा दीजिये भाई!"

गिरधरदास जी ने जब श्याम कुन्ज में प्रवेश किया तो वहाँ का दृश्य देखकर वे चित्रवत रह गये। चार वर्ष की मीरा अब पन्द्रह वर्ष की होने वाली थी। सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सज्जित उसका रूप खिल उठा था। सुन्दर साड़ी के अन्दर काले केशों की मोटी नागिन सी चोटी लटक रही थी। अधरों पर मुस्कान और प्रेममद से छके नयनों में विलक्षण तेज था। श्याम कुन्ज देवागंना जैसे उसके रूप से प्रभासित था। गिरधर दास उसे देखकर ठाकुर जी के दर्शन करना भूल गये।

संत को प्रणाम करने जैसे ही मीरा आगे बढ़ी, उसके नूपुरों की झंकार से वे सचेत हुये। वर रूप में सजे गिरधर गोपाल के दर्शन कर उन्हें लगा - मानों वह वृन्दावन की किसी निभृत निकुन्ज में आ खड़े हुये हैं। उन्हें देखकर जैसे एकाएक श्याम सुन्दर ने मूर्ति का रूप धारण कर लिया और कोई ब्रजवनिता अचकचाकर वैसे ही खड़ी रह गई हो। उनकी आँखों में आँसू भर आये। श्याम कुन्ज का वैभव और उस दिव्यांगना प्रेम पुजारिन को देख कर उन्होंने ठाकुर जी से कहा -"इस रमते साधु के पास सूखे टिकड़ और प्रेमहीन ह्रदयकी सेवा ही तो मिलती थी तुम्हें! अब यहाँ आपका सुख देखकर जी सुखी हुआ। किन्तु लालजी! इस प्रेम वैभव में इस दास को भुला मत देना।"

अपने गिरधर के, ह्रदय नेत्र भर दर्शन कर लेने के पश्चात बाबा वस्त्र-खंड से आँसू पौंछते हुये बोले, "बेटी! तुम्हारी प्रेम सेवा देख मन गदगद हुआ। मैं तो प्रभु के आदेश से द्वारिका जा रहा हूँ। यदि कभी द्वारिका आओगी तो भेंट होगी अन्यथा ...। लालजी के दर्शन की अभिलाषा थी, सो मन तृप्त हुआ।"

"गिरधर गोपाल की बड़ी कृपा है महाराज! आशीर्वाद दीजिये कि सदा ऐसी ही कृपा बनाए रखें। ये मुझे मिले या न मिले, मैं इनसे मिली रहूँ। आप बिराजे महाराज!" उसने केसर से प्रसाद लाने को कहा और स्वयं तानपुरा लेकर गाने लगी -

साँवरा.................. , साँवरा, म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।

मीरा ने सदा की तरह गीत के माध्यम से अपने भाव गिरधर के

समक्ष प्रस्तुत किये...

साँवरा ...., साँवरा म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।
थें छो म्हाँरा गुण रा सागर, औगण म्हाँरा मति जाज्यो जी।
लोकन धीजै म्हाँरो मन न पतीजै, मुखड़ा रा सबद सुणाज्यो जी॥
म्हें तो दासी जनम जनम की, म्हाँरे आँगण रमता आज्यो जी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बेड़ा पार लगाजयो जी॥

भजन की मधुरता और प्रेम भरे भावों से गिरधरदास जी तन्मय हो गये। कुछ देर बाद आँखें खोलकर उन्होंने सजल नेत्रों से मीरा की ओर देखा। उसके सिर पर हाथ रखकर अन्तस्थल से मौन आशीर्वाद दिया। केसर द्वारा लाया गया प्रसाद ग्रहण किया और चलने को प्रस्तुत हुये। जाने से पहले एक बार फिर मन भर कर अपने ठाकुर जी की छवि को अपने नेत्रों में भर लिया। प्रणाम करके वे बाहर आये। मीरा ने झुककर उनके चरणों में मस्तक रखा तो दो बूँद अश्रु संत के नेत्रों से निकल उसके मस्तक पर टपक पड़े।

"अहा! संतों के दर्शन और सत्संग से कितनी शांति -सुख मिलता है ? यह मैं इन लोगों को कैसे समझाऊँ ? वे कहते है कि हम भी तो प्रवचन सुनते ही है पर हमें तो कथा में रोना-हँसना कुछ भी नहीं आता। अरे, कभी खाली होकर बैठें, तब तो कुछ ह्रदय में भीतर जायें। बड़ी कृपा की प्रभु! जो आपने संत दर्शन कराये। और जो हो, सो हो, जीवन जिस भी दिशा में मुड़े, बस आप अपने प्रियजनों-निजजनों-संतों-प्रेमियों का संग देना प्रभु!

उनके अनुभव, उनके मुख से झरती तुम्हारे रूप, गुण, माधुरी की चर्चा प्राणों में फिर से जीने का उत्साह भर देती है, प्राणों में नई तरंग की हिल्लोर उठा देती है। जगत के ताप से तप्त मन-प्राण तुम्हारी कथा से शीतल हो जाते है। "मैं तो तुम्हारी हूँ। तुम जैसा चाहो, वैसे ही रखो। बस मैनें तो अपनी अभिलाषा आपके चरणों में अर्पण कर दी है।"

अक्षय तृतीया का प्रभात। प्रातःकाल मीरा पलंग से सोकर उठी तो दासियाँ चकित रह गई। उन्होंने दौड़ कर माँ वीरकुवंरी जी और पिता रत्नसिंह जी को सूचना दी। उन्होंने आकर देखा कि मीरा विवाह के श्रृंगार से सजी है।

बाहों में खाँचो समेत दाँत का चंदरबायी का चूड़ला है, (विवाह के समय वर के यहाँ से वधू को पहनाने के लिए विशेष सोने के पानी से चित्रकारी किया गया चूड़ा जो कोहनी से ऊपर (खाँच) तक पहना जाता है)। गले में तमण्यों, (ससुराल से आने वाला गले का मंगल आभूषण), नाक में नथ, सिर पर रखड़ी (शिरोभूषण), हाथों में रची मेंहदी, दाहिने हथेली में हस्तमिलाप का चिह्न और साड़ी के पल्लू में पीताम्बर का गठबंधन, चोटी में गूँथे फूल, कक्ष में फैली दिव्य सुगन्ध, मानों मीरा पलंग से नहीं विवाह के मण्डप से उठ रही हो।

"यह क्या मीरा! बारात तो आज आयेगी न?" रत्नसिंह राणावत जी ने हड़बड़ाकर पूछा।"

"आप सबको मुझे ब्याहने की बहुत रीझ थी न, आज पिछली रात मेरा विवाह हो गया।" मीरा ने सिर नीचा किए पाँव के अगूँठे से धरा पर रेख खींचते हुये कहा - "प्रभु ने कृपा कर मझे अपना लिया भाभा हुकम! मेरा हाथ थामकर उन्होंने मुझे भवसागर से पार कर दिया।" कहते-कहते उसकी आँखों से हर्ष के आँसू निकल पड़े।

"ये गहने तो अमूल्य हैं मीरा! कहाँ से आये?" माँ ने घबरा कर पूछा। "पड़ले (वर पक्ष से आने वाली सामग्री या वरी) में आये है भाबू! बहुत सी पोशाकें, श्रृंगार, मेवा और सामग्री भी है। वे सब इधर रखे है। आप देखकर सँभाल ले भाबू!" मीरा ने लजाते हुये धीरे-धीरे कहा।

पोशाकें आभूषण देख सबकी आँखें फैल गईं। जरी के वस्त्रों पर हीरे-जवाहरत का जो काम किया गया था, वह अंधेरे में भी चमचमा रहा था। वीरमदेव जी ने भी सुना तो वह भाईयों के साथ आये। उन्होंने सब कुछ देखा, समझा और आश्चर्य चकित हुये। वीरमदेव जी मीरा के आलौकिक प्रेम और उसके अटूट विश्वास को समझ कर मन ही मन विचार करने लगे -"क्यों विवाह करके हम अपनी सुकुमार बेटी को दु:ख दे रहे हैं? किन्तु अब तो घड़ियाँ घट रही हैं। कुछ भी बस में नहीं रहा अब तो।" वे निश्वास छोड़ बाहर चले गये।

मीरा श्याम कुन्ज में जाकर नित्य की ठाकुर सेवा में लग गई। माँ ने लाड़ लड़ाते हुये समझाया -"बेटी! आज तो तेरा विवाह है। चलकर सखियों, काकियों भौजाईयों के बीच बैठ! खाओ, खेलो, आज यह भजन

-पूजन रहने दे।"

"भाबू! मैं अपने को अच्छे लगने वाला ही काम तो कर रही हूँ। सबको एक से खेल नहीं अच्छे लगते। आज यह पड़ला और मेरी हथेली का चिह्न देखकर भी आपको विश्वास नहीं हुआ तो सुनिए ....

माई म्हाँने सुपना में परण्या गोपाल।
राती पीली चूनर औढ़ी मेंहदी हाथ रसाल॥
काँई कराँ और संग भावँर म्हाँने जग जंजाल।
मीरा प्रभु गिरधर लाल सूँ करी सगाई हाल॥
(परण्या -परिणय अर्थात विवाह।)

"तूने तो मुझे कह दिया जग जंजाल है पर बेटा तुझे पता है कि तेरी तनिक-सी ना कितना अनर्थ कर देंगी मेड़ता में? तलवारें म्यानों से बाहर निकल आयेंगी।" माँ ने चिन्तित हो कहा। "आप चिन्ता न करें, माँ! जब भी कोई रीति करनी हो मुझे बुला लीजिएगा, मैं आ जाऊँगी।"

"वाह, मेरी लाड़ली! तूने तो मेरा सब दु:ख ही हर लिया।" कहती हुई प्रसन्न मन से माँ झाली जी चली गई।

भोजराज ने गम्भीर मीठे स्वर में मीरा से कहा, "आप चिन्ता न करें। जगत और जीवन में मुझे आप सदा अपनी ढाल पायेंगी।" थोड़ा हँसकर वे पुनः बोले, "यह मुँह दिखाई का नेग, इसे कहाँ रखूँ?" उन्होंने खीसे में से हार निकालकर हाथ में लेते हुये कहा।

मीरा ने हाथ से झरोखे की ओर संकेत किया। और सोचने लगी - "एकलिंग (भगवान शिव जो चित्तौड़गढ़ में इष्टदेव है।) के सेवक पर अविश्वास का कोई कारण तो नहीं दिखाई देता पर मेरे रक्षक कहीं चले तो नहीं गये है।" मीरा ने आँचल के नीचे से गोपाल को निकालकर उसी झरोखे में विराजमान कर दिया।

"हुकम हो तो चाकर भी इनकी चरण वन्दना कर ले!" भोजराज ने कहा। मीरा ने मुस्कुरा कर स्वीकृति में माथा हिलाया। "एकलिंग नाथ ने बड़ी कृपा की।चित्तौड़ के महल भी आपकी चरणरज से पवित्र होंगे। शैव (शिव भक्त) सिसौदिया भी वैष्णवों के संग से पवित्रता का पाठ सीखेंगे।" उन्होंने वह हार गिरधर गोपाल को धारण करा दिया। "आपने मुझे सेवा का अवसर प्रदान किया प्रभु! मैं कृतार्थ हुआ। इस अग्नि परीक्षा में साथ

देना, मेरे वचन और अपने धन की रक्षा करना मेरे स्वामी!" फिर मीरा की ओर मुस्कुराते हुये बोले, "यह घूँघट?" मीरा ने मुस्कुरा कर घूँघट उठा दिया। वह अतुल रूपराशि देखकर भोजराज चकित रह गये, पर उन्होंने पलकें झुका ली।

प्रातः कुंवर कलेवा पर पधारे तो स्त्रियों ने हँसी मजाक में प्रश्नों की बौछार कर दी। भोजराज ने धैर्य से सब प्रश्नों का उत्तर दिया। रत्नसिंह (भोजराज के छोटे भाई) ने भोजराज और मीरा के बीच गिरधर को बैठा देखा तो धीरे से पूछा, "यह क्या टोटका है?" "टोटका नहीं, यह तुम्हारी भाभीसा के भगवान हैं।" भोजराज ने हँस कर कहा। "भगवान तो मन्दिर में रहते हैं। यहाँ क्यों?"

"बींद (दूल्हा) है तो बींदनी के पास ही तो बैठेंगे न! भोजराज मुस्कुराये। रत्नसिंह हँस पड़े, "पर भाई बींद आप हैं कि ये?" "बींद तो यही हैं। मैं तो टोटका हूँ। धीरे-धीरे तुम समझ जाओगे।" भोजराज ने धैर्य से कहा। "क्यों भाभीसा! दादोसा क्या फरमा रहे है?" रत्नसिंह ने मीरा से पूछा तो उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

विदाई का दिन भी आ गया। माँ, काकी ने नारी धर्म की शिक्षा दी। पिता बेटी के गले लग रो पड़े। वीरमदेव जी मीरा के सिर पर हाथ रख बोले, "तुम स्वयं समझदार हो, पितृ और पति दोनों कुलों का सम्मान बढ़े, बेटा वैसा व्यवहार करना।" फिर भोजराज की तरफ हाथ जोड़ वीरमदेव जी बोले, "हमारी बेटी में कोई अवगुण नहीं है, पर भक्ति के आवेश में इसे कुछ नहीं सूझता। इसकी भलाई बुराई, इसकी लाज आपकी लाज है। आप सब संभाल लीजिएगा।" भोजराज ने उन्हें आँखों से ही आश्वासन दिया।

उसी समय रोती हुई माँ मीरा के पास आई और बोली, "बेटी तेरे दाता हुकम (वीरमदेव जी) ने दहेज में कोई कसर नहीं रखी पर लाडो, कुछ और चाहिए तो बोल ..."। मीरा ने कहा............

दै री अब म्हाँको गिरधरलाल।
प्यारे चरण की आन करति हाँ और न दे मणि लाल॥
नातो सगो परिवारो सारो म्हाँने लागे काल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर छवि लखि भई निहाल॥

माँ ने मीरा से जब पूछा कि बेटी मायके से कुछ और चाहिए तो बता - तो मीरा ने कहा, "बस माँ मेरे ठाकुर जी दे दो। मुझे और किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं है।" "ठाकुर जी को भले ही ले जा बेटा, पर उनके पीछे पगली होकर अपना कर्तव्य न भूल जाना। देख, इतने गुणवान और भद्र पति मिले हैं। सदा उनकी आज्ञा में रहकर ससुराल में सबकी सेवा करना" माँ ने कहा।

बहनों ने मिल कर मीरा को पालकी में बिठाया। मंगला ने सिंहासन सहित गिरधरलाल को उसके हाथ में दे दिया। दहेज की बेशुमार सामग्री के साथ ठाकुर जी की भी पोशाकें और श्रृंगार सब सेवा का ताम-झाम भी साथ चला। वस्त्राभूषण से लदी एक सौ एक दासियाँ साथ गई।

बड़ी धूमधाम से बारात चित्तौड़ पहुँची। राजपथ की शोभा देखते ही बनती थी। वाद्यों की मंगल ध्वनि में मीरा ने महल में प्रवेश किया। सब रीति-रिवाज सुन्दर ढंग से सहर्ष सम्पन्न हुये। देर सन्धया गये मीरा को उसके महल में पहुँचाया गया। मिथुला, चम्पा की सहायता से उसने गिरधरलाल को एक कक्ष में पधराया। भोग, आरती करके शयन से पूर्व वह ठाकुर के लिए गाने लगी..........

होता जाजो राज म्हाँरे महलाँ, होता जाजो राज।
मैं औगुणी मेरा साहिब सौ गुणा, संत सँवारे काज।
मीरा के प्रभु मन्दिर पधारो, करके केसरिया साज।

मीरा के मधुर कण्ठ की मिठास सम्पूर्ण कक्ष में घुल गई। भोजराज ने शयन कक्ष में साफा उतारकर रखा ही था कि मधुर रागिनी ने कानों को स्पर्श किया। वे अभिमन्त्रित नाग से उस ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उनकी आँखें मीरा के मुख-कंज की भ्रमर हो अटकी। भजन पूरा हुआ तो उन्हें चेत आया। प्रभु को दूर से प्रणाम कर वह लौट आये।

अगले दिन मीरा की मुँह दिखाई और कई रस्में हुईं। पर मीरा सुबह से ही अपने ठाकुर जी की रागसेवा में लग जाती। अवश्य ही अब इसमें भोजराज की परिचर्या एवं समय पर सासुओं की चरण-वन्दना भी समाहित हो गई। नई दुल्हन के गाने की चर्चा महलों से निकल कर महाराणा के पास पहुँची। उनकी छोटी सास कर्मावती ने महाराणा से

कहा, "यों तो बीणनी से गाने को कहे तो कहती है मुझे नहीं आता और उस पीतल की मूर्ति के समक्ष बाबाओं की तरह गाती है।"

"महाराणा ने कहा, "वह हमें नहीं तीनों लोकों के स्वामी को रिझाने के लिए नाचती-गाती है। मैंने सुना है कि जब वह गाती है, तब आँखों से सहज ही आँसू बहने लगते हैं। जी चाहता है, ऐसी प्रेममूर्ति के दर्शन मैं भी कर पाता।"

"हम बहुत भाग्यशाली हैं जो हमें ऐसी बहू प्राप्त हुई। पर अगर ऐसी भक्ति ही करनी थी तो फिर विवाह क्यों किया? बहू भक्ति करेगी तो महाराज कुमार का क्या?"

"युवराज चाहें तो एक क्या दस विवाह कर सकते हैं। उन्हें क्या पत्नियों की कमी है? पर इस सुख में क्या धरा है? यदि कुमार में थोड़ी सी भी बुद्धि होगी तो वह बीनणी से शिक्षा ले अपना जीवन सुधार लेंगे।

मीरा को चित्तौड़ में आये कुछ मास बीत गये। गिरधर की रागसेवा नियमित चल रही है। मीरा अपने कक्ष में बैठे गिरधरलाल की पोशाक पर मोती टाँक रही थी। कुछ ही दूरी पर मसनद के सहारे भोजराज बैठे थे।

"सुना है आपने योग की शिक्षा ली है। ज्ञान और भक्ति दोनों ही आपके लिए सहज है। यदि थोड़ी-बहुत शिक्षा सेवक भी प्राप्त हो तो यह जीवन सफल हो जाये।" भोजराज ने मीरा से कहा।

ऐसा सुनकर मुस्कुरा कर भोजराज की तरफ देखती हुई मीरा बोली, "यह क्या फरमाते हैं आप? चाकर तो मैं हूँ। प्रभु ने कृपा की कि आप मिले। कोई दूसरा होता तो अब तक मीरा की चिता की राख भी नहीं रहती। चाकर आप और मैं, दोनों ही गिरधरलाल के हैं।"

"भक्ति और योग में से कौन श्रेष्ठ है?" भोजराज ने पूछा। "देखिये, दोनों ही अध्यात्म के स्वतन्त्र मार्ग हैं। पर मुझे योग में ध्यान लगा कर परमानन्द प्राप्त करने से अधिक रूचिकर अपने प्राण-सखा की सेवा लगी।" "तो क्या भक्ति में, सेवा में योग से अधिक आनन्द है?" "यह तो अपनी रूचि की बात है, अन्यथा सभी भक्त ही होते संसार में। योगी ढूँढे भी न मिलते कहीं।"

"मुझे एक बात अर्ज करनी थी आपसे" मीरा ने कहा। "एक क्यों, दस कहिये। भोजराज बोले। "आप जगत-व्यवहार और वंश चलाने के

लिए दूसरा विवाह कर लीजिए।" "बात तो सच है आपकी, किन्तु सभी लोग सब काम नहीं कर सकते। उस दिन श्याम कुन्ज में ही मेरी इच्छा आपके चरणों की चेरी बन गई थी। आप छोड़िए इन बातों में क्या रखा है? यदि इनमें थोड़ा भी दम होता तो .... "। बात अधूरी छोड़ कर वे मीरा की ओर देख मुस्कुराये। "रूप और यौवन का यह कल्पवृक्ष चित्तौड़ के राजकुवंर को छोड़कर इस मूर्ति पर न्यौछावर नहीं होता और भोज शक्ति और इच्छा का दमन कर इन चरणों का चाकर बनने में अपना गौरव नहीं मानता। जाने दीजिये - आप तो मेरे कल्याण का सोचिए। लोग कहते हैं - ईश्वर निर्गुण निराकार है। इन स्थूल आँखों से नहीं देखा जा सकता, मात्र अनुभव किया जा सकता है। सच क्या है, समझ नहीं पाया।"

"वह निर्गुण निराकार भी है और सगुण साकार भी।" मीरा ने गम्भीर स्वर में कहा -"निर्गुण रूप में वह आकाश, प्रकाश की भांति है जो चेतन रूप से सृष्टि में व्याप्त है। वह सदा एकरस है। उसे अनुभव तो कर सकते हैं, पर देख नहीं सकते। और ईश्वर सगुण साकार भी है। यह मात्र प्रेम से बस में होता है, रूष्ट और तुष्ट भी होता है। ह्रदय की पुकार भी सुनता है और दर्शन भी देता है।" मीरा को एकाएक कहते-कहते रोमांच हुआ।

यह देख भोजराज थोड़े चकित हुए। उन्होने कहा, "भगवान के बहुत नाम - रूप सुने जाते हैं। नाम - रूपों के इस विवरण में मनुष्य भटक नहीं जाता?"

"भटकने वालों को बहानों की कमी नहीं रहती। भटकाव से बचना हो तो सीधा उपाय है कि जो नाम - रूप स्वयं को अच्छा लगे, उसे पकड़ ले और छोड़े नहीं। दूसरे नाम-रूप को भी सम्मान दें। क्योंकि सभी ग्रंथ, सभी सम्प्रदाय उस एक ईश्वर तक ही पहुँचने का पथ सुझाते हैं। मन में अगर दृढ़ विश्वास हो तो उपासना फल देती है।"

अत्यन्त विनम्रता से भोजराज मीरा से भगवान के सगुण साकार स्वरूप की प्राप्ति के लिए जिज्ञासा कर रहे है। वह बोले, "तो आप कह रही हैं कि भगवान उपासना से प्राप्त होते हैं। वह कैसे? मैं समझा नहीं?" "उपासना मन की शुद्धि का साधन है। संसार में जितने भी नियम हैं;

संयम, धर्म, व्रत, दान-सब के सब जन्म जन्मान्तरों से मन पर जमें हुये मैले संस्कारों को धोने के उपाय मात्र हैं। एकबार वे धुल जायें तो फिर भगवान तो सामने वैसे ही है जैसे दर्पण के स्वच्छ होते ही अपना मुख उसमें दिखने लगता है।" मीरा ने स्नेह से कहा, "देखिए, भगवान को कहीं से आना थोड़े ही है जो उन्हें विलम्ब हो। भगवान न उपासना के वश में हैं और न दान धर्म के। वे तो कृपा-साध्य हैं, प्रेम-साध्य हैं। बस उन्हें अपना समझ कर उनके सम्मुख ह्रदय खोल दें। अगर हम उनसे कोई लुकाव-छिपाव न करें तो भगवान से अधिक निकट कोई भी हमारे पास नहीं और यदि यह नहीं है तो उनकी दूरी की कोई सीमा भी नहीं।"

"पर मनुष्य के पास अपनी इन्द्रियों को छोड़ अनुभव का कोई अन्य उपाय तो है नहीं, फिर जिसे देखा नहीं, जाना नहीं, व्यवहार में बरता नहीं, उससे प्रेम कैसे सम्भव है?"

"हमारे पास एक इन्द्रिय ऐसी है, जिसके द्वारा भगवान ह्रदय में साकार होते है। और वह इन्द्रिय है कान। बारम्बार उनके रूप-गुणों का वर्णन श्रवण करने से विश्वास होता है और वे हिय में प्रकाशित हो उठते है। विग्रह की पूजा-भोग-राग करके हम अपनी साधना में उत्साह बढ़ा सकते है।" "पर बिना देखे प्रतीक (विग्रह) कैसे बनेगा? क्या आपने कभी साक्षात दर्शन किए?"

प्रश्न सुनकर मीरा की आँखें भर आई और गला रूँध गया। घड़ी भर में अपने को संभाल कर बोली -"अब आपसे क्या छिपाऊँ? यद्यपि यह बातें कहने-सुनने की नहीं होती। मन से तो वह रूप पलक झपकने जितने समय भी ओझल नहीं होता, किन्तु अक्षय तृतीया के प्रभात से पूर्व मुझे स्वप्न आया कि प्रभु मेरे बींद (दूल्हा) बनकर पधारे हैं, और देवता, द्वारिका वासी बारात में आये। दोनों ओर चंवर डुलाये जा रहे थे। वे सुसज्जित श्वेत अश्व पर जिसके केवल कान काले थे, पर विराजमान थे। यद्यपि मैंने आपके राजकरण अश्व के समान शुभलक्षण और सुन्दर अश्व नहीं देखा तथा आपके समान कोई सुन्दर नर नहीं दिखाई दिया पर.......पर....... उस रूप के सम्मुख ......कुछ भी नहीं।" मीरा बोलते बोलते रूक गई। उनकी आँखें कृष्ण रूप माधुरी के स्मरण में स्थिर हो गई और देह जैसे कँपकँपा उठी।

भोजराज मीरा का ऐसा प्रेम भाव देख स्तब्ध रह गये। उन्होंने

स्वयं का भाव समेट कर शीघ्रता से मिथुला को मीरा को संभालने के लिए पुकारा।

मीरा प्रभु का बींद स्वरूप स्मरण करते करते भाव में निमग्न हो गई। मिथुला ने जल पात्र मुख से लगाया तो वह सचेत हुईं। "फिर? आप बता रही थीं कि प्रभु अक्षय तृतीया को बींद बनकर पधारे थे.......।" भोजराज ने पूछा। मीरा ने किचिंत लजाते हुये कहा, "जी हुकम! मेरा और प्रभु का हस्त-मिलाप हुआ। उनके पीताम्बर से मेरी साड़ी की गाँठ बाँधी गयी। भाँवरो में, मैं उनके अरूण मृदुल चारू चरणों पर दृष्टि लगाये उनका अनुसरण कर रही थी। हमें महलों में पहुँचाया गया। यह....... यह हीरेकहार ...।" 'उसने एक हाथ से अपने गले में पड़े हीरे के हार को दिखाया' "यह प्रभु ने मुझे पहनाया और मेरा घूँघट ऊपर उठा दिया।"

"यह....... यह वह नहीं है, जो मैंने नजर किया था?" भोजराज ने सावधान होकर पुछा। "वह तो गिरधर गोपाल के गले में है।" मीरा ने कहा और हार में लटकता चित्र दिखाया -"यह, इसमें प्रभु का चित्र है।" "मैं देख सकता हूँ इसे?" भोजराज चकित हो उठे। "अवश्य!" मीरा ने हार खोल कर भोजराज की हथेली पर रख दिया। भोजराज ने श्रद्धा से देखा, सिर से लगाया और वापिस लौटा दिया।" आगे क्या हुआ?" उन्होंने जिज्ञासा की।

"मैं प्रभु के चरण स्पर्श को जैसे ही झुकी-उन्होंने मुझे बाँहों में भर उठा लिया।" मीरा की आँखें आनन्द से मुंद गईं। वाणी अवरूद्ध होने लगी।......"हा म्हाँरा सर..... सर्वस्व .....म्हूँ......थारी चेरी (दासी)।"

मीरा की अपार्थिव दृष्टि से आनन्द अश्रु बन ढलकने लगा। ऐसा लगा जैसे आँसू-मोती की लड़िया बनकर टूट कर झड़ रहे हो। उसे स्वयं की सुध न रही। भोजराज को मन हुआ उठकर जल पिला दें पर अपनी विवशता स्मरण कर बैठे रहे। कुछ क्षणों के पश्चात जब मीरा ने निमीलित दृष्टि खोली तो किंचित संकुचित होते हुए बोली, "मैं तो बाँवरी हूँ, कोई अशोभनीय बात तो नहीं कह दी।"

"नहीं! नहीं! आप ठाकुर जी से विवाह की बात बता रही थी कि कक्ष में पधारने पर आपने प्रणाम किया और.......।" "जी।" मीरा जैसे खोये से स्वर में बोली - "वह मेरे समीप थे, वह सुगन्धित श्वास, वह देह

गन्ध, इतना आनन्द मैं कैसे संभाल पाती! प्रातःकाल सबने देखा, वह गँठजोड़ा, हथलेवे का चिन्ह, गहने, वस्त्र, चूड़ा। चित्तौड़ से आया चूड़ा तो मैंने पहना ही नहीं - गहने, वस्त्र सब ज्यों के त्यों रखे हैं।" "क्या मैं वहाँ से आया पड़ला देख सकता हूँ ?" भोजराज बोले।" "अभी मंगवाती हूँ।" मीरा ने मंगला और मिथुला को पुकारा। "मिथुला, थूँ जो द्वारिका शूँ आयो पड़ला कणी पेटी में है ? और चित्तौड़ शूँ पड़ला वा ऊँचा ला दोनों तो मंगला।"

दोंनों पेटियाँ आयी तो दासियों ने दोनों की सामग्री खोलकर अलग -अलग रख दी। आश्चर्य से भोजराज ने देखा। सब कुछ एक सा था। गिनती, रंग पर फिर भी चित्तौड़ के महाराणा का सारा वैभव द्वारिका से आये पड़ले के समक्ष तुच्छ था। श्रद्धा पूर्वक भोजराज ने सबको छुआ, प्रणाम किया। सब यथा स्थान पर रख दासियाँ चली गई तो भोजराज ने उठकर मीरा के चरणों में माथा धर दिया। "अरे यह, यह क्या कर रहे हैं आप ?" मीरा ने चौंककर कहा और पाँव पीछे हटा लिए। "अब आप ही मेरी गुरु हैं, मुझ मतिहीन को पथ सुझाकर ठौर-ठिकाने पहुँचा देने की कृपा करें।" गदगद कण्ठ से वह ठीक से बोल नहीं पा रहे थे, उनके नेत्रों से अश्रुओं की बूँदे मीरा के अमल धवल चरणों का अभिषेक कर रहे थे।

भोजराज सजल नेत्रों से अतिशय भावुक एवं विनम्र हो मीरा के चरणों में ही बैठे उनसे मार्ग दर्शन की प्रार्थना करने लगे। मीरा का हाथ सहज ही भोजराज के माथे पर चला गया - "आप उठकर विराजिये। प्रभु की अपार सामर्थ्य है। शरणागत की लाज उन्हें ही है। कातरता भला आपको शोभा देती है ? कृपा करके उठिये।" भोजराज ने अपने को सँभाला। वे वापिस गद्दी पर जा विराजे और साफे से अपने आँसू पौंछने लगे। मीरा ने उठकर उन्हें जल पिलाया।

"आप मुझे कोई सरल उपाय बतायें। पूजा-पाठ, नाचना-गाना, मँजीरे या तानपुरा बजाना मेरे बस का नहीं है।" भोजराज ने कहा। "यह सब आपके लिए आवश्यक भी नहीं है।" मीरा हँस पड़ी। "बस आप जो भी करें, प्रभु के लिए करें और उनके हुकम से करें, जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा से अथवा उनका रूख देखकर कार्य करता है। जो भी देखें, उसमें प्रभु के हाथ की कारीगरी देखें। कुछ समय के अभ्यास से सारा ही कार्य

उनकी पूजा हो जायेगी।"

"युद्ध भूमि में शत्रु संहार, न्यायासन पर बैठकर अपराधियों को दण्ड देना भी क्या उन्हीं के लिए है?" "हाँ हुकम! मीरा ने गम्भीरता से कहा- "नाटक के पात्र मरने और मारने का अभिनय नहीं करते क्या? उन्हीं पात्रों की भातिं आप भी समझ लीजिए कि न मैं मारता हूँ न वे मरते हैं, केवल मैं प्रभु की आज्ञा से उन्हें मुक्ति दिला रहा हूँ। यह जगत तो प्रभु का रंगमंच है। दृश्य भी वही है और द्रष्टा भी वही है। अपने को कर्ता मानकर व्यर्थ बोझ नहीं उठायें। कर्त्ता बनने पर तो कर्मफल भी भुगतना पड़ता है, तब क्यों न सेवक की तरह जो स्वामी चाहे वही किया जाये। मजदूरी तो कर्ता बनने पर भी उतनी ही मिलती है, जितनी मजदूर बनने पर, पर ऐसे में स्वामी की प्रसन्नता भी प्राप्त होती है। हाँ एक बात अवश्य ध्यान रखने की है कि जो पात्रता आपको प्रदान की गयी है, उसके अनुसार आपके अभिनय में कमी न आने पाये।"

मीरा ने थोड़ा रूककर फिर कहा, "क्या उचित है और क्या अनुचित, यह बात किसी और से सुनने की आवश्यकता नहीं होती। भीतर बैठा अन्तर्यामी ही हमें उचित अनुचित का बोध करा देता है। उसकी बात अनसुनी करने से धीरे-धीरे वह भीतर की ध्वनि धीमी पड़ती जाती है, और नित्य सुनने से और उसपर ध्यान देकर उसके अनुसार चलने पर अन्त:करण की बात स्पष्ट होती जाती है। फिर तो कोई अड़चन नहीं रहती। कर्तव्य-पालन ही राजा के लिए सबसे बड़ी पूजा और तपस्या है।"

मीरा ससुराल में समय-समय पर बीच में सबके चरण स्पर्श कर आती, पर कहीं अधिक देर तक न ठहर पाती। क्योंकि इधर ठाकुर जी के भोग का समय हो जाता। फिर सन्धया में वह जोशी जी से शास्त्र-पुराण सुनती। महलों में मीरा के सबसे अलग थलग रहने पर आलोचना होती, पर अगर कोई मीरा को स्वयं मिलने पधारता, तो वह अतिशय स्नेह और अपनत्व से उनकी आवभगत करती।

श्रावण आया। तीज का त्योहार। चित्तौड़गढ़ के महलों में शाम होते ही त्यौहार की हलचल आरम्भ हो गई। सुन्दर झूला डाला गया। पूरा परिवार एक ही स्थान पर एकत्रित हुआ। बारी-बारी से सब जोड़े से झूले

पर बैठते, और सकुचाते, लजाते एक दूसरे का नाम लेते। भोजराज और मीरा की भी क्रम से बारी आई। महाराणा और बड़े लोग भोजराज का संकोच देख थोड़ा पीछे हट गये। भाई रत्नसिंह ने आग्रह किया, "यदि आपने विलम्ब किया तो मैं उतरने नहीं दूँगा। शीघ्र बता दीजिए भाभीसा का नाम!"

"मेड़तिया घर री थाती मीराँ आभ रो फूल (आकाश का फूल अर्थात ऐसा पुष्प जो स्वयं में दिव्य और सुन्दर तो हो पर अप्राप्य हो।)बस अब तो?" रत्नसिंह भाई के शब्दों पर विचार ही करते रह गये। मीरा को स्त्रियों ने घेरकर पति का नाम पूछा तो उसने मुस्कुराते, लजाते हुए बताया -

राजा है नंदरायजी जाँको गोकुल गाँम।
जमना तट रो बास है गिरधर प्यारो नाम॥

"यह क्या कहा आपने? हम तो कुँवरसा का नाम पूछ रही हैं।" "इनका नाम तो भोजराज है। बस, अब मैं जाऊँ? मीरा अपने महल की तरफ चल पड़ी। उसके मन में अलग सी तरंग उठ रही थी। नन्हीं-नन्हीं बूँदे पड़ने लगी। वह गुनगुनाने लगी......

हिडोंरो पड़्यो कदम की डाल, म्हाँने झोटा दे नंदलाल॥

भक्तों के श्रावण का भावरस व्यवहारिक जगत से कितना अलग होता है। उन्हें प्रकृति की प्रत्येक क्रिया में ठाकुर का ही कोई संकेत दिखाई देता है। दूर कहीं पपीहा बोला तो मीरा को लगा मानो वह "पिया पिया" बोल वह उसको चिढ़ा रहा हो। "पिया" शब्द सुनते ही जैसे आकाश में ही नहीं उसके ह्रदय में भी दामिनी लहरा गई -

पपीहरा काहे मचावत शोर।
पिया पिया बोले जिया जरावत मोर॥
अंबवा की डार कोयलिया बोले रहि रहि बोले मोर।
नदी किनारे सारस बोल्यो मैं जाणी पिया मोर॥
मेहा बरसे बिजली चमके बादल की घनघोर।
मीरा के प्रभु वेग दरस दो मोहन चित्त के चोर॥

वर्षा की फुहार में दासियों के संग मीरा भीगती महल पहुँची। उसके ह्रदय में आज गिरधर के आने की आस सी जग रही है। वे कक्ष में आकर अपने प्राणाराध्य के सम्मुख बैठ गाने लगी ....

बरसे बूँदिया सावन की, सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो, दामण दमके झर लावन की॥
नान्हीं नान्हीं बूँदन मेहा बरसै, सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आनँद मंगल गावन की॥

श्रावण की मंगल फुहार ने प्रियतम के आगमन की सुगन्ध चारों दिशाओं में व्यापक कर दी। मीरा को क्षण-क्षण प्राणनाथ के आने का आभास होता। वह प्रत्येक आहट पर चौंक उठती। वह गिरधर के समक्ष बैठे फिर गाने लगी ....

सुनो हो मैं हरि आवन की अवाज।
महल चढ़ चढ़ जोऊँ मेरी सजनी, कब आवै महाराज।
सुनो हो मैं हरि आवन की अवाज॥
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल मधुरे साज।
उमँग्यो इंद्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज॥
धरती रूप नवा-नवा धरिया, इंद्र मिलण के काज।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, बेग मिलो सिरताज॥

भजन पूरा करके मीरा ने जैसे ही आँखें उघाड़ी, वह हर्ष से बावली हो उठी। सम्मुख चौकी पर श्यामसुन्दर बैठे उसकी ओर देखते हुये मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे। मीरा की पलकें जैसे झपकना भूल गई। कुछ क्षण के लिए देह भी जड़ हो गई। फिर हाथ बढ़ा कर चरण पर रखा यह जानने के लिए कि कहीं यह स्वप्न तो नहीं? उसके हाथ पर एक अरूण करतल आ गया। उस स्पर्श .... में मीरा जगत को ही भूल गई।

"बाईसा हुकम!" मंगला ने एकदम प्रवेश किया तो स्वामिनी को यूँ किसी से बात करते ठिठक गई। मीरा ने पलकें उठाकर उसकी ओर देखा। "मंगला! आज प्रभु पधारे हैं। जीमण (भोजन) की तैयारी कर। चौसर भी यही ले आ। तू महाराज कुमार को भी निवेदन कर आ।"

मीरा की हर्ष-विह्वल दशा देखकर मंगला प्रसन्न भी हुई और चकित भी। उसने शीघ्रता से दासियों में संदेश प्रसारित कर दिया। घड़ी भर में तो मीरा के महल में गाने-बजाने की धूम मच गई। चौक में दासियों को नाचते देख भोजराज को आश्चर्य हुआ। मंगला से पूछने पर वह बोली, "कुंवरसा! आज प्रभु पधारे हैं।" भोजराज चकित से गिरधर गोपाल के कक्ष की ओर मुड़ गये। वहाँ द्वार से ही मीरा की प्रेम-हर्ष-विह्वल दशा दर्शन कर वह स्तम्भित से हो गये। मीरा किसी से हँसते हुये बात कर रही थी - "बड़ी कृपा ....की प्रभु, ...आप पधारे, ...मेरी तो आँखें,......पथरा गई थी,...... प्रतीक्षा में।" भोजराज सोच रहे थे, "प्रभु आये हैं, अहोभाग्य! पर हाय! मुझे क्यों नहीं दर्शन नहीं हो रहे?"

मीरा की दृष्टि उनपर पड़ी। "पधारिये महाराजकुमार! देखिए, मेरे स्वामी आये हैं। ये है द्वारिकाधीश, मेरे पति। और स्वामी, यह हैं चित्तौड़गढ़ के महाराजकुमार, भोजराज, मेरे सखा।"

"मुझे तो यहाँ कोई दिखाई नहीं दे रहा।" भोजराज ने सकुचाते हुए कहा। मीरा फिर हँसते हुये बोली "आप पधारें! ये फरमा रहे हैं कि आपको अभी दर्शन होने में समय है।" भोजराज असमंजस में कुछ क्षण खड़े रहे फिर अपने शयनकक्ष में चले गये। मीरा गाने लगी -

आज तो राठौड़ीजी महलाँ रंग छायो।
आज तो मेड़तणीजी के महलाँ रंग छायो।
कोटिक भानु हुवौ प्रकाश जाणे के गिरधर आया॥
सुर नर मुनिजन ध्यान धरत हैं वेद पुराणन गाया।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर घर बैठयौं पिय पाया॥

आज मीरा की प्रसन्नता की सीमा नहीं है। आज उसके घर भव-भव के भरतार पधारे हैं उसकी साधना, उसका जीवन सफल करने। श्यामसुन्दर का हाथ पकड़ कर वह उठ खड़ी हुई -"झूले पर पधारेगें आप? आज तीज है।"

दोनों ने हिंडोला झूला और फिर महल में लौट कर भोजन लिया। मीरा बार-बार श्यामसुन्दर की छवि निहार बलिहारी हो जाती। आज रँगीले राजपूत के वेश मे हैं प्रभु, केसरिया साफा, केसरिया अंगरखा, लाल किनारी की केसरिया धोती और वैसा ही दुपट्टा। शिरोभूषण में लगा

मोरपंख, कानों में हीरे के कुण्डल गले के कंठे में जड़ा पदमराग कौस्तुभ, मुक्ता और वैजयन्ती माल, रत्न जटित कमरबन्द, हाथों में गजमुख कंगन और सुन्दर भुजबन्द, चरणों में लंगर और हाथों में हीरे-पन्ने की अँगूठियाँ। और इन सबसे ऊपर वह रूप, कैसे उसका कोई वर्णन करें! असीम को अक्षरों में कैसे बाँधे? बड़ी से बड़ी उपमा भी जहाँ छोटी पड़ जाती है। श्रुतियाँ नेति-नेति कहकर चुप्पी साध लेती हैं, कल्पना के पंख समीप पहुँचने से पूर्व ही थककर ढीले पड़ जाते हैं, वह तो अपनी उपमा स्वयं ही हैं, इसलिए तो उनके रूप को अतुलनीय कहा है। वह रूप इतना मधुर ....प्रियातिप्रिय.........सुवासित..... नयनाभिराम है कि क्या कहा जाये? मीरा भी केवल इतना ही कह पाई........

थाँरी छवि प्यारी लागे, राज राधावर महाराज।
रतन जटित सिर पेंच कलंगी, केशरिया सब साज॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, रसिकौं रा सरताज।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, म्हाँने मिल गया ब्रजराज॥

चित्तौड़ के रनिवास में मीरा के व्यवहार को लेकर कुछ असन्तोष सा है। पर मीरा को अवकाश कहाँ है यह सब देखने का? वह रूप माधुरी के दर्शन से पहले ही, वह अपूर्व रसभरी वाणी के श्रवण से पहले ही लोग पागल हो जाते हैं तो मीरा सब देख सुनकर स्वयं को संभाले हुये है। यह भी छोटी बात नहीं थी। पर वह अपने ही भाव-राज्य में रहती जहाँ व्यवहारिकता का कोई प्रवेश नहीं था।

समय मिलने पर भोजराज कभी-कभी माँ तथा बहिन उदयकुँवर (उदा) के पास बैठते या फिर भाई रत्नसिंह ही स्वयं आ जाते। पर धीरे-धीरे भोजराज पर भी भक्ति का रंग चढ़ने लगा। लोगों ने देखा कि उनके माथे पर केशर-चन्दन का तिलक और गले में तुलसी माला। रहन-सहन सादा हो गया है और उन्हें सात्विक भोजन अच्छा लगता। व्यर्थ के खेल तमाशे अब छूट गये है। कोई कुछ इस बदलाव का कारण पूछ लेता तो वह हँसकर टाल देते।

बात महाराणा तक पहुँची तो उन्होंने पूरणमल के द्वारा दूसरे विवाह का पुछवाया। भोजराज ने भी पिताजी को कहला भेजा - "गंगातट पर रहने वालों को नाली-पोखर का गंदा पानी पीने का मन नहीं

होता। आप अब रत्नसिंह का विवाह करवा दें, जिससे रनिवास का क्षोभ दूर हो।" महाराणा ने भी सोच लिया - "हमें युवराज की चिन्ता क्यों हो? भोजराज अपने कर्तव्य में प्रमाद नहीं करते, तो ठीक है; देखा देखी ही सही, भक्ति करने दो। मानव जीवन सुधर जायेगा।"

भोजराज कुछ मीरा के प्रति समर्पण से और कुछ उसकी भक्ति का स्वरूप समझ कर स्वयं उसकी ढाल बन गये। उदा अगर मीरा की शिकायत ले पहुँची, तो भोजराज बहन को समझाते हुये बोले, "भक्तों को अपने भगवान के अतिरिक्त कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। वही उनके सगे हैं। और उसी तरह भगवान भी भक्तों के सामने दुनिया भूल जाते हैं। भक्तों का बुरा करने और सोचने पर यह न हो कि हम भगवान को भी नाराज कर दें। इसलिए मैं तो कहता हूँ कि जो हो रहा है होने दें। और बाईसा! लोग तो भक्तों के दर्शन करने के लिए कितनी दूर-दूर दौड़े फिरते है। अपने तो घर में ही गंगा आ गई और क्या चाहिए हमें?"

विवाह के छः मास पश्चात चित्तौड़ समाचार आया कि मेड़ता में मीरा की माँ वीरकुवंरी जी का देहांत हो गया है। सुनकर मीरा की आँखें भर आईं - "मेरे सुख के लिए कितनी चिन्तित रहती थीं। इतनी भोली और सरल कि यह जानते हुये भी कि बेटी जो कर रही है, उचित ही है, फिर भी दूसरों के कहने पर मुझे समझाने चली आती। भाबू! आपकी आत्मा को शांति मिले, भगवान मंगल करे।" स्नान, आचमन कर उन्होंने पातक उतारा और ठाकुर जी की सेवा में प्रवृत्त हुईं। रनिवास में भी सब हैरान तो हुये पर मीरा ने अर्ज किया, "प्रभु की इच्छा से माँ का धरती पर इतने दिन ही अन्न जल बदा था। जाना तो सभी को है आगे कि पीछे। जो चले गये, उनकी क्या चिन्ता करें। अपनी ही संवार ले तो बहुत है।"

गणगौर का त्यौहार आया। प्रत्येक त्यौहार पर मीरा का विरह बढ़ जाता- फिर कहीं ह्रदय में प्राणधन के आने की उमंग भी हिल्लोर भरने लगती। मीरा मंगल समय ठाकुर को उठाते अपने मन के भाव गीत में भर गाने लगी..........

जागो वंशीवारे लालना जागो मेरे प्यारे।
उठो लालजी भोर भयो है सुर नर ठाड़े द्वारे।
गोपी दही मथत सुनियत है कंगना के झंकारे॥

प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय॥
जल बिन कमल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी।
आकुल ब्याकुल फिरूँ रैन दिन, बिरह कलेजो खाय॥
दिवस न भूख नींद नहिं रैना, मुखसूँ कथत न आवै बैना।
कहा कहूँ कछु कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय॥
क्यूँ तरसावो अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरा दासी जनम - जनम की, पड़ी तुम्हारे पाय॥

एक दिन, मीरा ने भोजराज से कहा, "आपकी आज्ञा हो तो एक निवेदन करूँ।" "क्यों नहीं ? फरमाइए।" भोजराज ने अति विनम्रता से कहा। "मेड़ते में तो संत आते ही रहते थे। वहाँ सत्संग मिला करता था। प्रभु के प्रेमियों के मुख से झरती उनकी रूप-गुण-सुधा के पानसे सुख प्राप्त होता है, वह जोशीजी के सुखसे पुराण कथा सुनने में नहीं मिलता। यहाँ सत्संग का आभाव मुझे सदा अनुभव होता है।"

भोजराज गम्भीर हो गये- "यहाँ महलों में तो संतो के प्रवेश की आज्ञा नहीं है। हाँ, किले में संत महात्मा आते ही रहते हैं, किन्तु आपका बाहर पधारना कैसे हो सकता है?" "सत्संग बिना तो प्राण तृषा (प्यास) से मर जाते हैं।" मीरा ने उदास स्वर में कहा। "ऐसा करते है, कि कुम्भ श्याम के मंदिर के पास एक और मंदिर बनवा दें। वहाँ आप नित्य दर्शन के लिए पधारा करें। मैं भी प्रयत्न करूँगा कि गढ़ में आने वाले संत वहाँ मंदिर में पहुँचे। इस प्रकार मैं भी संत दर्शन करके लाभ ले पाऊंगा और थोडा बहुत ज्ञान मुझे भी मिलेगा।" "जैसा आप उचित समझें" -मीरा ने प्रसन्नता से कहा।

महाराणा (मीरा के ससुर) का आदेश मिलते ही मंदिर बनना आरम्भ हो गया। अन्त: पुर में मंदिर का निर्माण चर्चा का विषय बन गया। "महल में स्थान का संकोच था क्या ?" "यह बाहर मन्दिर क्यूँ बन रहा है?" "अब पूजा और गाना-बजाना बाहर खुले में होगा?" "सिसौदियों का विजय ध्वज तो फहरा ही रहा है, अब भक्ति का ध्वज फहराने के लिए यह भक्ति स्तम्भ बन रहा है।" जितने मुँह उतनी बातें। मंदिर बना और शुभ मुहूर्त में प्राण-प्रतिष्ठा हुई। धीरे-धीरे, सत्संग की धारा बह चली। उसके साथ ही साथ मीरा का यश भी शीत की सुनहरी धूप-सा सुहावना

हो कर फैलने लगा। मीरा के मंदिर पधारने पर उसके भजन और उसकी ज्ञान वार्ता सुनने के लिए भक्तों संतो का मेला लगने लगा। बाहर से आने वाले संतो के भोजन, आवास और आवश्यकता की व्यवस्था भोजराज की आज्ञा से जोशीजी करते।

गुप्तचरों से मन्दिर में होने वाली सब गतिविधियों की बातें महाराणा बड़े चाव से सुनते। कभी-कभी वे सोचते - "बड़ा होना भी कितना दुखदायी है? यदि मैं महाराणा या मीरा का ससुर न होता, मात्र कोई साधारण जन होता तो सबके बीच बैठकर सत्संग -सुधा का मैं भी निसंकोच पान करता। मैं तो ऐसा भाग्यहीन हूँ कि अगर मैं वेश भी बदलूँ तो पहचान लिया जाऊँगा।"

जैसे-जैसे बाहर मीरा का यश विस्तार पाने लगा, राजकुल की स्त्री -समाज उनकी निन्दा में उतना ही मुखर हो उठा। किन्तु मीरा इन सब बातों से बेखबर अपने पथ पर दृढ़तापूर्वक पग धरते हुये बढ़ती जा रही थी। उन्हें ज्ञात होता भी तो कैसे? भोजराज सचमुच उनकी ढाल बन गये थे। परिवार के क्रोध और अपवाद के भाले वे अपनी छाती पर झेल लेते। इन्हीं दिनों रत्नसिंह का विवाह हो गया और रनिवास की स्त्रियों का ध्यान मीरा की ओर से हटकर नवविवाहिता वधू की ओर जा लगा।

एक दिन भोजराज और रत्नसिंह दोनों भाई बैठे हास परिहास कर रहे थे। रत्नसिंह ने बहुत दिनों के बाद भाई को यूँ खुले मन से हंसते हुये देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ। एक प्रश्न जो उसके मन में कई दिन से खटक रहा था, उसने,स्नेह से पर आदर और अधिकार से पूछ ही डाला, "उस दिन आपने झूले पर भाभीसा का नाम आकाश का फूल क्यों कहा?" रत्नसिंह भाई के मुख पर आने वाले उतार चढ़ाव का निरीक्षण करते रहे और कहने लगे, "भाई! साहित्य की समझ के अनुसार तो इसका अर्थ तो है सुन्दर पर अप्राप्य।"

भोजराज के नेत्र भी भाई की स्नेह पूर्ण जिज्ञासा देख सजल हो गये। न न करते भी उन्होंने कह दिया, "यदि तुम्हें ज्ञात हो जाये कि जिस को तुम ब्याह कर लाये हो, वह पर-स्त्री है तो तुम क्या करोगे?" "पर-स्त्री? पर कैसे? क्या मेड़ते वालो ने धोखा किया हमारे साथ?"

भोजराज ने भाई को शांत करते हुये उसे विवाह से पहले मीरा को श्याम कुन्ज में ठाकुर के समक्ष वचन देने की बात से लेकर द्वारिका से

आये पड़ले तक का विवरण बताया। रत्नसिंह के तो पाँवो तले जमीन खिसक गई। उसके आँसू रूकते न रूक रहे थे। कभी वह अपने भाई की वचनबद्धता, महानता और विवशता का सोचता और कभी मीरा की भक्ति के स्वरूप का चिन्तन करता।

"यहाँ से गया पड़ला ज्यों का त्यों रखा है, और द्वारिका के वस्त्राभूषण इतने मूल्यवान हैं कि अनुमान भी लगाना कठिन है। मैंने दोनों ही देखे हैं। अभी तीज की रात्रि में भी ठाकुर जी पधारे थे।" "आपने देखा क्या उन्हें?" आश्चर्य से रत्नसिंह ने कहा। "नहीं, मुझे दर्शन तो नहीं हुये, पर जो कुछ देख पाया उससे लग रहा था कि कोई तीसरा भी वहाँ था।"

रत्नसिंह ने साहस से अपना भाव समेटा और कहा, "ठीक है, स्थिति पर जो आपने किया वह सबके बस का नहीं और अतुलनीय है, पर अभी भी क्या कठिनाई है, हाँ भाभीसा सी अनिन्द्य सुन्दरी न सही, इनसे कुछ न्यून तो मिल ही सकती है।" भोजराज का स्वर भारी हो गया- "इतना स्नेह करते हो अपने भाई से? सभी बातों का समाधान कर रहे हो, तो बताओ, इस मन का भी क्या समाधान करूँ जो पहले दिन से ही तुम्हारी भाभीसा के चरणों से बँध गया है। और उन्हें अपनी स्वामिनी मान उनकी प्रसन्नता में ही अपना भाग्य मानता है।"

रत्नसिंह स्वयं को सम्भाल नहीं पाये और भाई की गोद में सिर रख सिसकने लगे। कुछ अश्रु बिन्दु भोजराज की आँखों से ढ़लक कर रत्नसिंह के केशों में कहीं उलझ से गये। पर शीघ्र ही उन्होंने अपने को सँभाल लिया।

"भाई! चित्तौड़ के राजकुवंर यूँ तन-मन की पीड़ा से नहीं रोते।" वह रत्नसिंह की आँखों में देखकर मुस्कुराये - "हम कर्तव्य, प्रजा, देश, धर्म की सम्पत्ति हैं। हम अपने लिए नहीं जीते मरते। इसलिए हमारा जीवन धरोहर और मृत्यु मंगल उत्सव होती है। ऐसी दुर्बलता हमें शोभा नहीं देती। उठो, चले। और ध्यान रहे, आज की बातचीत यहीं गाढ़ देना, इतनी गहरी कि कभी ऊपर नहीं आये।"

मीरा का अधिकांश समय भावावेश में ही बीतने लगा। विरहावेश में उसे स्वयं का ज्ञान ही न रहता। ग्रंथों के पृष्ठ-पृष्ठ-में वह अपने लिए ठाकुर का संकेत पाने का प्रयास करती। कभी ऊँचे चढ़कर पुकारने

लगती और कभी संकेत कर पास बुलाती। कभी हर्ष के आवेश में वह इस प्रकार दौड़ती कि भूल ही जाती कि सम्मुख सीढ़ियाँ हैं। कई बार टकराकर वह जख्मी हो जातीं। दासियाँ साथ तो रहती पर कभी-कभी मीरा की त्वरा का साथ देना उनके लिए असम्भव हो जाता। जो मीरा की मनोस्थिति समझते, वे उसकी सराहना करते, उसकी चरण-रज सिर पर चढ़ाते। नासमझ लोग हँसते और व्यंग्य करते। भोजराज देखते कि होली के उत्सव के दिनों में महल में बैठी हुई मीरा की साड़ी अचानक रंग से भीज गई है, और वह चौंककर 'अरे' कहती हुई भाग उठती किसी अनदेखे से उलझने के लिए। कभी वे छत पर टहल रहे होते और अन्जाने में ही किसी और से बातें करने लग जाती। कभी ऐसा भी लगता कि किसी ने मीरा की आँखें मूँद ली हों, और ऐसे किसी का हाथ थामकर वह चम्पा, पाटला, विद्या ये अनसुने नाम लेकर थककर कहती "श्री किशोरीजू!" और पीछे घूम कर आनन्द विह्वल होकर कह उठतीं - "मेरे प्राणधन! मेरे श्यामसुन्दर!"

भोजराज के आदेश से चम्पा उनके मुख से निर्झरित भजनों को एक पोथी में लिखती जाती। भोजराज को मीरा की अत्यधिक चिन्ता हो जाती। जब भी वह कहीं बाहर जाते, वापिसी पर उनका अश्व तीव्र गति से भाग छूटता। सौ-सौ शंकाये सिर उठाकर उन्हें भयभीत कर देती - कहीं वह झरोखे से न गिर पड़ी हो? कहीं कोई कुछ खिला-पिला न दें, वह सब पर सरलता से विश्वास कर लेती है। उस दिन भीत से टकरा गई थी तो मस्तक से रक्त बहने लगा था। अब जाकर न जाने किस अवस्था में पाऊँगा? मीरा की सुरक्षा की चिन्ता में, भोजराज का उनमें मोह बढ़ने लगा। जिस दिन भोजराज विजय प्राप्त कर लौटते तो ठाकुर को कई मिष्ठान्न भोग लगते और दास-दासियों को पुरस्कार मिलते।

एक दिन भोजराज कहने लगे, "आपका पूजा-पाठ, सत्संग और भावावेश देखता हूँ, तो बुद्धि कहती है कि यह सब निरर्थक नहीं है। किन्तु इतने पर भी ईश्वर पर विश्वास नहीं होता। मैं विश्वास करना तो चाहता हूँ - पर अनुभव के बिना विश्वास के पैर नहीं जमते।" "कोई विशेष प्रश्न हो तो बतायें? शायद मैं कुछ समाधान कर पाऊँ?" मीरा ने कहा।

"नहीं, बस यही कि कहाँ हैं? किसने देखा है? और है तो क्या प्रमाण है? मैं कोशिश तो करता हूँ अपने को समझाने की पर देखिए

बिना विश्वास के की गई साधना अपने को और अन्य को धोखा देना है।" "पहले आप मुझे बतलाईये कि आपको क्या कठिनाई होती है?" मीरा ने पूछा।

"आपको बुरा लगेगा।" भोजराज ने संकोच से कहा- "बहुत प्रयत्न के पश्चात भी ध्यान में सम्मुख मूर्ति ही सिंहासन पर दिखाई देती है। बस केवल एक बार दर्शन की लालसा..............।" "पर क्या आप प्रभु का स्मरण करते हैं?" मीरा ने पूछा।

"सुना है, भगवान भक्तों की बात नहीं टालते। तब तो आपकी कृपा ही कुछ कर दिखाये तो बात सफल हो, अन्यथा आप सत्य मानिये, मेरे नित्य नियम केवल नीरस होकर रह गये हैं। मैं जीवन से निराश सा होता जा रहा हूँ।" कहते-कहते भोजराज की आँखें भर आईं। वे दूसरी ओर देख अपने आँसूओं को छिपाने का प्रयत्न करने लगे। भोजराज एकलिंगनाथ के उपासक थे। मीरा की भक्ति के भाव में बहते-बहते उनके अपने नियम तो यूँ के यूँ धरे रह गये थे। और मीरा को व्यावहारिक और पारिवारिक रूप से भोजराज के रूप में एक ऐसी ढाल मिल गई थी जो उसके और जगत के मध्य खड़ी थी, सो मीरा की भक्ति भाव का राज्य विकसित हो रहा था। मीरा तो गिरधर की प्रीति के साथ ही बड़ी हुईं थी - सो उसके लिये यह सब अनुभव स्वाभाविक भी थे और सहज भी। पर भोजराज के लिए सब परिवेश नया था। आँखें जो देख रही थीं, मन उस पर विश्वास करना तो चाहता पर स्वयं कुछ भी व्यक्तिगत अनुभव के आभाव से वह विश्वास कुछ देर के बाद डाँवाडोल हो जाता। सो भोजराज की भक्ति की स्थिति परिपक्व न होने के कारण उसे सही दिशा नहीं मिल रही थी।और वह इसी कारण जीवन से निराश सा हो मीरा से कृपा की याचना कर रहे हैं।

"क्या मेरी प्रसन्नता के लिए भी आप प्रभु का स्मरण नहीं कर सकते।" मीरा ने पूछा। "वही तो करने का प्रयत्न कर रहा हूँ अब तक। जैसे श्रीगीता जी में वर्णित है कि विराट पुरुष की देह में ही संसार है, वैसे ही आपकी पृष्ठभूमि में मुझे अपना कर्तव्य, राजकार्य दिखाई देते हैं, किन्तु कभी भगवान नहीं दिखाई देते।"

"दृढ़ संकल्प हो तो मनुष्य के लिए दुर्लभ क्या है ? "मीरा ने

गम्भीरता से कहा -" देखिये मेरे मन में आपका बहुत मान-सम्मान है। पर मैं आपके सांसारिक विषयों के बीच ढाल की तरह आ गईं हूँ। अब वह सब आपको प्राप्त नहीं हो सकते। दूसरा विवाह आपको स्वीकार नहीं है। तो चलना तो अब भगवद अराधना के पथ पर ही होगा।" "मैं कब इस पथ पर चलने से इन्कार कर रहा हूँ। किन्तु अँधेरे में पथ टटोलते-टटोलते थक गया हूँ अब तो। आप कृपा करें या कोई सीधा सादा मार्ग बतलाईये।" भोजराज ने हताश स्वर में कहा। "हमें कहीं जाना हो, पर हम पथ नहीं जानते। किसी से पूछने पर जो पथ उसने बताया, तो उस पथ पर चलने के बदले हम पथ बताने वाले को ही पकड़ लें और समझ लें कि हमें तो गन्तव्य (मंजिल) मिल गया, क्या कहेंगे उसे आप, मूर्ख या बुद्धिमान? मैं होऊँ या कोई और, आपको पथ ही सुझा सकते हैं। चलना तो, करना तो, आपको ही पड़ेगा। गुरु बालक को अक्षर बता सकते हैं, उसको घोटकर तो नहीं पिला सकते। अभ्यास तो बालक को स्वयं ही करना पड़ेगा।" मीरा ने गम्भीर स्वर से कहा।

मीरा ने समझाते हुये फिर कहा, "देखिये, जब तक संसार में या उसकी किसी भी वस्तु में महत्व बुद्धि है, तब तक ईश्वर का महत्व या उसका अभाव बुद्धि-मन में नहीं बैठेगा। जब तक अभाव न जगे, प्राणप्रण से उसके लिए चेष्टा भी न होगी। आसक्ति अथवा मोह ही समस्त बुराइयों की जड़ है।" "आसक्ति किसे कहते हैं?" भोजराज ने पूछा।

"हमें जिससे मोह हो जाता है, उसके दोष भी गुण दिखाई देते हैं। उसे प्रसन्न करने के लिए कैसा भी अच्छा-बुरा काम करने को हम तैयार हो जाते हैं। हमें सदा उसका ध्यान बना रहता है। उसके समीप रहने की इच्छा होती है। उसकी सेवा में ही सुख जान पड़ता है। यदि यही मोह अथवा आसक्ति भगवान में हो तो कल्याण कारी हो जाती है क्योंकि हम जिसका चिन्तन करते हैं उसके गुण-दोष हममें अन्जाने में ही आ जाते हैं। अतः जिसकी आसक्ति भक्त में होगी, वह भी भक्त हो जायेगा। क्योंकि अगर उसकी आसक्ति का केन्द्र भक्त सचमुच भक्त है तो वह अपने अनुगत को सच्ची भक्ति प्रदान कर ही देगा। गुरु-भक्ति का रहस्य भी यही है। गुरु की देह भले पाञ्चभौतिक हो, उसमें जो गुरु तत्व है, वह शिव है। गुरु के प्रति आसक्ति अथवा भक्ति उस शिव तत्व को जगा देती

है, उसी से परम तत्त्व प्राप्त हो जाता है। गुरु और शिष्य में से एक भी यदि सच्चा है तो दोनों का कल्याण निश्चित है।"

"यदि भक्त में आसक्ति होने से कल्याण संभव है तो फिर मुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। आप परम भक्तिमती है और मुझमें आसक्त के सभी लक्षण जान पड़ते हैं।" भोजराज ने संकोच से सिर झुकाते हुये कहा युगलचरणो में आप सभी की प्रीति नित्य-निरन्तर बढ़ती रहे।

मीरा ने भोजराज को आसक्ति के बारे में बताया कि यों तो आसक्ति बुराइयों की जड़ है, पर अगर यही आसक्ति भक्ति या किसी सच्चे भक्त में हो जाये तो कल्याणकारी हो सकती है।

"यदि भक्त में आसक्ति होने से कल्याण सम्भव है तो फिर मुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आप परम भक्तिमती हैं और मुझमें आसक्त के सारे लक्षण जान पड़ते हैं।" भोजराज ने संकोच से कहा। "मनुष्य का जीवन बाजी जीतने के लिए मिलता है। कोई हारने की बात सोच ही ले तो फिर उपाय क्या है?" मीरा ने कहा।

"विश्वास की बात न फरमाइयेगा। वह मुझमें नहीं है। उसके लिए तो आपको ही मुझ पर दया करनी पड़ेगी। मेरे योग्य कोई सरल उपाय हो तो बताने की कृपा करें।" भोजराज ने कहा। "भगवान का जो नाम मन को भाये, उठते-बैठते, चलते-फिरते और काम करते लेते रहें। मन में प्रभु का नाम लेना अधिक अच्छा है, किन्तु मन धोखा देने के अनेक उपाय जानता है। बहुत बार साँस की गति ही ऐसी हो जाती है कि हमें जान पड़ता है कि मानों मन नाम ले रहा है। अच्छा है, आरम्भ मुख से ही किया जाये। इसके साथ ही यदि सम्भव हो तो जिसका नाम लेते हैं, उसकी छवि का, रूप-माधुरी का, ध्यान किया जाये, उसकी लीला-माधुरी के चिन्तन की चेष्टा की जाये। एक तो इस प्रकार मन खाली नहीं रहेगा और दूसरे मन में उल्टे सीधे विचार नहीं आ पायेंगे।" "जी! अब ऐसा ही प्रयत्न करूँगा।" भोजराज ने समझते हुये कहा।

भोजराज किसी राज्य के कार्य से उठकर गये तो देवर रत्नसिंह भाई को ढूढँते इधर आ निकले। उस दिन भाई से हुई वार्ता के पश्चात रत्नसिंह की दृष्टि में अपनी भाभीसा का स्वरूप पहले से कहीं अधिक

सम्माननीय एवं पूजनीय हो गया था। मीरा ने झटपट दासियों की सहायता से जलपान और दूसरे मिष्ठान्न स्नेह से दिए। "अरोगो लालजीसा! इस राजपरिवार में अपनी भौजाई को 'औगणो' ही समझ लीजिए। गिरधरलाल की सेवा में रहने के कारण अधिक कहीं आ जा नहीं पाती। भली-बुरी जैसी भी हूँ, आप सभी की दया है, निभा रहे हैं।" "ऐसा क्यों फरमाती हैं आप?" रत्नसिंह ने प्रसाद लेते हुये कहा। "हमारा तो सौभाग्य है कि हम आपके बालक हैं। लोग तीर्थों और भक्तों के दर्शन के लिए दूर दूर तक भटकते फिरते हैं। हमें तो विधाता ने घर बैठे ही आपके स्वरूप में तीर्थ सुलभ कराये है। मेरा तो आपसे हाथ जोड़ कर यही निवेदन है कि जो आपको न समझ पाये और जो कोई कुछ कह भी दे, तो उन्हें नासमझ मानकर आप उनपर कृपा रखिये।"

"यह क्या फरमाते हैं आप? किसपर नाराज होऊँ लालजीसा! अपने ही दाँतों से जीभ कट जाये तो क्या हम दाँतों को तोड़ देते हैं? सृष्टि के सभी जन मेरे प्रभु के ही सिरजाये हुये ही तो हैं। इनमें से किसको बुरा कहूँ?" रत्नसिंह ने स्नेह से अपनी अध्यात्मिक जिज्ञासा रखते हुये कहा, "एक बात पूँछू भाभीसा हुकम? अगर समस्त जगत ईश्वर से ही बना है, तो आप गिरधर गोपाल की मूर्ति के प्रति ही इतनी समर्पित क्यूँ हैं? हम सबमें भी उतना ही भगवान है जितना उस मूर्ति में, फिर उसका इतना आग्रह क्यों और दूसरों की इतनी उपेक्षा क्यों? संतों के साथ का उत्साह क्यों, और दूसरों के साथ का अलगाव का भाव क्यों?"

"आखिर मेवाड़ के राजकुवंर मतिहीन कैसे होंगे?" मीरा हँस दी, "बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा है आपने लालजीसा! जैसे इस सम्पूर्ण देह की रग-रग में आप हैं और इसका कोई भी अंग आपसे अछूता नहीं है - इतने पर भी आप सभी अंगों और इन्द्रियों से एक सा व्यवहार नहीं करते। ऐसा क्यों भला? आपको कभी अनुभव हुआ कि पैरों से मुँह जैसा व्यवहार न करके उनकी उपेक्षा कर रहे हैं? गीता में भी भगवान ने समदर्शन का उपदेश दिया है समवर्तन का नहीं। चाहने पर भी हम वैसा नहीं कर सकेंगे। वैसे भी यह जगत सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का विकार है। इन तीनों के समन्वय से ही पूर्ण सृष्टि का सृजन हुआ है।" रत्नसिंह धैर्य से भाभीसा का कहा एक-एक शब्द का भावार्थ ह्रदयंगम करते जा

रहे थे।

मीरा ने फिर सहजता से ही कहा, "अच्छा और बुरा क्या है? यह समझना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना यह कि आप उसको कहाँ और किससे जोड़ते हैं। रावण और कंस आदि ने तो बुराई पर ही कमर बाँधी और मुक्ति ही नहीं, उसके स्वामी को भी पा लिया।"

"पर अगर मैं अपनी समझ से कहूँ तो अपने सहज स्वभावानुसार चलना ही श्रेष्ठ है। ज्ञान, भक्ति और कर्म सरल साधन है। इन्हें अपनाने वाला इस जन्म में नहीं तो अन्य किसी जन्म में अपना लक्ष्य पा ही लेगा। जैसे छोटा बालक उठता-गिरता-पड़ता अंत में दौड़ना सीख ही लेता है, वैसे ही मनुष्य सत् के मार्ग पर चलकर प्रभु को पा ही लेता है।"

रत्नसिंह मन्त्रमुग्ध सा मीरा के उच्चारित प्रत्येक शब्द का आनन्द ले रहा था और अन्जाने में ही मीरा की प्रेम भक्ति धारा में एक और सूत्र जुड़ता जा रहा था, और रत्नसिंह भी चाहे बेखबर ही, पर इस भक्ति पथ पर अग्रसर होने का शुभारम्भ कर चुका था।

मीरा अधिक समय अपने भावावेश में ही रहती। एक रात्रि अचानक मीरा के क्रन्दन से भोजराज की नींद उचट गई। वे हड़बड़ाकर अपने पलंग से उठे और भीतरी कक्ष की और दौड़े जहाँ मीरा सोई थी।

"क्या हुआ? क्या हुआ? कहते-कहते वे भीतर गये। पलंग पर औंधी पड़ी मीरा पानी में से निकाली मछली की भाँति तड़फड़ा रही थी। हिल्कियाँ ले लेकर वह रो रही थी। बड़ी-बड़ी आँखों से आँसुओं के मोती ढ़लक रहे थे। भोजराज मन में ही सोचने लगे - "आज इनकी वर्षगाँठ और शरद पूनम की महारास का दिन होने से दो-दो उत्सव थे। मीरा का आज हर्ष उफना पड़ता था। आधी रात के बाद तो सब सोये। अचानक क्या हो गया?" उन्होंने देखा कि मीरा की आकुल व्याकुल दृष्टि किसी को ढूँढ रही है। झरोखे से शरद पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी शीतल किरणें कक्ष में बिखेर रहा था।

भोजराज अभी समझ नहीं पा रहे थे कि वह क्या करें, कैसे धीरज बँधाये, क्या कहें? तभी मीरा उठकर बैठ गई और हाथ सामने फैला कर वह रोते हुए गाने लगी ....

पिया कँहा गयो नेहड़ा लगाय।

छाड़ि गयो अब कौन बिसासी, प्रेम की बाती बलाय।
बिरह समँद में छाँड़ि गयौ हो, नेह की नाव चलाय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रह्यो न जाय।

पद के गान का विश्राम हुआ तो मीरा दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर फफक-फफक कर रोने लगी। भोजराज समझ नहीं पाये कि क्या करें, कैसे धीरज बँधाये, क्या कहें ? इससे पहले वह कुछ सोच पाते, वह पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी। भोजराज घबराकर उन्हें उठाने के लिए बढ़े, नीचे झुके परन्तु अपना वचन और मर्यादा का सोच ठिठक गये। तुरन्त कक्ष से बाहर जाकर उन्होंने मिथुला को पुकारा। उसने आकर अपनी स्वामिनी को संभाला।

ऐसे ही मीरा पर कभी अनायास ही ठाकुर से विरह का भाव प्रबल हो उठता। एक ग्रीष्म की रात्रि में, छत पर बैठे हुये भोजराज की अध्यात्मिक जिज्ञासा का समाधान मीरा कर रही थी। कुछ ही देर में भोजराज का अनुभव हुआ कि उनकी बात का उत्तर देने के बदले मीरा दीर्घ श्वास ले रही है। "क्या हुआ? आप स्वस्थ तो हैं?" भोजराज ने पूछा। तभी कहीं से पपीहे की ध्वनि आई तो ऐसा लगा जैसे बारूद में चिन्गारी पड़ गई हो। वह उठकर छत की ओट के पास चली गई। रूँधे हुये गले से कहने लगी.............

पपइया रे! कद को बैर चितार्यो।
मैं सूती छी भवन आपने पिय पिय करत पुकार्यो॥
दाझया ऊपर लूण लगायो हिवड़े करवत सार्यो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित धार्यो॥

"म्हें थारो कई बिगाड़यो रे पंछीड़ा! क्या तूने मेरे सिये घाव उधेड़े? क्यों मेरी सोती पीर जगाई? अरे हत्यारे! अगर तुम विरहणी के समक्ष आकर "पिया-पिया" बोलोगे तो वह तुम्हारी चौंच न तोड़ डालेगी क्या?"

फिर अगले ही क्षण आशान्वित हो कहने लगी, "देख पपीहरे! अगर तुम मेरे गिरधर के आगमन का सुहावना संदेश लेकर आये हो तो मैं तेरी चौंच को चाँदी से मढ़वा दूँगी।" फिर निराशा और विरह का भाव प्रबल हो उठा - "पर तुम मुझ विरहणी का क्यूँ सोचोगे? मेरे पिय दूर हैं।

वे द्वारिका पधार गये, इसी से तुझे ऐसा कठोर विनोद सूझा? श्यामसुन्दर! मेरे प्राण! देखते हैं न आप इस पंछी की हिम्मत? आपसे रहित जानकर ये सभी जैसे मुझसे पूर्व जन्म का कोई बैर चुकाने को उतावले हो उठे हैं। पधारो-पधारो मेरे नाथ! यह शीतल पवन मुझे सुखा देगी, यह चन्द्रमा मुझे जला देगा। अब और......... नहीं ....सहा........ जाता .....नहीं.......स......हा.....जा.......ता।"

भोजराज मीरा का प्रभु विरहभाव दर्शन कर अवाक हो गये। तुरन्त चम्पा को बुला कर, मीरा को जल पिलाया, उन्हे पंखा करने को कहा। भोजराज मन में सोचने लगे - "मुझ अधम पर कब कृपा होगी प्रभु! कहते हैं भक्त के स्पर्श से ही भक्ति प्रकट हो जाती है, पर भाग्यहीन भोज इससे भी वंचित है।"

भोजराज ने मंगला और चम्पा को आज्ञा दी कि अब से वे अपनी स्वामिनी के पास ही सोया करें। और स्वयं वह दूसरी ओर चले गये। मीरा की दासियाँ उसका विरहावेश समझती थीं...... और उसे स्थिति अनुसार संभालती भी थीं। पर मीरा के नेत्रों में नींद कहाँ थी। वह फिर हाथ सामने बढ़ा गाने लगी........

हो रमैया बिन, नींद न आवै, विरह सतावे................।

मीरा की अवस्था कभी दो-दो दिन और कभी तीन-चार दिनों तक भी सामान्य नहीं रहती थी। वे कभी तो भगवान से मिलने के हर्ष और कभी विरह के आवेश में जगत और देह की सुध को भूली रहती थीं। कभी यूँ ही बैठे-बैठे खिलखिला कर हँसती, कभी मान करके बैठी रहती और कभी रोते-रोते आँखें सुजा लेतीं। यदि ऐसे दिनों में भोजराज को चित्तौड़ से बाहर जाने का आदेश मिलता तो - यूँ तो वह रण में प्रसन्नता से जाते, पर मीरा के आवेश की चिन्ता कर उनके प्राणों पर बन आती।

आगरा के समीप सीमा पर भोजराज घायल हो गये। सम्भवतः शत्रु ने विष बुझे शस्त्र का प्रहार किया था। राजवैद्य ने दवा भरकर पट्टियाँ बाँधी। औषधि पिलाई और लेप किये जाने से धीरे-धीरे घाव भी भरने लगा।

एक शीत की रात्रि। कुवँर अपने कक्ष में और मीरा भीतर अपने कक्ष में थी। रात्रि काफी बीत चुकी थी, पर घाव में चीस के कारण

भोजराज की नींद रह-रह करके खुल जाती। वे मन ही मन श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण नाम जप कर रहे थे। उन्हें मीरा के कक्ष से उसकी जैसे नींद में बड़बड़ाने की आवाज सुनाई दी। मीरा खिलखिला कर हँसती हुई बोली, "चोरजारपतये नम: आप तो सब चोरों के शिरोमणि हैं। पर आपका यह न्यारा रस-रूप ही मुझे भाता है। रसो वै स: आप तनिक भी मेरी आँखों से दूर हों - मुझसे सहा नहीं जाता।"

भोजराज ने अपने पलंग से ही बैठे-बैठे देखा, मीरा भी बैठकर बातें कर रही थी, पर जाग्रत अवस्था में हो ऐसा नहीं प्रतीत हो रहा था। उन्हें लगा मीरा प्रभु से वार्तालाप कर रही है। भोजराज को थोड़ी देर तक झपकी आ गई तो वह सो गये।

"श्यामसुन्दर! मेरे नाथ! मेरे प्राण! आप कहाँ हैं? इस दासी को छोड़ कर कहाँ चले गये?"

भोजराज की नींद खुल गई। उन्होंने देखा कि मीरा श्यामसुन्दर को पुकारती हुई झरोखे की ओर दौड़ी। भोजराज ने सोचा कि कहीं झरोखे से टकराकर ये गिर जायेंगी - तो उन्होंने चोटकी आशंका से चौकी पर पड़ी गद्दी उठाकर आड़ी कर दी। पर मीरा तो अपनी भाव तरंग में उस झरोखे पर ही चढ़ गई। मीरा ने भावावेश में हाथ के एक ही झटके से झरोखे से पर्दा हटाया और बाँहें फैलाये हुये - "मेरे प्रभु! मेरे सर्वस्व! कहती हुई एक पाँव झरोखे के बाहर बढ़ा दिया। सोचने का समय भी नहीं था, बस पलक झपकते ही उछलकर भोजराज झरोखे में चढ़े और शीघ्रता से मीरा को भीतर कक्ष में खींच लिया। एक क्षण का भी विलम्ब हो जाता तो मीरा की देह नीचे चट्टानों पर गिरकर बिखर जाती। मीरा अचेतन हो गई थी। उसकी देह को उठाये हुये वे नीचे उतरे। भोजराज ने ममता भरे मन से उन्हें उनके पलंग पर रखा। मीरा के अश्रुसिक्त चन्द्रमुख पर आँसुओं की तो मानों रेखाएँ खिंच गई थी। तभी

"ओह म्हाँरा नाथ! तुम्हारे बिना मैं कैसे जीवित रहूँ?" मीरा के मुख से ये अस्फुट शब्द सुनकर भोजराज मानों चौंक उठे, जैसे नींद से वे जागे हों ......"यह ....यह क्या किया मैंने?" क्या किया? मैं अपने वचन का निर्वाह नहीं कर पाया। मेरा वचन टूट गया।" वचन टूटने के पछतावे से भोजराज का मन तड़प उठा।

प्रातःकाल सबने सुना कि महाराजकुमार को पुनः ज्वर चढ़ आया

है। बाँह का सिया हुआ घाव भी उधड़ गया। फिर से दवा-लेप सब होने लगा, किन्तु रोग दिन-दिन बढ़ता ही गया। यों तो सभी उनकी सेवा में एक पैर पर खड़े रहते थे, किन्तु मीरा ने रात-दिन एक कर दिया। उनकी भक्ति ने मानों पंख समेट लिए हो। पूजा सिमट गई और आवेश भी दब गया।

भोजराज बार-बार कहते, "आप आरोग लें। अभी तक आप विश्राम करने नहीं गईं? मैं अब ठीक हूँ; अब आप विश्राम कर लीजिए। अभी पीड़ा नहीं है। आप चिन्ता न करें।" मीरा को नींद आ जाती तो भोजराज दाँतों से होंठ दबाकर अपनी कराहों को भीतर ढ़केल देते।

ऐसे ही कितने दिन-मास निकलते गये। पर भोजराज की स्थिति में बहुत सुधार नहीं हुआ। फिर भी मुस्कुराते हुये एक दिन उत्सव का समय जान कहने लगे, "आज तो वसंत पंचमी है। ठाकुर जी को फाग नहीं खेलायीं? क्यों भला? आप पधारिये, उन्हें चढ़ाकर गुलाल का प्रसाद मुझे भी दीजिये।"

एक दो दिनों के बाद उन्होंने मीरा से कहा - आज सत्संग क्यों रोक दिया? यह तो अच्छा नहीं हुआ। आप पधारिये, मैं तो अब ठीक हो गया हूँ।" वे कहते, मुस्कराते पर उनके घाव भर नहीं रहे थे।

"आपसे कुछ अर्ज करना चाहता हूँ मैं।" एक दिन एकान्त में भोजराज ने मीरा से कहा। "जी फरमाईये" समीप की चौंकी पर बैठते हुये मीरा ने कहा। "मैं आपका अपराधी हूँ। मेरा आपको दिया वचन टूट गया।" भोजराज ने अटकती वाणी में नेत्र नीचे किए हुये कहा - "आप जो भी दण्ड बख्शें, मैं झेलने को प्रस्तुत हूँ। केवल इतना निवेदन है कि यह अपराधी अब परलोक-पथ का पथिक है। अब समय नहीं रहा पास में। दण्ड ऐसा हो कि यहाँ भुगता जा सके। अगले जन्म तक ऋण बाकी न रहे।" उन्होंने हाथ जोड़कर सजल नेत्रों से मीरा की ओर देखा।

"अरे, यह क्या ? आप यूँ हाथ न जोड़िये।" फिर गम्भीर स्वर में बोली -"मैं जानती हूँ। उस समय तो मैं अचेत थी, किन्तु प्रातः साड़ी रक्त से भरी देखी तो समझ गई कि अवश्य ही कोई अटक आ पड़ी होगी। इसमें अपराध जैसा क्या हुआ भला ?" "अटक ही आ पड़ी थी।" भोजराज बोले - या तो आपको झरोखे से गिरते देखता या वचन तोड़ता। इतना समय नहीं था कि दासियों को पुकारकर उठाता। क्यों वचन तोड़ा,

इसका तनिक भी पश्चाताप नहीं है, किन्तु भोज अंत में झूठा ही रहा........।" भोजराज का कण्ठ भर आया। तनिक रूक कर वे बोले, "दण्ड भुगते बिना यह बोझ मेरे ह्रदय पर रहेगा।"

"देखिये, मेरे मन में तनिक भी रोष नहीं है। मैं तो अपने ही भाव में बह गिर रही थी। तो मरते हुये को बचाना पुण्य है कि पाप ? मेरी असावधानी से ही तो यह हुआ। यदि दण्ड मिलना ही है तो मुझे मिलना चाहिए, आपको क्यों?"

"नहीं, नहीं। आपका क्या अपराध है इसमें?" भोजराज व्याकुल स्वर में बोले -"हे द्वारिकाधीश! ये निर्दोष है। खोटाई करनहार तो मैं हूँ। तेरे दरबार में जो भी दण्ड तय हुआ हो, वह मुझे दे दो। इस निर्मल आत्मा को कभी मत दुख देना प्रभु!" भोजराज की आँखों से आँसू बह चले।

"अब आप यूँ गुजरी बातों पर आँसू बहाते रहेंगे तो कैसे स्वस्थता लाभ करेगें? आप सत्य मानिये, मुझे तो इस बात में अपराध जैसा कुछ लगा ही नहीं।" मीरा ने स्नेह से कहा। "आपने मुझे क्षमा कर दिया, मेरे मन से बोझ उतर गया।" भोजराज थोड़ा रूक कर फिर अतिशय दैन्यता से बोले, "मैं योग्य तो नहीं, किन्तु एक निवेदन और करना चाहता था।"

"आप ऐसा न कहे, आदेश दीजिए, मुझे पालन कर प्रसन्नता होगी।" "अब अन्त समय निकट है। एक बार प्रभु का दर्शन पा लेता...........।"

मीरा की बड़ी-बड़ी पलकें मुँद गई। भोजराज को लगा कि उनकी आँखों के सामने सैकड़ों चन्द्रमा का प्रकाश फैला है। उसके बीच में खड़ी वह साँवरी मूरत, मानों रूप का समुद्र हो, वह सलोनी छवि नेत्रों में अथाह स्नेह भरकर बोली - "भोज! तुमने मीरा की नहीं, मेरी सेवा की है। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।"

"मेरा अपराध प्रभु!" भोजराज अटकती वाणी में बोले। वह मूरत हँसी, जैसे रूप के समुद्र में लहरें उठी हों। "स्वार्थ से किए गये कार्य अपराध बनते हैं भोज! निस्वार्थ से किए गये कार्यों का कर्मफल तो मुझे ही अर्पित होता है। तुम मेरे हो भोज! अब कहो, क्या चाहिए तुम्हें?" उस मोहिनी मूर्ति ने दोनों हाथ फैला कर भोजराज को अपने ह्रदय से लगा लिया।

आनन्द के आवेग से भोजराज अचेत हो गये। जब चेत आया तो उन्होंने हाथ बढ़ा कर मीरा की चरण रज माथे चढ़ायी। पारस तो लोहे को सोना ही बना पाता है, पर यह पारस लोहे को भी पारस बना देता है। दोनों ही भक्त आलौकिक आनन्द में मग्न थे।

"रत्नसिंह! तुम्हारी भाभी का भार मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। मुझे वचन दो कि उन्हें कभी कोई कोई कष्ट नहीं होने दोगे।" एकान्त में भोजराज ने रत्नसिंह से कहा। "यह क्या फरमा रहे हैं आप बावजी हुकम!" वह भाई के गले लग रो पड़े। "वचन दो भाई! अन्यथा मेरे प्राण सहज नहीं निकल पायेंगे। अब अधिक समय नहीं रहा।"

रत्नसिंह ने भाई के पाँवो को छूकर रूँधे हुये कण्ठ से बोले - "भाभीसा मेरे लिए कुलदेवी बाणमाता से भी अधिक पूज्य है। इनका हर आदेश श्री जी (पिता - महाराणा सांघा) के आदेश से भी बढ़कर होगा। इनके ऊपर आनेवाली प्रत्येक विपत्ति को रत्नसिंह की छाती झेल लेगी।" भोजराज ने हाथ बढ़ा कर भाई को छाती से लगा लिया। दूसरे ही दिन भोजराज ने शरीर छोड़ दिया।

राजमहल और नगर में उदासी छा गई। मीरा के नेत्रों में एकबार आँसू की झड़ी लगी और दूसरे दिन ही वह उठकर अपने सदैव के नित्यकर्मों में, ठाकुर जी की सेवा में लग गई।

कुछ बूढ़ी औरतें कुछ रस्में करने आईं तो मीरा ने किसी भी श्रृंगार उतारने से मना कर दिया कि मेरे पति गिरधर तो अविनाशी हैं। और जब उन्होंने पूछा, "तो महाराजकुमार भोजराज ?" मीरा ने कहा, "महाराजकुमार तो मेरे सखा थे। वे मुझे यहाँ ले आये तो मैं आ गई। अगर आप मुझे वापिस भेजना चाहें तो चली जाऊँगी। पर मैं अपने पति के रहते चूड़ियाँ क्यूँ उतारूँ?"

बात सबके कान में पहुँची तो एकबार तो सब भन्ना गये। किन्तु रत्नसिंह ने आकर निवेदन किया - "भाभीसा तो आरम्भ से ही यह फरमाती रही हैं कि मेरे पति ठाकुर जी हैं। अब उन्होंने ऐसा नया क्या कह दिया कि सब बौखलाये-से फिर रहे हैं? अगर उन्हें यह सब उचित नहीं लग रहा तो किसी को भी उनसे जोर-जबरदस्ती करने की कोई आवश्यकता नहीं।" ऐसा कहकर रत्नसिंह ने रनिवास की स्त्रियों को डाँट कर शान्त कर दिया।

जिसने भी सुना, वह आश्चर्य में डूब गया। स्त्रियों के समाज में थू-थू होने लगी। उसी दिन से मेड़तणी मीरा परिवार में उपेक्षिता ही नहीं घृणिता भी हो गई। दूसरी ओर संत समाज में उनका मान सम्मान बढ़ता जा रहा था। पुष्कर आने वाले संत मीरा के दर्शन-सत्संग के बिना अपनी यात्रा अधूरी मानते थे। उनके सरल सीधे-सादे किन्तु मार्मिक भजन जनसाधारण के ह्रदय में स्थान बनाते जा रहे थे।

बाबर ने राजपूतों पर हमला बोल दिया। यही निश्चय हुआ कि मेवाड़ के महाराणा साँगा की अध्यक्षता में सभी छोटे-मोटे शासक बाबर से युद्ध करें। शस्त्रों की झंकार से राजपूती उत्साह उफन पड़ा। सबके दिल में वीर भोजराज का अभाव कसक रहा था। रत्नसिंह वीर हैं, किन्तु उनकी रूचि कला की ओर अधिक झुकी है। महाराणा सांगा युद्ध के लिए गये और रत्नसिंह को राज्य प्रबन्ध के लिए चित्तौड़ ही रह जाना पड़ा।

एक दिन रत्नसिंह ने भाभी से पूछा, "जब संसार में सब मनुष्य भगवान ने बनाए हैं, उनके स्वभाव और रूप गुण कला भी भगवान का ही दिया है तो मनुष्य क्यों मेरा-मेरा कर दूसरे को मारता और मरता है? मनुष्य को मारना कहाँ का धर्म है भाभीसा?"

लालजीसा! जिसने मनुष्य और उनके गुण स्वभाव बनाये हैं उसी ने कर्तव्य, धर्म और न्याय भी बनाये हैं। इनका सामना करने के लिए उसी ने पाप अधर्म और अन्याय की भी रचना की है। धर्म की गति बहुत सूक्ष्म है लालजीसा! बड़े-बड़े मनीषी भी संशय में पड़ जाते हैं, क्योंकि जो कर्म एक के लिए धर्म की परिधि में आता है, वही कर्म दूसरे के लिए अधर्म के घर जा बैठता है। जैसे सन्यासी के लिए भिक्षाटन धर्म है, किन्तु गृहस्थ के लिए अधर्म। ब्राह्मण के लिए याचना धर्म हो सकता है, किन्तु क्षत्रिय के लिए अधर्म। ऐसे ही अपने स्वार्थवश किसी को मारना हत्या है और युद्ध में मारना धर्म सम्मत वीरता है। समय के साथ नीति-धर्म बदलते रहते है।"

आगरा के पास हो रहे युद्ध से आये समाचार से पता लगा कि महाराणा सांगा एक विषबुझे बाण से मूर्छित हो गये हैं। उन्हें जयपुर के पास किसी गाँव में चिकित्सा दी जाने लगी। उन्हें हठ था कि बाबर को जीते बिना मैं चित्तौड़ वापिस नहीं जाऊँगा, और वह स्वस्थ होने लगे। राजपूतों की वीरता देखकर बाबर भी एकबारगी सोच में पड़ गया। पर किसी विश्वासघाती ने महाराणा को विष दे दिया। महाराणा के निधन से

हिन्दुआ सूर्य अस्त हो गया। मेवाड़ की राजगद्दी पर कुँवर रत्नसिंह आसीन हुये।

महाराणा सांगा की धर्मपत्नी धनाबाई के पुत्र थे रत्नसिंह और उनकी दूसरी पत्नी कर्मावती बाई के पुत्र थे - विक्रमादित्य और कुंवर उदयसिंह। रानी कर्मावती की तरफ महाराणा का विशेष झुकाव था और उसने कुछ जागीरें अपने पुत्रों के नाम पहले से ही लिखवा ली थीं और अब उसकी दृष्टि मेवाड़ की राजगद्धी पर थी।

यह परिवारिक वैमनस्य रत्नसिंह के कोमल ह्रदय के लिए प्राणघातक सिद्ध हुआ। और रत्नसिंह के साथ ही उनकी पत्नी पँवार जी सती हो गई। इनके एक पुत्री थी श्याम कुँवर बाईसा जिसे अपनी बड़ी माँ मीरा से खूब स्नेह मिला।

चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे कलियुग के अवतार राणा विक्रमादित्य। वह अविश्वासी और ओछे स्वभाव के थे जो सदा खिदमतगारों, कुटिल और मूर्ख लोगों से घिरे रहते। जिन विश्ववसनीय सामन्तों पर पूर्ण राज्य टिका था, उन्हें दूध की मक्खी की तरह बाहर निकाल दिया गया।

राणा विक्रमादित्य ने एक दिन बड़ी बहन उदयकुँवर को बुला कहा, "जीजा! भाभी म्हाँरा को अर्ज कर दें कि नाचना-गाना हो तो महलों में ही करने की कृपा करें। वहाँ मन्दिर में चौड़े चौगान , बाबाओं की भीड़ में अपने घाघरा फहराती हुई अपनी कला न दिखायें। यह रीत इनके पीहर में होगी, हम सिसौदियों के यहाँ नहीं है।"

उदयकुँवर बाईसा ने मीरा के पास आकर अपनी ओर से नमक मिर्च मिला कर सब बात कह दीं। "पहले तो अन्नदाता और भाईसा आपको कुछ नहीं कहते थे पर भाभी म्हाँरा! राणा जी यह सब न सहेगें, वह तो आज बहुत क्रोध में थे। सो देखिए आपका फर्ज है कि इन्हें प्रसन्न रखें। और अब से आप मन्दिर न पधारा करें।" इसका उत्तर मीरा ने तानपुरा उठाकर गाकर दिया ....

राणाजी मैं तो गोविंद के गुण गासूँ।
राजा रूठै, नगरी राखै। हरि रूठयो कहाँ जासूँ?
हरि मन्दिर में नृत्य करासूँ, घुँघरिया धमकासूँ॥
यह संसार बाढ़ का काँटा, जीया संगत नहीं जासूँ।

मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, नित उठ दरसन पासूँ॥
राणाजी मैं तो गोविंद के गुण गाऊं सूँ॥

उदयकुँवर तो मीरा का भजन सुनकर और क्रोधित हो उठी -"अरे, राणाजी विक्रमादित्य बाव जी हुकम भोजराज नहीं हैं जो विष के घूँट भीतर ही भीतर पीकर सूख गये। एक दिन भी आपने मेरे भाई को सुख से नहीं रहने दिया। जब से आपने इस घर में पाँव रखा है हमारे घराने की लाज के झंडे फहराती रही हो। अरे, अपने माँ-बाप को ही कह देती कि किसी बाबा को ही ब्याह देते। मेरे भीम और अर्जुन जैसे वीर भाई तो निश्वास छोड़-छोड़ कर न मरते।" फिर उदयकुँवर हाथ जोड़ कर बोली - "अब तो देखने को बस, ये दो भाई रह गये हैं। आपके हाथ जोडूँ लक्ष्मी! इन्हें दु:खी न करो, अपने ताँगड़े तम्बूरे लेकर घर में बैठो, हमें मत राँधो।"

मीरा ने धैर्य से सब आरोप सुने और किसी का भी उत्तर देना आवश्यक न समझा। बल्कि स्वयं की भजन में स्थिति और भक्ति में दृढ़ रहने के संकल्प को बताते हुये मीरा ने फिर तानपुरे पर उँगली फेरी..........

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ।
सुण री सखी तुम चेतन होय के मन की बात कहूँ॥
साधु संगति कर हरि सुख दलेऊँ जग सूँ दूर रहूँ।
तन मन मेरो सब ही जावौ भल मेरो सीस लहू॥
मन मेरो लागो सुमिरन सेती सब का बोल सहूँ।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी सतगुरू चरण गहूँ॥

तुनक करके उदयकुँवर बाईसा चली गईं। राणाजी ने बहिन को समझाया - "गिरधर गोपाल की मूर्ति ही क्यों न चुरा ली जाये। सब अनर्थों की जड़ यही बला ही तो है।"

दूसरे दिन सचमुच ही मीरा ने देखा कि ठाकुर जी का सिहांसन खाली पड़ा है तो उसका कलेजा ही बैठ गया। कहते हैं न गिलहरी की दौड़ पीपल तक! मीरा किसको कहे और क्या? उसने तानपुरा उठाया और रूँधे कण्ठ से वाणी फूट पड़ी ....

म्हाँरी सुध ज्यूँ जाणो त्यूँ लीजो।
पल पल ऊभी पंथ निहारूँ दरसन म्हाँने दीजो।

मैं तो हूँ बहु औगुणवाली औगुण सब हर लीजो॥
मैं तो दासी चरणकँवल की मिल बिछड़न मत कीजो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित दीजो॥
(ऊभी -अर्थात किसी की प्रतीक्षा में खड़े रहना)

झर-झर आँसूओं से मीरा के वस्त्र भीग रहे थे। दासियाँ इधर-उधर खड़ी आँसू बहाती विवशता से हाथ मल रही थीं। मीरा का गान न रूका। एक के बाद एक विरह का पद मीरा गाती जा रही है - आँसूओं की तो मानों बाढ़ ही आ गई हो। तभी मिथुला ने उतावले स्वर में कहा - "बाईसा हुकम, बाईसा हुकम!"

मीरा की आकुल दृष्टि मिथुला की ओर उठी तो उसने सिंहासन की ओर संकेत किया। उस ओर देखते ही हर्ष के मारे मीरा ने सिंहासन से उठाकर गिरधर के विग्रह को ह्रदय से लगा लिया। आँसुओं से गिरधर को अभिषिक्त करती हुई कहने लगी- "मेरे नाथ! मेरे स्वामी! मुझ दुखिया के एकमात्र आधार! मुझे छोड़कर कहाँ चले गये थे आप? रूँधे हुये कण्ठ से वह ठाकुर को उलाहना देते न थक रही थी......

मैं तो थाँरे भजन भरोसे अविनासी।
तीरथ बरत तो कुछ नहीं कीणो, बन फिरे है उदासी॥
जंतर मंतर कुछ नहीं जाणूँ, वेद पढ़ी नहीं कासी॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भई चरण की दासी॥

"ये भागवत पुराण सब सच्चे हैं क्या, बाईसा हुकम?" एक बार मिथुला ने पूछा। "क्यों, तुझे झूठे लगते हैं क्या?" मीरा ने हँसकर कहा। "इनमें लिखी बातें अनहोनी लगती हैं। रावण के दस माथे थे। ऋषियों में इतनी सिद्धि कि वह क्रोध में श्राप भी दे देते थे।" "कालचक्र के साथ संसार, इसके प्राणी और उनकी शक्तियाँ-रूप आदि सब कुछ बदलते रहते हैं। आज हम जो कुछ देख रहे हैं, सम्भवतः पाँच सौ वर्षों के पश्चात लोग इसे झूठ या अनहोनी कहने लग जायें।"

"सुना है बाईसा हुकम, कि प्रभु का विधान सदा मंगलमय होता है और उसी में जीव का भी मंगल निहित होता है। फिर आप जैसी ज्ञानी और भक्त के साथ इतना अन्याय क्यों? खोटे लोग आराम पाते हैं और

भले लोग दु:ख की ज्वाला में झुलसते रहते हैं। लोग कहते हैं कि धर्मात्मा को भगवान तपाते हैं, ऐसा क्यों हुकम? इससे तो भक्ति का उत्साह ठंडा पड़ता है।" मिथुला ने हिम्मत जुटाकर मीरा के पास अपनी गद्दी सरकाते हुये कहा। फिर हाथ जोड़ कर बोली, "बहुत बरसों से मन की यह उथल पुथल मुझे खा रही है। यदि कृपा हो तो ....।"

"कृपा की इसमें क्या बात है।" मीरा ने कहा -"जो सचमुच जानना चाहता है उसे न बताना जाननेवाले के लिए भी दोष है।" "हाँ, भगवान के विधान में जीव का उसी प्रकार मंगल है, जिस प्रकार माँ के हर व्यवहार में बालक का मंगल निहित है। वह बालक को खिलाती, पिलाती, सुलाती अथवा मारती भी है तो उसके भले के लिए ही, उसी प्रकार ईश्वर भी सदैव जीव का मंगल ही करते हैं।"

"पर हुकम! आपने तो कभी किसी का बुरा नहीं किया, फिर क्यों दु:ख उठाने पड़ रहे हैं?" "बता तो, चौमासे में बोयी फसल कब काटी जाती है?" मीरा ने हँसकर पूछा। "आश्विन-कार्तिक में। "और कार्तिक में बोयी हुई को?" "चैत्र-विशाख में।" तो फिर कर्मों की खेती तुरन्त कैसे पक जायेगी? वह भी इस जन्म का कर्मफल अगले जन्म में मिलेगा। कोई कोई प्रबल कर्म अवश्य तुरन्त फलदायी होते है।"

"किन्तु हुकम! अगले जन्म तक तो किसी को याद ही नहीं रहता। इसी कारण अपने दु:ख के लिए मनुष्य दूसरे लोगों को अथवा ईश्वर को दोषी ठहराने लगता है। हाथों-हाथ कर्मफल मिल जाये तो शिक्षा भी मिल जाये और मन-मुटाव भी कम हो जाये।"

"यह भूल न होती मिथुला! तो अपने कर्मों का बोझ उठाये मनुष्य कैसे जी पाता? यदि हाथों-हाथ कर्मफल मिल जाये तो उसे प्रायश्चित करने का अवसर कब मिलेगा? भगवान के विधान में सजा नहीं सुधार है, मिथुला! जैसे बालक गन्दे कीचड़ में गिरकर पूरा लथपथ होकर घर आये, माँ के मन में अथाह वात्सल्य होते हुये भी जब तक माँ उसे नहलाकर स्वच्छ नहीं कर लेती, तब तक गोद में नहीं लेती। अब नासमझ बालक यह न समझ पाये और रोये - चिल्लाये, माँ को भला बुरा कहे तो क्या माँ बुरा मानती है? वह तो बालक को स्वच्छ करके ही मानती है। और हम सब उस बालक जैसे ही हैं, जो अपना अच्छा बुरा नहीं समझते हैं।

मिथुला, चम्पा और दूसरी दासियाँ धैर्य से अपनी बाईसा से ज्ञान की बातें सुन रही थीं। मीरा ने फिर कहा, "इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है। सुख और आनन्द जुड़वाँ भाई हैं, इनके मुख की आकृति भी एक सी है, पर स्वभाव एक दूसरे से विपरीत है। मानव ढूँढता तो है आनन्द को, किन्तु मुख-साम्य के कारण सुख को ही आनन्द जानकर अपना लेता है। और इस प्रकार, आनन्द की खोज में वह जन्म जन्मान्तर तक भटकता रहता है।" "इनके स्वभाव में क्या विपरीतता है?" मिथुला ने जिज्ञासा की।

"आनन्द सदा एक सा रहता है। इसमें घटना बढ़ना नहीं है। पर सुख मिलने के साथ ही घटना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य की खोज पूरी नहीं होती और जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर वह सुखी होने का स्वप्न देखता रहता है।" एक बात और सुन मिथुला! इस सुख का एक मित्र भी है और यह दोनों मित्र एक ही स्वभाव के हैं। उसका नाम है दु:ख। दु:ख भी सुख के समान ही मिलते ही घट़ने लग जाता है अतः यदि सुख आयेगा तो उसका हाथ थामें दु:ख भी चला आयेगा।" "आनन्द की कोई पहचान बाईसा? उसका ठौर ठिकाना कैसे ज्ञात हो कि पाने का प्रयत्न किया जाये।"

"पहचान तो यही है कि वह इकसार है, वह ईश्वर का रूप है। ईश्वर स्वयं आनन्द स्वरूप हैं। जैसे सुख के साथ दु:ख आता है, उसी प्रकार आनन्द से ईश्वर की प्रतीति होती है। इसे पाने के बाद यह खोज समाप्त हो जाती है। अब रही ठौर ठिकाने की बात, तो वह गुरु और संतो की कृपा से प्राप्त होता है। उसके लिए सत्संग आवश्यक है। संत जो कहे, उसे सुनना और मनन-चिन्तन करना और भी आवश्यक है।"

मीरा धैर्य से मिथुला की जिज्ञासा के उत्तर में कितने ही भक्तों के प्रश्नों का समाधान करती जा रही हैं। फिर मीरा ने आगे कहा, "दु:ख और सुख दोनों का मूल इच्छा है और इच्छा का मूल मोह है। एक इच्छा की पूर्ति होते ही उसी की कोख से कई और इच्छायें जन्म ले लेती हैं। यही तृष्णा है और इसका कहीं भी अन्त नहीं।" मीरा ने थोड़ा रूककर फिर कहा, "अब हम आनन्द का भी स्वरूप समझें। जैसे हमें दूसरे सुखी दिखाई देते हैं, पर वे सुखी हैं नहीं। उसी प्रकार जिनको आनन्द मिलता है, वे बाहर से दु:खी दिखाई देने पर भी दु:खी नहीं होते।"

"बाईसा हुकम! एक बात बतलाइये, क्या भक्त और अच्छे लोग पिछले जन्म में दुष्कर्म ही करके आये हैं कि वर्तमान में दु:ख पाना उनका भाग्य बन गया, और सभी खोटे लोग पिछले जन्म में धर्मवान थे कि इस जन्म में मनमानी करते हुये पिछले कर्मों के बल पर मौज मना रहे हैं?"

"अरे नहीं, ऐसा नहीं होता। शुभ, अशुभ और मिश्रित तीन प्रकार के कर्म होते हैं। जैसे पापी केवल पाप ही नहीं, कभी जाने-अन्जाने में पुण्य भी करते हैं, उसी तरह पुण्यात्मा के द्वारा भी कोई न कोई अन्जाने में अपराध हो जाता है। तुमने देखा होगा मिथुला! माता-पिता अपनी संतान में तनिक सी भी खोट सह नहीं पाते हैं। यदि दो बालक खेलते हुये लड़ पड़े तो माता-बाप अपने ही बच्चे को डाँटते हैं कि तू उसके साथ खेलने क्यों गया? ठीक वैसे ही प्रभु अपने भक्त में तनिक सी कालिख भी नहीं देख-सह पाते।" मीरा ने समझाते हुये कहा।

फिर मीरा ने आगे कहा, "जब प्रारब्ध बनने का समय आता है तो भक्त के संचित कर्मों से ढूँढ-ढूँढ करके बुरे कर्मफलों का समावेश किया जाता है, कि शीघ्र-से-शीघ्र यह सब समाप्त हो जायें और वह प्रभु के आनन्द को प्राप्त कर सकें। दूसरी तरफ, पापियों पर दया करके शुभ कर्मो का फल प्रारब्ध - भोग में समावेशित किया जाता है कि किसी भी प्रकार यह सत्संग पाकर सुधर जाये। क्योंकि भक्त के पास तो भगवान के नाम रूपी चिन्तामणि है जिसके बल से वह कठिन दु;ख और विपत्तियों को सह जाता है। फिर प्रभु की दृष्टि उसपर से जरा भी नहीं हटती। यही कारण है कि भक्त सज्जन दु;खी और दुर्जन सुखी दिखाई देते हैं।"

"जगत में इतने लालच हैं बाईसा हुकम! यदि भक्त नामक जीव अशेष दु:ख उठाकर परिस्थितियों की शिला से फिसल गया, तो वह बेचारा तो दोनों ओर से गया।" मिथुला के ऐसा कहने पर दूसरी दासियों ने मुस्कराते हुये हाँ में हाँ मिलाई।

मीरा ने इस संशय का समाधान करते हुये कहा, "यदि इस पथ का पथिक विचलित होकर संसार के विषयों के प्रलोभन से अथवा परिस्थितियों की शिला से फिसल भी जाये तब भी भगवान उसके जीवन में कई ऐसे प्रसंग उपस्थित करते हैं, जिससे वह संभल जाये। यदि वह नहीं संभल पाये तो अगला जन्म लेने पर जहाँ से उसने साधना छोड़ी थी,

वहीं से वह आगे चल पड़ेगा। मिथुला! कहाँ तक करूणासागर भगवान की करूणा का बखान करूँ, उसके अराध्य बार-बार फिसलने का खतरा उपस्थित ही नहीं होने देते। अपने भक्त की संभाल प्रभु स्वयं करते हैं।"

मीरा ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के कठिन विषयों को सरल शब्दों में अति स्नेह से समझाती हुई बोली, "मिथुला! अगर भगवान परिस्थितियों में निज जन को डालते हैं तो क्षण-क्षण उसकी संभाल का दायित्व भी स्वयं लेते हैं। देखो, दु:खों की सृष्टि मनुष्य को उजला करने के लिए हुई है, क्योंकि दु:ख से ही वैराग्य का जन्म होता है और प्रभु सुख प्राप्ति के लिए किए गये प्रत्येक प्रयत्न को निरस्त कर देते हैं। हार थककर वह संसार की ओर पीठ देकर चलने लगता है। फिर तो क्या कहें? संत, शास्त्र और वे सभी उपकरण, जो उसकी उन्नति में आवश्यक हैं, एक-एक करके प्रभु जुटा देते हैं। इस प्रकार एक बार इस भक्ति के पथ पर पाँव धरने के पश्चात लक्ष्य के शिखर तक पहुँचना आवश्यक हो जाता है, भले दौड़कर पहुँचें या पंगु की भांति सरकते-खिसकते पहुँचें।"

"जिसने एक बार भी सच्चे मन से चाहा कि ईश्वर कौन है? अथवा मैं कौन हूँ, उसका नाम भक्त की सूची में लिखा गया। उसके लिए संसार के द्वार बन्द हो गये। अब वह दूसरी ओर जाने के लिए चाहे जितना प्रयत्न करे कभी सफल नहीं हो पायेगा। गिर-गिर कर उठना होगा। भूल-भूल कर पुनः भक्ति का पथ पकड़ना होगा। पहले और पिछले कर्मों में से छाँट-छूँट करके वे कर्मफल प्रारब्ध बनेंगे, जो उसे लक्ष्य की ओर ठेल दें।"

"जैसे स्वर्णकार स्वर्ण को, जब तक खोट न निकल जाये, तब तक बार-बार भठ्ठी में पिघला कर ठंडा करता है और फिर कूट-पीट कर, छीलकर और नाना रत्नों से सजाकर सुन्दर आभूषण तैयार कर देता है, वैसे ही प्रभु भी जीव को तपा-तपा कर महादेव बना देते हैं। एक बार चल पड़ा फिर तो आनन्द ही आनन्द है।"

"परसों एक महात्माजी फरमा रहे थे कि कर्मफल या तो ज्ञान की अग्नि में भस्म होते हैं अथवा भोग कर ही समाप्त किया जा सकता है, तीसरा कोई उपाय नहीं है।" चम्पा ने पूछा, "बाईसा हुकम! भक्त यदि मुक्ति पा ले तो उसके संचित कर्मों का क्या होगा?"

"ये कर्म भक्त का भला बुरा करने वालों में और कहने वालों में बँट

जायेंगे। समझी?" मीरा अपनी दासियों की जिज्ञासा से प्रसन्न हो मुस्कुरा कर बोली, "आजकल चम्पा बहुत गुनने लगी है।" चम्पा सिर झुका कर बोली, "सरकार की चरण-रज का का प्रताप है। लगता है, मैंने भी किसी जन्म में, 'ईश्वर कौन है' यह सत्य जानने की इच्छा की होगी जो प्रभु ने कृपा करके आप जैसी स्वामिनी के चरणों का आश्रय प्रदान किया है।"

राणा विक्रमादित्य का क्रोध मीरा पर दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। रनिवास की स्त्रियाँ भी दो भागों में बँटी हुई थीं - कुछ मीरा की ओर और कुछ कर्मावती बाई एवं उदयकुँवर बाईसा की ओर। इस दल को महाराणा की भी शह मिली हुई थी। कभी-कभी तो कर्मावती कहती, "जब से यह मेड़तणी का हमारे का यहाँ पाँव पड़ा है - कष्टों की सीमा नहीं, यह मरे तो राज्य में सुख शांति आये।"

एक दिन उदयकुँवर के पति पधारे तो उन्होंने उलाहना दिया, "तुम्हारी भाभी बाबाओं के बीच नाचती गाती है - यह कैसी रीति है हिन्दू पति राणा के घर की?" उदयकुँवर ने दूसरे ही दिन मन की सारी भड़ास मीरा पर निकाल दी -"आपको पता है भाभी म्हाँरा, आपके जँवाईसा पधारे हैं और आपके कारण मुझे उनके कितने उलाहने, कितनी बातें सुननी पड़ रही है।"

मीरा ने शांत मन से कहा, "बाईसा! जिनसे मेरा कोई परिचय या स्नेह का सम्बन्ध ही नहीं, उनके द्वारा दिए गये उलाहनों का कोई प्रभाव मुझ पर नहीं होता।" मीरा का शांत और उपेक्षित उत्तर सुन उदयकुवँर मन ही मन जल उठी - "किन्तु भाभी आप इन बाबाओं का संग छोड़ती क्युँ नहीं? सारे सगे-सम्बन्धियों में थू-थू हो रही है। जब बावजी हुकम का कैलाश वास हुआ तब तो आप सोलह श्रृंगार कर आप शोक मनाती रही और अब ये तुलसी की मालाओं को हाथों और गले में बाँधे फिरती हैं जैसे कोई निर्धन औरत हो। पूरा राजपरिवार आपके व्यवहार के कारण लाज से मरा जा रहा है।"

मीरा ने उसी तरह शांत स्वर में कहा, "जिसने शील और संतोष के गहने पहन लिए हो, उसे सोने और हीरे-मोतियों की आवश्यकता नहीं रहती बाईसा।" उदयकुँवर और क्रोधित होकर कहने लगी, "किसी बहू-बेटी को कोई ढंग से सुसज्जित हो मिलने आये तो किसी को अच्छा भी लगे पर आपको तो मिलने वाले तो कोई करताल खड़काते, गेरूआ वस्त्र

पहने, विभूति लगाये, मुण्डित मस्तक, तुलसी और रूद्राक्ष की मालायें पहने, जटाओं वाले बाबाओं का ही झुंड आता दिखाई देता है, जैसे शिव जी की बारात आ रही हो।" उदा ने मुँह बिचकाया।

मीरा मुस्कराई, "बाईसा! यहाँ शिव एकलिंग नाथ ही हैं तो उनकी बारात से लज्जित होना तो अच्छी बात नहीं है। मैं तो अपने झरोंखों से झाँककर जब इन साधु बाबाओं को देखती हूँ तो फूली नहीं समाती, बल्कि अपना भाग्य सराहती हूँ। साधु-संग तो जगत से तार देता है बाईसा!" उदयकुँवर क्रोधित हो चली गई।

इधर मीरा का यश बढ़ता जा रहा था। मन्दिर में और महल की ड्योढ़ी पर यात्रियों और संतों की भीड़ लगी रहती। मीरा जब भी मन्दिर पधारतीं मिथुला, चम्पा साथ ही रहती। जो मीरा के भजन लिखना चाहते, वे चम्पा को घेरे रहते क्योंकि भजनों की पुस्तिका उसी के पास रहती। मीरा ने ठाकुर जी को प्रणाम किया और फिर आये हुये संत भक्तों को भी। एक साधु ने मीरा के दर्शन कर गदगद कण्ठ से आग्रह किया, "माँ! कुछ कृपा हो जाये।" मीरा ने विनम्रता से गाना प्रारम्भ किया ......

राम कहिए, गोबिंद कही मेरे, राम कहिए, गोबिंद कही मेरे।
संतो कर्म की गति न्यारी ..संतो॥
बड़े बड़े नयन दिए मृगनको, बन बन फिरत उठारी।
उज्जवल बरन दीनि बगलन को, कोयल करती निठारी।
संतो करम की गति न्यारी...संतो॥
और नदी पण जल निर्मल कीनी, समुंद्र कर दिनी खारी..
संतो कर्म की गति न्यारी...संतो॥
मुर्ख को तुम राज दीयत हो, पंडित फिरत भिखारी..
संतो कर्म की गति न्यारी.....संतो॥

इन्हीं दिनों मेड़ते से कुँवर जयमल और उनके छोटे पुत्र भँवर मुकुन्द दास मीरा को लेने चित्तौड़ पधारे। दस वर्ष के मुकुन्द दास की वीरता इतनी कि राजपूती गौरव ही देह धारण कर आया हो। दोनों परिवार के विचार विमर्श से रत्नसिंह की छः वर्ष की पुत्री श्यामकुँवर का ब्याह मुकुन्द दास के साथ कर दिया। नयी बहू उसकी धाय माँ और मीरा के साथ नई बहू का सारा समान मेड़ता रवाना हुआ।

मुकुन्द दास ने हुकम दाता वीरमदेव जी को चित्तौड़ का सब वृतान्त सुनाते हुये महाराणा विक्रमादित्य के ओछे स्वभाव के बारे में बताया और कहा, "वह सारा समय भाँड और गवैयो के साथ राग-रंग में डूबे नशा करते हैं। सारे राज्य की बागडोर हिली हुई है। और राणाजी बुवासा और उनकी भक्ति से बहुत नाराज हैं।"

"मेरे फूफासा (भोजराज) कैसे थे बाबोसा?" "क्या कहूँ बेटा! जैसे शांत रस रूप में घुलकर एक हो जाये, जैसे सोने में सुगन्ध मिल जाये। जैसे कर्तव्य और भक्ति मिल जायें, वैसे ही रूप, गुण और वीरता का भंडार था मेरा जवाई। जैसे तेरी बुवासा भक्ति करती है, कोई और होता तो कितने विवाह कर लेता। मेवाड़ के राजकुवंर को बीनणी की क्या कमी थी पर उन्होंने पहले से ही दूसरे विवाह के लिए मना कर दिया था। श्याम कुंभ के पास जो मन्दिर है न, वह तेरे फूफोसा ने ही बुवासा के लिए बनवाया था।"

मीरा इतने बरसों के बाद मेड़ता आई। मायके में न चिन्ता करने वाली माँ थी और न पिता जी। वह कुछ बरस पहले ही युद्ध में मातृभूमि के लिए वीरगति को प्राप्त हो गये थे। मेड़ता में आकर मीरा ने जगत का परिवर्तनशील रूप देखा। जिस महल में उसका बचपन माँ के साथ बीता था उसमें जयमल और उनकी पत्नी रहती है। छोटे-छोटे बालक जवान हो गये थे और जवानों के विवाह और बालक हो गये। दाता हुकम (वीरम देव जी) थोड़े-थोड़े दूदाजी की तरह ही दिखने लगे थे। वैसे ही दूदाजी के पलंग पर विराज कर माला फेरते हुये अपनी काली धोली दाढ़ी को सँवारते पोते पोतियों से बतियाते। मीरा को स्मरण हो आया अपना बचपन - जब पाँच बरस की मीरा आँखों में आँसू भरे पलंग के पास खड़ी पूछ रही है - "बाबोसा! एक बेटी के कितने बींद होते हैं?"

उसकी आँखों में आँसू और होंठों पर हँसी तैर गई। बाबोसा उसके सुघड़ शिल्पी, उन्होंने ही तो गढ़ा था उसे। वे ही तो जगत में उसके पहले और सबसे बड़े अवलम्ब थे। और दूसरे महाराजकुमार (भोजराज), दोनों ही छोड़ गये।

"दाता हुकम! आप तो बाबोसा जैसे दिखने लगे हैं!" मीरा ने स्वयं को संभालते हुये कहा। "अब तो बुढ़ापा आ ही गया है बेटा! चित्तौड़ के क्या हाल सुन रहा हूँ। कहते हैं राणा जी राग-रंग में डूबे रहते हैं। चौकियाँ

भी सब ढीली है।" "बाबोसा! राजमद सब पचा नहीं पाते।" मीरा ने कहा।

वीरमदेव जी ने मीरा को नई नन्हीं बींदनी श्याम कुँवर का विशेष ध्यान रखने का कहा ताकि वह उदास न हो। मीरा बाबोसा को प्रणाम कर निकली तो उसके पग स्वभावतः श्याम कुन्ज की ओर बढ़ चले। मीरा और गिरधर के आने से श्याम कुन्ज फिर से आबाद हो गया था, मानों उसके प्राण ही लौट आये हों। मीरा ने पहले की तरह ही अपने गिरधर के लिए तान छेड़ी....

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी ....

मीरा के आने से मेड़ते में भक्ति की भागीरथी उमड़ पड़ी। मीरा के दर्शन-सत्संग के लिए चित्तौड़ गये, संत-महात्मा लौटकर मेड़ता आने लगे। श्याम कुन्ज की रौनक देखते ही बनती थी। मेड़ते से एक वर्ष के पश्चात मीरा ने चित्तौड़ पधारने के लिए प्रस्थान किया।

चित्तौड़ की सीमा पर मीरा को दिखाई दिए उजड़े हुए गाँव जले हुए खेत, उजड़े हुये खेत और सताये हुये मनुष्य और पशु। ऊपर से सैनिक उन्हें कर के लिए और परेशान कर रहे थे। चारों ओर अराजकता देख मीरा को बहुत दु:ख हुआ। उसने प्रजा को यूँ विवश और दु:खी देख अपने और दासियों के गहने उतरवा कर सैनिकों के दे दिये। मीरा के चित्तौड़ पहुँचते ही क्रोधित होकर राणा उनके महल में पहुँच बरस पड़ा - "आज अर्ज कर रहा हूँ कि मुझे मेरा काम करने दें। अब कभी बीच में न पड़ियेगा। नहीं तो मुझसे बुरा कोई न होगा। चारों ओर बदनामी हो रही है कि मेवाड़ की कुवंरानी बाबाओं की भीड़ में नाचती है। सुन-सुन कर हमारे कान पक गये, पर आपको क्या चिन्ता ?"

एक भक्त को अपने ठाकुर जी से जुड़ी हर बात प्रिय लगती है यहाँ तक की इस भक्ति के सम्बन्ध से मिली बदनामी भी वह मधुर अमृत की तरह स्वीकार कर लेता है। शान्त, अविचलित, धीर, गम्भीर समुद्र की सी मुखमुद्रा धारण किए, मीरा ने अपना सदा का अवलम्बन तानपुरा उठाया और गाने लगी ....

या बदनामी लागे मीठी हो हिन्दूपति राणा।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर,

चढ़ गयो रंग मजीठी हो हिंदूपति राणा॥
(मजीठी - पक्का रंग, जिसके ऊपर कोई और रंग न चढ़ सके)

महाराणा का क्रोध मीरा के लिए षडयन्त्र के जाल बुनने लगा। एक दिन उदयकुँवर बाईसा ने आकर मीरा से कहा, "राणाजी ने आपकी सेवा में यह दासियाँ भेजी हैं।" "बाईसा! मेरी क्या सेवा है? मेरे पास तो एक ही दो पर्याप्त हैं।" मीरा ने हँस कर कहा। "चलो लालजीसा ने भेजी है तो छोड़ पधारो।"

दस बारह दिन बाद मिथुला की सारी देह में दाह उत्पन्न हो गया। वैद्यजी आये और उन्होंने कहा कि छोरी बचेगी नहीं। जाने-अन्जाने में पेट में विष उतर गया है। उस दिन मीरा मन्दिर में नहीं पधारी। रसोई बंद रही। दासियों के साथ समवेत स्वर में कीर्तन के बोलों से महल गूँजता रहा। मिथुला का सिर गोद में लेकर मीरा गाने लगी-

हरि मेरे जीवन प्राण अधार।
और आसरो नाहीं तुम बिन तीनों लोक मँझार॥
तुम बिन मोहि कछु न सुहावै निरख्यो सब संसार।
मीरा कहे मैं दासी रावरी दीजो मती बिसार॥

"बाईसा हुकम!" मिथुला ने टूटते स्वर में कहा, "आशीर्वाद दीजिये कि जन्म-जन्मान्तर आपके चरणों की सेवा प्राप्त हो।" "मिथुला! तू भाग्यवान है।" मीरा ने उसके सिर पर हाथ फैरते हुये कहा। "प्रभु तुझे अपनी सेवा में बुला रहे हैं। उनका ध्यान कर, मन में उनके नाम का जप कर। दूसरी ओर से मन हटा ले। जाते समय यात्रा का लक्ष्य ही ध्यान में रहना चाहिए, अन्यथा यात्रा निष्फल होती है।" मीरा ने मिथुला के मुख में चरणामृत डाला।

"बाईसा हुकम! देह में बहुत जलन हो रही है। ध्यान टूट-टूट जाता है।" "पीड़ा देह की है मिथुला! तू तो प्रभु की दासी है। अपना स्वरूप पहचान। पीड़ा की क्या मजाल है तेरे पास पहुँचने की? देह की पीड़ा आत्मा को स्पर्श नहीं करती पगली! देख, ध्यान से सुन, मैं पद गाती हूँ, तू इसके अनुसार प्रभु की छवि का चिन्तन करने का प्रयास कर.........

जब सों मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पर्यो माई।

तब तें लोक - परलोक कछु न सोहाई॥
मोरन की चँद्रकला सीस मुकुट सोहे।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहे॥
कुण्डल की झलक अलक कपोलन पै छाई।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवन में टोना।
खंजन अरू मधुप मीन भूले मृग छौना॥
सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरें रूप अति विसेषा॥
अधर बिम्ब अरूण नैन मधुर मंद हाँसी।
दसन दमक दाड़िम दुति चमके चपला सी॥
छुद्र घंटि किंकणी अनूप धुनि सुहाई।
गिरधर के अंग - अंग मीरा बलि जाई॥

मिथुला ने श्री कृष्ण का नाम ले देह त्याग दी। मिथुला के यूँ जाने से चम्पा चमेली को ज्ञात हो गया था कि आने वाली दासियाँ कैसी हैं। उन्होंने मिलकर मन्त्रणा कर सतर्कता से अपनी स्वामिनी के सारे कार्य स्वयं ही बाँट लिये। पर फिर भी आये दिन कुछ न कुछ राणा की साजिश से घट ही जाता।

मीरा की प्रेम-भक्ति, भजन-वन्दन की प्रसिद्धि फैलती जा रही थी। महाराणा विक्रमादित्य ने बहुत प्रयत्न किया कि उनका सत्संग छूट जाये, परन्तु पानी के बहाव को और मनुष्य के उत्साह को कौन रोक पाता है। सारंगपुर के नवाब ने मीरा की ख्याति सुनी तो वह अपने मन को रोक नहीं पाया। अतः वह वेश बदल कर अपने वजीर के साथ वह मीरा के दर्शन करने के लिए हाजिर हुआ।

दोनों वेश बदल कर घोड़े पर आये और मन्दिर में आकर साधु-सन्तों के पीछे बैठ गये। मीरा मन्दिर की वेदी के समक्ष बाँयी ओर अपनी दासियों के साथ विराजित थीं। घूँघट न होते हुये भी सिर के पल्लू से उसने मस्तक तक स्वयं को ढक रखा था। चम्पा और अन्य कई साधु लिखने की सामग्री और पोथी लेकर बैठे हुए थे। पर्दा खुलते ही सब लोग उठ खड़े हुये।

"बोल गिरधरलाल की जय!" "साँवरिया सेठ की जय!"

मीरा के तानपुरा उठाते ही चम्पा के साथ-ही-साथ कइयों की कलमें कागज पर चलने लगीं। मधुर राग-स्वर की मोहिनी ने सबके मनों को बाँध लिया। भावावेग से मीरा की बड़ी-बड़ी आँखें मुँद गईं। शांति कैसी होती है, यह तो ऐसे सात्विक वातावरण में बैठे बहुत लोगों ने पहली बार ही जाना। शाह के ह्रदय में तो सुख और शांति का समुद्र जैसे हिलोरें लेने लगा। यह उसके लिये एक आलौकिक अनुभव था।

मैं तो साँवरे के रंग राची.........॥
साजि सिंगार बाँध पग घुँघरू, लोक लाज तजि नाचि रे........॥
गई कुमति, लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची।
गाये गाये हरि के गुण निसदिन, काल व्याल सों बाचि रे...........॥
उन बिन सब जग खारो लागत, और बाट सब बाँचि रे।
मीरा श्री गिरधरन लाल की, भकति रसीली जाँचि रे. . . . . . ॥
मैं तो साँवरे के संग राची........॥

मीरा के ह्रदय का हर्ष फूट पड़ा था। उसकी आँखो से झरते आँसू तानपुरे पर गिर मोतियों की तरह चमक रहे थे। रागिनी धीमी होती ठहर गईं। सभी के मन धुले हुये दर्पण की तरह स्वच्छ उजले हो चमक उठे। भजन पूरा होने पर भी उसकी आँखें न उघड़ी। शाह प्रेम भक्ति का यह स्वरूप देख असमंजस में था। वह उस प्रेम की ऊँचाईयों को मापने का प्रयत्न कर रहा था जिसमें खुदा के लिये यूँ झर-झर आँसू झरते हैं।

मीरा का गान विश्रमित हुआ तो एक साधु ने गदगद कण्ठ से कहा, "थोड़ी कृपा और हो जाये।" "अब आप ही कृपा करें बाबा! प्रभु के रूप-गुणों का बखान कर प्यासे प्राणों की तृषा को शांत करने की कृपा हो!" मीरा ने विनम्रता से कहा। "यह तृषा कहाँ शांत होती है?" दूसरे संत बोले - "यह तो जितनी बढ़े और दावानल का रूप ले ले, इसी में लाभ है। आप ही श्री श्यामसुन्दर के रूप माधुरी का पद सुनाईये।"

मीरा ने तानपुरा उठा फिर तान छेड़ी। समय एकबार फिर मधुर रागिनी की झंकार से बँध गया ....

बृज को बिहारी म्हाँरे हिवड़े बस्यो छे॥

कटि पर लाल काछनी काछे, हीरा मोती वालो मुकुट धरयो छे॥
गहि रह्यो डाल कदम की ठाड़ो, मोहन मो तन हेरि हँस्यो छे॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, निरखि दृगन में नीर भरयो छे॥

भजन पूरा होने के पश्चात भी कुछ देर तक वातावरण में आनन्दाधिक से सन्नाटा रहा। फिर मीरा ही ने एक संत की ओर देखकर कहा, "आप कुछ फरमाईये कि सब लोग लाभान्वित हो।"

तो किसी ने जिज्ञासा की - "गुरू कौन? कहाँ मिलें? कैसे मिलें?" संत कहने लगे, "सबसे पहले तो यह समझें कि गुरु का स्वरूप क्या है? परम गुरु शिव ही हैं। हम गुरु को देह रूप में भले देखते हों, पर उसमें जो गुरूतत्व है वह शिव ही है। यह ठीक वैसे ही है जैसे शिवलिंग में शिव हैं। हम पूजा अर्चना शिवलिंग की करते हैं, किन्तु उस पूजा को स्वीकार करनेवाले शिव स्वयं हैं, और वही हमारा कल्याण करते हैं। गुरु की पाञ्चभौतिक देह, पूजा-भक्ति-श्रद्धा का माध्यम है किन्तु उपदेश देने वाले या प्रसन्न-रूष्ट होने वाले शिव ही हैं।"

"अब प्रश्न यह है कि गुरु कैसे मिलें? शिव सर्वत्र हैं। यदि सचमुच में आपको आवश्यकता है, आतुरता है, तो वह किसी भी स्वरूप में मिलेंगे ही, इसमें सन्देह नहीं। अब घर बैठे मिले या, खोज से? गुरु की आवश्यकता होने पर वे चाहे भी तो चैन से बैठ नहीं पायेंगे-वे अपनी समझ से अपने क्षेत्र में खोज करेंगे और इसमें भटक भी सकते हैं। किन्तु खोज अगर सच्ची है तो गुरु अवश्य मिलेंगे। जो खोज नहीं कर सकते उनके लिए प्रार्थना और प्रतीक्षा ही अवलम्ब है। उन्हें वह स्वयं उपलब्ध होंगे, किस रूप में होगें, कहा नहीं जा सकता, पर उनका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा।"

"अब कैसे ज्ञात हो कि ये संत हैं, गुरु हैं? जिनके सानिध्य-सामीप्य से अपने इष्ट की ह्रदय में स्वयं स्फूर्ति हो, वह संत है। और भगवन्नाम सुनकर जिसका ह्रदय द्रवित हो जाये, वह है साधक। यह आवश्यक है कि अपनी रूचि का इष्ट और अधिकार के अनुरूप गुरु हो, अन्यथा लाभ होना कठिन है।" संत ने जिज्ञासा अनुसार सब प्रश्नों का उत्तर देकर कितने ही और पहलुओं पर प्रकाश डालते हुये कहा।

इतना आलौकिक वातावरण, भावभक्तिपूर्ण संगीत और फिर ज्ञान

से भरी कथा-वार्ता श्रवण कर नवाब का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। उसके लिए यह अनुभव नया था। उसने अपना आप संभाला और धीरे-धीरे मीरा के सम्मुख जाकर हाथ जोड़कर गदगद कण्ठ से बोला, "हुनर (कला), नूर (तेज) और उसके ऊपर खुदाई मुहब्बत यह सब एक साथ नहीं मिलते और न ही एक जिंदगी की बख्शीश (एक जन्म का फल) हो सकते हैं। आज आपका दीदार करके और खुदा का ऐसा करिश्मा देखकर यह नाचीज सुर्खरू हुआ। अपने खुदा के लिये इस नाचीज की छोटी सी भेंट कबूल करके मुझ पर एहसान फरमाईये।" उसने जेब से हीरों का हार निकाला और अंजलि में लेकर नीचे झुका।

"ये जैसे मेरे हैं, वैसे ही आपके भी हैं, किन्तु ये शुद्ध मन के निश्छल भावों के भूखे हैं। यह प्रजा का धन आप गरीबों में सेवा में लगाये। इन्हें धन नहीं, केवल भक्ति चाहिए।" मीरा ने कहा। "पर दिल की बात किसी न किसी चीज के जरिये ही तो रोशन होती है। मेहरबानी होगी आपकी!" कहते हुए उसने माला धरती पर रख दी और आँसू पौंछते हुये वह मन्दिर से बाहर निकल आया।

नवाब और वजीर दोनों बाहर आ घोड़े ले अपनी सरहद की तरफ रवाना हुये। वजीर ने कहा, "आपने ठीक नहीं किया जहाँपनाह! आपने वहाँ बोलकर और वह तोहफा नजर कर एक तरह से खुद को रोशन ही कर दिया। आपको भूलना न चाहिए था कि हम दुश्मन के इलाके में हैं।" "ठीक कहते हो खान! मैं अपने आप को जब्त न कर सका। ओह, मैं तो अभी तक सोच रहा हूँ कि दुनिया का कोई कलावंत ऐसा भी गा सकता है? लेकिन गायेगा भी कैसे? वह सब लोगों को खुश करने के लिए गाते हैं और यह मल्लिका खुदा के लिए गाती है। सच सब कुछ बेनजीर है खान! मेरा यह सफर कामयाब रहा। बड़े खुशनसीब हैं यह चित्तौड़ के बाशिन्दे जिन्हें ऐसी मल्लिका नसीब हुई। अगर अब राजपूत आ भी जायें और मैं मारा भी जाऊं तो मुझे अफसोस न होगा।"

हीरों के हार और नवाब की बोली ने मन्दिर में बैठे लोगों में थोड़ी खलबली मचा दी कि आने वाले मुसलमान थे। मीरा के कहा, "सबको एक ही भगवान ने बनाया है और बेटे के आने से बाप का घर भृष्ट नहीं होता।" पर यह खबर महाराणा तक पहुँचने में देर न लगी। महाराणा का क्रोध सातवें आसमान पर था। वह उदयकुँवर के पास पहुँचा और क्रोध

से तमतमाते हुये उसने सारी बात बतलाई -"जीजा ! आप सोचो, सारंगपुर के नवाब ने मन्दिर में बैठकर भाभी म्हाँरा के भजन भी सुने और बातचीत भी की। उसने हीरे की कण्ठी भी भेंट की।"

उदयकुँवर ने भय और आश्चर्य से भाई को देखा। "बहुत सबर कर लिया। अब तो या मैं रहूँगा या फिर मेड़तणीजीसा रहेंगी। इन्होंने तो हमारी पाग ही उछाल दी है। पहले तो बाबा और महात्मा ही आते थे, अब तो विधर्मियों ने भी रास्ता देख लिया। अरे हीरे, मोती ही चाहिए थे तो मुझसे कह देतीं। कहीं बोलने योग्य नहीं छोड़ा इन कुलक्षिणी ने तो। जब मैं घर में ही अनुशासन नहीं रख पा रहा तो राज्य कैसे चलाऊँगा?"

महाराणा ने राजवैद्य को बुलाया और दयाराम पंडा के हाथ सोने के कटोरे में जगन्नाथ जी का चरणामृत कह मीरा के लिए भिजवाया। दयाराम के पीछे-पीछे उदयकुँवर बाईसा भी चली। मीरा प्रभु के आगे भोग पधरा रही थीं। दयाराम ने कटोरा सम्मुख रख काँपते स्वर से कहा, "राणाजी ने श्री जगन्नाथजी का चरणामृत भिजवाया है आपके लिये।"

"अहा! आज तो सोने का सूर्य उदय हुआ पंडाजी! लालजीसा ने बड़ी कृपा की। यह कहते हुये मीरा ने कटोरा उठा लिया और उसे प्रभु के चरणों में रखते हुये बोली, "ऐसी कृपा करो प्रभु कि राणाजी को सुमति आये।" फिर पंडाजी से पूछा, "कौन आया है जगन्नाथपुरी से?" "मैं नहीं जानता सरकार! कोई पंडा या यात्री आये होगें।"

चम्पा, गोमती आदि दासियाँ थोड़ी दूर खड़ी हुई भय और लाचारी से देख रही थी इन चरणामृत लानेवालों को और कभी अपनी स्वामिनी के भोलेपन को। उनकी आँखें भर-भर आतीं, "क्यों सताते हैं इस देवी को यह राक्षस ? क्या चाहते हैं ?" उदा भी भाभी का वह शांत-स्वरूप, निश्छल मुस्कुराहट, दर्पण की तरह उज्ज्वल ह्रदय और भगवान पर अथाह विश्वास देख आश्चर्य चकित थी।

मीरा ने तानपुरा उठाया और तारों पर उँगली फेरते हुये उसने आँखें बंद कर लीं........

तुम को शरणागत की लाज।
भाँत भाँत के चीर पुराये पांचाली के काज॥
प्रतिज्ञा तोड़ी भीष्म के आगे चक्र धर्यो यदुराज।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर दीनबन्धु महाराज॥

मीरा की भक्ति और विश्वास देख उदयकुँवर बाईसा के ह्रदय में विचारों का एक उफान सा उमड़ आया। मन में आया - "भाभी म्हाँरा को एक बार भी ध्यान नहीं आया कि महाराणा उनसे कितने रूष्ट हैं? मिथुला की मौत ने उन्हें चेतावनी नहीं दी कि उनकी भी यही दशा होने वाली है? फिर भी कितनी निश्चिंत हैं भगवान के भरोसे ? कहते हैं, भक्त और भगवान दो नहीं होते, ये अभिन्न होते हैं, और इन्हीं भक्त का अनिष्ट करने पर राणाजी तुले है। और मैं, मैं भी तो उन्हीं का साथ दिए जा रही हूँ। यदि भाभी मर जाये तो मुझे क्या मिलने वाला है? केवल पाप ही न? और यदि नहीं मरी तो? भगवान का कोप उतरेगा।"

उदयकुँवर के मन में स्वयं के लिये ग्लानि भर गई, वह सोचने लगी - "यह जन्म तो वृथा ही चला गया। मेरे भाग्य से घर बैठे गंगा आई - और मैं मतिहीन राणाजी का साथ दे भाभीसा का विरोध कर अपने पापों की पोटली भारी करती रही। चेत जा, अभी भी प्रायश्चित कर ले उदा! मानव जीवन अलोना बीता जा रहा है, इसे संवार कर प्रायश्चित कर ले। तू लोहा है उदा! इस पारस का स्पर्श पाकर स्वर्ण बन जायेगी। यदि कपूर उड़ गया तो तू सड़ी खाद की तरह गंधाती रह जायेगी। दाजीराज और बावजी हुकम क्या पागल थे जो इन्हें सब सुविधाएँ देकर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। उस समय राजकार्य भी ठीक से चलता था। और अब सब अस्त-व्यस्त सा हो रहा है। चेत...उदा! अवसर बीतने पर केवल पछतावा ही शेष रह जाता है।"

भजन पूरा हुआ और मीरा ने कटोरा होंठों से लगाया। तभी उदयकुँवर चीख पड़ी - "भाभी म्हाँरा! रूक जाइये।" "क्या हुआ बाईसा?" मीरा ने नेत्र खोलकर पूछा। "यह विष है भाभी म्हाँरा! आप मत आरोगो!" उसने समीप जाकर भाभी का हाथ पकड़ लिया।

"विष?" वह खिलखिला कर हँस पड़ी - "आप जागते हुये भी कोई सपना देख रही हैं क्या? यह तो लालजीसा ने जगन्नाथजी का चरणामृत भेजा है। देखिये न, अभी तो पंडाजी भी मेरे सामने खड़े हैं।"

"मैं कुछ नहीं जानती। यह जहर है, आप मत आरोगो।" उदयकुँवर ने रूँधे हुये कण्ठ से आग्रह किया। "यह क्या फरमाती हैं आप! चरणामृत

न लूँ? लालजीसा को कितने दिनों बाद भगवान और भाभी की याद आई और मैं उनकी सौगात वापिस भेज दूँ? और वो भी चरणामृत? अगर विष था भी, तो अब प्रभु को अर्पण कर वैसे भी चरणामृत बन गया है। आप चिन्ता मत करें बाईसा, मेरे प्रभु की लीला अपार है। जिसे वे जीवित रखना चाहें, उन्हें कौन मार सकता है? आप निश्चिंत रहें।"

दासियाँ भी हैरान थीं। पर मीरा ने देखते-देखते कटोरा उठाया और पलक झपकाते ही खाली कर पंडाजी को लौटा दिया। मीरा ने फिर इकतारा उठाया और एक हाथ में करताल ले खड़ी हो गई। चम्पा! घुँघरू ला! आज तो प्रभु के सम्मुख मैं नाचूँगी।" चम्पा ने चरणों में घुँघरू बाँधे और मीरा पद भूमि पर छन्न -छन्नाते हुए स्वयं को ताल दे गाने लगी..

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे साँवरिया की आप ही हो गई दासी रे।
लोग कहें मीरा भई बावरी न्यात कहे कुलनासी रे॥
विष को प्यालो राणाजी ने भेज्यो पीवत मीरा हाँसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिलया अविनासी रे॥

मीरा को यूँ नृत्य करते देख दासियाँ आँखों में आँसू भरकर निश्वास छोड़ रही थीं और उदयकुँवर बाईसा के आश्चर्य की सीमा न थी। भजन पूरा होने पर मीरा ने धोक दी। उदयकुँवर उठकर धीरे से बाहर चली गईं।

"बाईसा हुकम! बाईसा हुकम!" दासियाँ उदयकुँवर के जाते ही रोती हुई एक साथ ही अपनी स्वामिनी के चरणों में जा पड़ीं - "यह आपने क्या किया? अब क्या होगा? हम क्या करें?"

"क्या हो गया बावरी! क्यों रो रही हो तुम सब की सब?" मीरा ने चम्पा की पीठ सहलाते हुए कहा। "आपने जहर क्यों आरोग लिया?"

मीरा हँस पड़ी - जहर कब पिया पागल! मैंने तो चरणामृत पिया। विष होता तो मर न जाती अब तक। उठो, चिंता मत करो। भगवान पर विश्वास करना सीखो। प्रह्लाद को तो सांपों से डँसवाया गया, हाथियों के पाँव तले कुचलवाया गया और आग में जलाया गया, पर क्या हुआ? यह जान लो कि मारनेवाले से बचानेवाला बहुत बड़ा है।"

"बाईसा हुकम! हम सब अपने मेड़ते चले जायेंगे।"- चम्पा ने आँसू

ढ़रकाते हुये कहा। "क्यों भला? प्रभु मेड़ते में हैं और चित्तौड़ में नहीं बसते? यह सारी धरती और इसपर बसने वाले जीव भगवान के ही उपजायें हुये हैं। तुम भय त्याग दो। भय और भक्ति साथ नहीं रहते।"

उधर जब राणा को जब पता लगा कि मीरा पर विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ बल्कि वह तो और भक्ति के उत्साह में निमग्न हो नृत्य कर रही है तो वह आश्चर्य चकित रह गया। राणा ने तुरन्त वैद्यजी को बुला भेजा।

वैद्यजी को देखते ही महाराणा उफन पड़े, "तुम तो कहते थे कि इस विष से आधी घड़ी में हाथी मर जायेगा, किन्तु यहाँ तो मनुष्य का रोम भी गर्म न हुआ।"

"यह नहीं हो सकता सरकार! मनुष्य के लिए तो उसकी दो बूँद ही काफी हैं मुझे बताने की कृपा करें हजूर! मैं भी आश्चर्य में हूँ कि ऐसा कौन सा लोहे का मनुष्य है?" वैद्यजी ने कहा। "चुप रह नीच!" राणा ने दाँत पीसते हुए कहा- "मेरा ही दिया खाता है और मुझसे ही चतुराई? जैसे तुझे पता ही नहीं कि भाभी म्हाँरा के लिए यह विष बनवाया था और वह तो आनन्द में नाच गा रही हैं।"

वैद्यजी सत्य सुनकर भीतर तक काँप गये। फिर हिम्मत जुटाकर बोले, "भक्तों का रक्षक तो भगवान हैं अन्नदाता! जहाँ चार हाथवाला रक्षा करने के लिए खड़ा हो, वहाँ दो हाथवालों की क्या बिसात? अन्यथा मनुष्य के लिए तो इस कटोरे में शेष बची ये दो बूँदे ही काफी हैं।"

महाराणा गरज उठा- "मुझे भरमाता है? ये दो बूँदे तू पी और मैं फिर जानूँ कि तेरी बातों में कितनी सच्चाई है?" वैद्यजी बहुत गिड़गिड़ाये, "यह हलाहल है अन्नदाता! मेरे बूढ़े माँ बाप का और छोटे बच्चों का कौन धणी है?" पर राणा ने एक न सुनी। वैद्यजी ने काँपते हाथों से कटोरा उठाया और भगवान से क्षमा याचना करते बोला, "हे नारायण! तुम्हारे भक्त के अनिष्ट में मैंने सहयोग दिया, उसी का दण्ड हाथों-हाथ मिल गया प्रभु! पर मैं अन्जान था। मेरे परिवार पर कृपा दृष्टि बनाये रखना।" उसने कटोरा उठाया, और जैसे ही शेष दो बूँदे जीभ पर टप-टप गिरी, वैद्यजी चक्कर खा गिर गये और आँखें फटी सी रह गईं।

उदयकुँवर बाईसा विक्रमादित्य महाराणा के कक्ष में पीछे खड़ी सब देख रही थीं। दोनों बार विष पीने का दृश्य उसकी आँखों के सामने

घटा। जिस कटोरे भरे जहर से मेड़तणीजी का रोयाँ भी न काँपा, उसी कटोरे की पेंदे में बची दो बूँदो से वैद्यजी मर गये। मीरा की भक्ति का प्रताप और राणाजी की कुबुद्धि दोनों ही उदयकुँवर के सामने आ गईं। वह सोचने लगी - "इस बेचारे को क्यों मारा? किसी कुत्ते या बिल्ली को पिलाकर क्यों नहीं देख लिया। मैंने बहुत बुरा किया जो इस मतिहीन का साथ देती रही।"

महाराणा ने पहले तो समझा कि वैद्य नखरे कर रहा है किन्तु जब गर्दन एक तरफ लुढ़क गई तो उसके मुख से निकला - "अरे! यह क्या सचमुच मर गया?" उसने प्रहरी को वैद्यजी को उठा ले जाने के लिए उनके घर समाचार भेजा।

उदयकुँवर ने धीरे-धीरे अपने महल की ओर पद बढाये। वहाँ पहुँच कर दासी से कहा, "तू कहीं ऐसी जगह जाकर खड़ी हो जा, जहाँ कोई तुझे देख न सके। जब वैद्यजी के घर वाले उन्हें लेकर जाने लगें तो उन्हें कहना कि वैद्यजी को मेड़तणीजी के महल में ले जाओ, वह इन्हें जीवित कर देंगी।" वह स्वयं भी मीरा के महल की ओर चली। "भाभी म्हाँरा! मुझे क्षमा करें, मैंने आपको बहुत दु:ख दिये हैं।" उदा ने सुबकते हुए मीरा की गोद में सिर रख दिया।

"यह न कहिये बाईसा! दु:ख-सुख तो मनुष्य को अपने प्रारब्ध से प्राप्त होता है। मुझे तो कोई दु:ख नहीं हुआ। प्रभु के स्मरण से समय बचे तो दूसरी अलाबला समीप आ पाये।" मीरा ने ननद के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुये कहा। "मुझे भी कुछ बताईये, जिससे जन्म सुधरे।" उदयकुँवर आँसू ढ़रकाती हुई बोली।

"मेरे पास क्या है? कुछ तो बताईये, जिससे मेरा जन्म सुधरे।" उदयकुँवर आँसू ढरकाती हुई बोली। "मेरे पास क्या है बाईसा! बस भगवान का नाम है, सो आप भी लीजिए। प्रभु पर विश्वास रखिये और सभी को भगवान का रूप, कारीगरी या चाकर मानिये। और तो मैं कुछ नहीं जानती। ये संत महात्मा जो कहते हैं, उसे सुनिए और मनन कीजिए। बस आप भगवान के चरणों को विश्वास से पकड़िये, वही सर्वसमर्थ है।"

"मैं किसी को नहीं जानती भाभी म्हाँरा! आप मेरी हैं और मैं आपकी बालक हूँ। मेरे अपराध क्षमा करके मुझे अपना लें। मैंने भगवान

को नहीं देखा कभी। मैं तो आपको जानती हूँ बस।" उदयकुँवर ने रोते हुए कहा। "जब आपकी सगाई हुई, पीठी चढ़ी, तब आपने जवाँईसा को देखा था क्या? पर बिना देखे ही आपको उनपर विश्वास और प्रेम था न?" मीरा ने समझाते हुए कहा, 'जैसे बिना देखे ही बींद पर विश्वास-प्रेम होता है, उसी तरह विश्वास करने पर भगवान भी मिलते है।"

"किन्तु बींद को तो बहुत से लोगों ने देखा होता है और बात भी की होती है। इसी से बींद पर विश्वास होता हैं पर भगवान को किसने देखा है?" "यदि मैं कहूँ कि मैंने देखा है तो? मैंने ही क्या, बहुतों ने देखा है उन्हें। अन्तर केवल इतना है कि कोई-कोई ही पहचानते हैं, सब नहीं पहचानते।" उदयकुँवर मीरा की बातें सुन और उनका अविचलित विश्वास अनुभव कर स्तब्ध रह गई।

मीरा ने तानपुरा ले आलाप ले तान छेड़ी ....

म्हाँरा तो गिरधर गोपाल..........।

उदयकुँवर बाईसा मीरा से भक्ति ज्ञान की बातें श्रवण कर रही थी, उसकी आँखों से आँसुओं की धारायें बहकर उसके हृदय का कल्मष धो रही थीं। तभी कुछ लोगों के रोने की आवाज से उनका ध्यान बँटा। मीरा ने कहा, "अरी गोमती! जरा देख तो! क्या कष्ट है?"

"कुछ नहीं भाभी म्हाँरा! आपको विष से न मरते देखकर राणा ने समझा कि वैद्यजी ने दगा किया है। उन्होंने उस प्याले में बची विष की दो बूँदे वैद्यजी को पिला दीं। वे मर गये हैं। लगता है उनका शव लेकर घर के लोग जा रहे होंगे।" उदा ने कहा।

"वैद्यजी को महाराणा जी ने जहर पिला दिया। उनका शव लेकर घरवाले आपके पास अर्ज करने आये हैं।" इधर से गोमती ने भी आकर निवेदन किया। "हे मेरे प्रभु! यह क्या हुआ? मेरे कारण ब्राह्मण की मृत्यु? कितने लोगों का अवलम्ब टूटा? इससे तो मेरी ही मृत्यु श्रेयस्कर थी।" मीरा ने भारी मन से निश्वास छोड़ते हुए कहा।

मीरा सोच ही रही थी कि वैद्यजी के घरवाले उनका शव लेकर आ पहुँचे। वैद्य जी की माँ आते ही मीरा के चरणों में गिर पड़ीं - "हे अन्नदाता! हम अनाथों को सनाथ कीजिए। हमें कौन कमा कर खिलायेगा ?

महाराणा जी ने हमें क्यों जहर नहीं पिला दिया? हम आपकी शरण में हैं! या तो हमें इनका जीवन दान दीजिए अन्यथा हम भी मर जायेंगे।"

वृद्ध माँ के आँसू देख मीरा की आँखें भी भर आईं। कैसी भी स्थिति हो, उसे तो बस गिरधर का ही आश्रय था और सत्य में जिसको उसका आश्रय हो उसे किसी और ठौर की आवश्यकता भी क्या? मीरा ने सबको धीरज रखने को कहा और इकतारा उठाया ....

हरि तुम हरो जन की पीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुरत बढ़ायो चीर॥
भक्त कारन रूप नरहरि धरयो आप सरीर।
हिरणकस्यप मार लीनो धरयो नाहिन धीर॥
बूढ़तो गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।
दासी मीरा लाल गिरधर चरनकमल पर सीर॥

चार घड़ी तक राग का अमृत बरसता रहा। मीरा की बन्द आँखों से आँसू झरते रहे। सब लोग मीरा की करूण पुकार में स्वयं के भाव जोड़ रहे थे। किसी को ज्ञात ही न हुआ कि वैद्यजी कब उठकर बैठ गये और वह भी तन-मन की सुध-भूल कर इस अमृत सागर में डूब गये हैं। भजन पूरा हुआ तो सबने वैद्यजी को बैठा हुआ देखा। उनके मुख से अपने आप हर्ष का अस्पष्ट स्वर फूट पड़ा। उन सभी ने धरती पर सिर टेककर मीरा की और गिरधर गोपाल की वन्दना की। चम्पा ने सबको चरणामृत और प्रसाद दिया। वैद्यजी की पत्नी ने मीरा के चरण पकड़ लिये। उसके मन के भावों को वाणी नहीं मिल रही थी, सो भाव ही आँसुओं की धारा बनकर मीरा के चरण धोने लगे।

"आप यह क्या करती हैं? आप ब्राह्मण है। मुझे दोष लगता है इससे। उठिये! प्रभु ने आपका मनोरथ पूर्ण किया है। इसमें मेरा क्या लगा? भगवान का यश गाईये।" सबको स्नेह से भोजन करा और बालकों को दुलार करके विदा किया।

डयोढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते सबके हर्ष को मानो वाणी मिल गई- "मेड़तणीजीसा की जय! मीराबाई की जय! भक्त और भगवान की जय!" "यह क्या मंगला! दौड़ कर जा तो उन्हें कह कि केवल भगवान की जय बोलें। यह क्या कर रहे हैं सब?" "बोलने दीजिए भाभी म्हाँरा! उनके

अन्तर के सुख और भीतर के हर्ष को प्रकट होने दीजिए। लोगों ने, राजपरिवार ने अब तक यही जाना है कि मेड़तणीजी कुलक्षिणी है। इनके आने से सब मर-खुटे हैं। उन्हें जानने दीजिये कि मेड़तणीजी जी तो गंगा की धारा हैं, जो इस कुल का और दु:खी प्राणियों का उद्धार करने आई हैं।" उदयकुँवर बाईसा ने कहा।

"वैद्यराज जी जीवित हो गये हुकम !" दीवान ने महाराणा से आकर निवेदन किया। "हैं क्या ?" महाराणा चौंक पड़े। फिर संभल कर बोले, "वह तो मरा ही न था। यों ही मरने का बहाना किए पड़ा था डर के मारे। मुझे ही क्रोध आ गया था, सो प्रहरी को उसे आँखों के सामने से हटाने को कह दिया। भूल अपनी ही थी कि मुझे ही उसे अच्छे से देखकर उसे भेजना चाहिए था। वह विष था ही नहीं - विष होता तो दोनों कैसे जीवित रह पाते?"

सामन्त और उमराव मीरा को विष देने की बात से क्रोधित हो महाराणा को समझाने आये तो उल्टा विक्रमादित्य उनसे ही उलझ गया - "वह विष था ही नहीं, वो तो मैने किसी कारणवश मैंने वैद्यजी को डाँटा तो वह भय के मारे अचेत हो गये। घर के लोग उठाकर भाभीसा के पास ले आये तो वे भजन गा रही थीं। भजन पूरा हुआ तब तक उनकी चेतना लौट आ गई। और बाहर यह बात फैला दी कि मैंने वैद्य जी को मार डाला और भाभी जी ने उनको जीवित कर दिया।"

महाराणा के स्वभाव में कोई अन्तर न था। उनको तो यह लग रहा था मानो वह एक स्त्री से हार रहे हों, जैसे उनका सम्मान दाँव पर लगा हो। वे एकान्त में भी बैठे कुछ न कुछ मीरा को मारने के षडयन्त्र बनाते रहते। एक दिन रानी हाँडी जी ने भी बेटे को समझाने का प्रयास किया, "मीरा आपकी माँ के बराबर बड़ी भाभी हैं, फिर उनकी भक्ति का भी प्रताप है। देखिए, सम्मान तो शत्रु का भी करना चाहिए। जिस राजगद्दी पर आप विराजमान हैं, उसका और अपने पूर्वजों का सम्मान करें। ओछे लोगों की संगति छोड़ दीजिये। संग का रंग अन्जाने में ही लग जाता है। दारू, भाँग, अफीम और धतूरे का सेवन करने से जब नशा चढ़ता है, तब मनुष्य को मालूम हो जाता है कि नशा आ रहा है, किन्तु संग का नशा तो इन्सान को गाफिल करके चढ़ता है। इसलिए बेटा, हमारे यहाँ तो कहावत

है कि "काले के साथ सफेद को बाँधे, वह रंग चाहे न ले पर लक्षण तो लेगा ही।" आप सामन्तो की सलाह से राज्य पर ध्यान दें। आप मीरा को नजरअन्दाज करें, मानो वह जगत में है ही नहीं।"

उधर मीरा की दासियाँ रोती और सोचतीं, "क्या हमारे अन्नदाता (वीरमदेवजी) जानते होंगे कि बड़े घरों में ऐसे मारने के षडयन्त्र होते होंगे। ऐसी सीधी, सरल आत्मा को भला कोई सताता है? बस भक्ति छोड़ना उनके बस का काम नहीं। भगवान के अतिरिक्त उन्हें कुछ सूझता ही नहीं, मनुष्य का बुरा सोचने का उनके पास समय कहाँ? पर इनकी भक्ति के बारे में जानते हुये यह सम्बन्ध स्वीकार किया था अब उसी भक्ति को छुड़वाने का प्रयास क्यों? छोटे मुँह बड़ी बात है पर, चित्तौड़ों के भाग्य से ऐसा संयोग बना था कि घर बैठे सबका उद्धार हो जाता, पर दुर्भाग्य ऐसा जागा कि कहा नहीं जाता। दूर-दूर से लोग सुनकर दौड़े दर्शन को आ रहे हैं और यहाँ आँखों देखी बात का भी इन्हें विश्वास नहीं हो रहा। भगवान क्या करेंगे, सो तो भगवान ही जानें, किन्तु इतिहास सिसौदियों को क्षमा नहीं करेगा।"

इधर मीरा भक्ति भाव मे सब बातों से अन्जान बहती जा रही थी। भगवा वस्त्र और तुलसी माला धारण कर वह सत्संग में अबाध रूप से रम गई। जब मन्दिर में भजन होते तो वह देह-भान भूल कर नाचने गाने लगती ....

मैं तो साँवरे के रंग राची......

राजमाता पुँवार जी मीरा को दी जाने वाली यातनाओं की भनक पड़ रही थी। उन्हें मन हुआ कि एक बार स्वयं जाकर मीरा को मिल कर कहें कि वह पीहर चली जायें।

मीरा के महल राजमाता पधारीं और सस्नेह कहने लगीं "बेटी! तुम्हें देखती हूँ तो आश्चर्य होता है कि तुम्हें राणाजी ने दु:ख देने में कोई कसर नहीं रखी, पर एक तुम्हारा ही धैर्य और भक्ति में अटूट विश्वास है जो तुम अपने पथ पर प्रेम निष्ठा से बढ़ती जा रही हो। बस अपने गिरिधर की सेवा में रहते हुये न तो अपने कष्टों का ही भान है और न ही भूख प्यास का।"

मीरा ने सासूमाँ को आदर देते हुये कहा, "बहुत बार किसी काम में

लगे होने पर मनुष्य को चोट लग जाती है हुकम! किन्तु मन काम में लगे होने के कारण उस पीड़ा का ज्ञान उसे होता ही नहीं। बाद में चोट का स्थान देखकर वह विचार करता है कि यह चोट उसे कब और कहाँ लगी, पर स्मरण नहीं आता क्योंकि जब चोट लगी, तब उसका मन पूर्णतः दूसरी ओर लगा था। इसी प्रकार मन को देह की ओर से हटाकर दूसरी ओर लगा लिया जाय तो देह के साथ क्या हो रहा है, यह हमें तनिक भी ज्ञात नहीं होगा।"

"पर बीनणी! राणा जी नित्य ही तुम्हें मारने के लिए प्रयास करते ही रहते हैं। किसी दिन सचमुच ही कर गुजरेंगे। सुन-सुन करके जी जलता है, पर क्या करूँ? रानी हाँडी जी के अतिरिक्त तो यहाँ हमारी किसी की चलती नहीं। मैं तो सोचती हूँ कि तुम पीहर चली जाओ" राजमाता ने कहा।

"हम कहीं भी जायें, कुछ भी करें, अपना प्रारब्ध तो कहीं भी भोगना पड़ेगा हुकम! दु:ख देनेवाले को ही पहले दुख सताता है, क्रोध करने वाले को ही पहले क्रोध जलाता है, क्योंकि जितनी पीड़ा वह दूसरे को देना चाहता है, उतनी वही पीड़ा उसे स्वयं को भोगनी पड़ती है।" मीरा ने हँसते हुये कहा- "अगर मुझ जैसे को कोई पीड़ा दे और मैं उसे स्वीकार भी न करूँ तो? आप सत्य मानिये, मुझे राणाजी से किसी तरह का रोष नहीं। आप चिंता न करें। प्रभु की इच्छा के बिना कोई भी कुछ नहीं कर सकता और प्रभु की प्रसन्नता में मैं प्रसन्न हूँ।"

"इतना विश्वास, इतना धैर्य तुममें कहाँ से आया बीनणी?" "इसमें मेरा कुछ भी नहीं है हुकम! यह तो संतों की कृपा है। सत्संग ने ही मुझे सिखाया है कि प्रभु ही जीव के सबसे निकट और घनिष्ट आत्मीय है। वही सबसे बड़ी सत्ता हैं। तब प्रभु के होते भय का स्थान कहाँ? प्रभु के होते किसी की आवश्यकता कहाँ? फिर हुकम! संतों की चरण रज में, उनकी वाणी और कृपा में बहुत शक्ति है हुकम।"

"तुम सत्य कहती हो बीनणी! तभी तो तुम इतने दु:ख झेलकर भी सत्संग नहीं छोड़ती। पर एक बात मुझे समझ नहीं आती, भगवान के घर में यह कैसा अंधेर है कि निरपराध मनुष्य तो अन्याय की घानी में पिलते रहते हैं और अपराधी लोग मौज करते रहते हैं। तुम नहीं जानती, यह

हाँडीजी राजनीति में बहुत पटु हैं। हमारे लिए क्या इसने कम अंगारे बिछाये सारी उम्र और अब विक्रमादित्य को भी तुम्हें परेशान किए बिना शांति नहीं।"

"आप मेरी चिन्ता न करें हुकम! बीती बातों को याद करके दु:खी होने में क्या लाभ है? वे तो चली गईं, अब तो लौटेंगी नहीं। आने वाली भी अपने बस में नहीं, फिर उन्हें सोचकर क्यों चिन्तित होना? अभी जो समय है, उसका ही उचित ढंग से उपयोग करें दूसरों के दोषों से हमें क्या? उनका घड़ा भरेगा तो फूट भी जायेगा। न्याय किसी का सगा नहीं है हुकम! भगवान सबके साक्षी हैं। समय पाकर ही कर्मों की खेती फल देती है। अपने दु:ख, अपने ही कर्मों के फल हैं। दु:ख-सुख कोई वस्तु नहीं जो हमें कोई दे सके। सभी अपनी ही कमाई खाते हैं, दूसरे तो केवल निमित्त हैं।" मीरा ने सासूमाँ के आँसू पौंछ, उन्हें ज्ञान की बातें समझा कर सस्नेह विदा किया।

श्रावण की फुहार तप्त धरती को भिगो मिट्टी की सौंधी सुगन्ध हवा में बिखेर रही है। रात्रि के बढ़ने के साथसाथ वर्षा की झड़ी भी बढ़ने लगी। भक्तों के लिए कोई ऋतु की सुगन्ध हो या उत्सव का उत्साह, उनके लिए तो वह सब प्रियालाल जी की लीलाओं से जुड़ा रहता है। मीरा बाहर आंगन में आ भीगने लगी। दासियों ने बहुत प्रयत्न किया कि वे महल में पधार जाये, किन्तु भाव तरंगो पर बहती हुई वह प्रलाप करने लगी।

"सखी! मैं अपनी सखियों का संदेश पाकर श्यामसुंदर को ढूँढते हुये वन की ओर निकल गयी। जानती हो, वहाँ क्या देखा? एक हाथ में वंशी और दूसरे हाथ से सघन तमाल की शाखा थामें हुये श्यामसुन्दर मानों किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अहा......... कैसी छटा है........... क्या कहूँ .....! ऊपर गगन में श्याम मेघ उमड़ रहे थे। उनमें रह-रहकर दामिनी दमक जाती थी। पवन के वेग से उनका पीताम्बर फहरा रहा था। हे सखी! मैं उस रूप का मैं कैसे वर्णन करूँ? कहाँ से आरम्भ करूँ? शिखीपिच्छ (मोर के पंख) से या अरूण चारू चरण से? वह प्रलम्ब बाहु (घुटनों तक लम्बी भुजाएँ), वह विशाल वक्ष, वह सुंदर ग्रीवा, वह बिम्बाधर, वह नाहर सी कटि (शेर सी कटि), दृष्टि जहाँ जाती है वहीं

उलझ कर रह जाती है। उनके सघन घुँघराले केश पवन के वेग से दौड़ दौड़ करके कुण्डलों में उलझ जाते है।"

"आज एक और आश्चर्य देखा, मानों घन-दामिनी तीन ठौर पर साथ खेल रहे हों। गगन में बादल और बिजली, धरा पर घनश्याम और पीताम्बर तथा प्रियतम के मुख मण्डल में घनकृष्ण कुंतल (घुँघराली अलकावलि) और स्वर्ण कुण्डल।"

"मैं उन्हें विशेष आश्चर्य से देख रही थी कि उनके अधरों पर मुस्कान खेल गई। इधर-उधर देखते हुए उनके कमल की पंखुड़ी से दीर्घ नेत्र मुझ पर आ ठहरे। रक्तिम डोरों से सजे वे नयन, वह चितवन, क्या कहूँ? सृष्टि में ऐसी कौन सी कुमारी होगी जो इन्हें देख स्वयं को न भूल जाये। इस रूप के सागर को अक्षरों की सीमा में कोई कैसे बाँधे?"

"इधर दुरन्त लज्जा ने कौन जाने कब का बैर याद किया कि नेत्रों में जल भर आया, पलकें मन-मन भर की होकर झुक गईं। मैं अभी स्वयं को सँभाल भी नहीं पाई थी कि श्यामसुन्दर के नुपूर, कंकण और करघनी की मधुर झंकार से मैं चौंक गई। अहो, कैसी मूर्ख हूँ मैं? मैं तो श्री जू का संदेश लेकर आई थी। श्री श्यामसुन्दर को झूलन के लिये बुलाने के लिये और यहाँ अपने ही झमेले में ही फँस गई। एकाएक मैं धीरे से धीमे स्वर में प्रियाजी का संकेत समझाते हुये गाने लगी......

म्हाँरे हिंदे हिंदण हालो बिहारी, हिरदै नेह हिलोर जी।

श्रावण की रात्रि में, बाहर आंगन में खड़ी मीरा भीग रही थी। अपनी भाव तरंगों में बहते-बहते वह लीला स्मृति में खो गई। वह श्री राधारानी का श्री श्यामसुन्दर के लिये झूलन का संदेश लेकर आई थी पर दूर से ही श्री कृष्ण का रूप माधुर्य दर्शन कर स्वयं की सुध-बुध खो बैठी।

"श्री स्वामिनी जू ने कहा था, "कि हे श्री श्यामसुन्दर! मेरे ह्रदय में आपके संग झूला झूलन की तरंग हिलोर ले रही है। ऐसे में आप कहाँ हो? देखिए न! बरसाना के सारे उपवनों में चारों ओर हरितिमा ही हरितिमा छा रही है। कोयल, पपीहा गा गाकर और मोर नृत्य कर हमें प्रकृति का सौन्दर्य दर्शन के लिये आमन्त्रित कर रहे हैं। हे श्यामसुन्दर! आपके संग से ही मुझे प्रत्येक उत्सव मधुर लगता है। हे राधा के नयनों के चकोर!

आप इतनी भावमय ऋतु में कहाँ हो ? मैं कब से सखियों के संग यहाँ निकुन्ज में आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। प्रियतम के दर्शन के बिना मेरा ह्रदय अतिश य व्याकुल हो रहा है और मेरे तृषित नेत्र अपने चितचोर की कबसे बाट निहार रहे हैं।" यह सब श्री स्वामिनी जू का संदेश कहना था और यहाँ मैं अपने ही झमेले में उलझ गई। एकाएक प्रियाजी का संदेश मीरा गा उठी ....

म्हाँरे हिंदे हिंदण हालो बिहारी, हिरदै नेह हिलोर जी।
बरसाने रा हरिया बाँगा, हरियाली चहुँ ओर जी॥
बाट जोवती कद आसी जी, कद आसी चितचोर जी॥

"क्यों री ! कबकी खड़ी इधर-उधर ताके जा रही है और अब जाकर तुझे स्मरण आया है कि "राधे ने संदेश भिजवाया है - "म्हाँरे हिंदे हिंदण हालो बिहारी" चल ! कहाँ चलना है ?" कहते हुये मेरा हाथ पकड़ कर वे चल पड़े।

"हे सखी ! वहाँ हम सब सखियों ने विभिन्न-विभिन्न रंगों से सुसज्जित कर रेशम की डोर से कदम्ब की डाली पर झूला डाला। उस झूले पर श्री राधागोविन्द विराजित हुये। दोनों तरफ से हम सब सखियाँ सब गीत गाते हुये उन्हें झुलाने लगीं। दोनों हँसते हुये मधुर-मधुर वार्तालाप करते हुये अतिशय आनन्द में निमग्न थे। हम प्रियालाल जी के आनन्द से आनन्दित थे।

सुन्दर फूलों से लदी कदम्ब की डारी पर झूला पड़ा है। मीरा भी अपनी भाव तरंग में अन्य सखियों के संग गाती हुई श्री राधामाधव को झूला झुला रही है। झूलते-झूलते जभी बीच में से श्यामसुन्दर मेरी ओर देख पड़ते तो मैं लज्जा भरी ऊहापोह में गाना भी भूल जाती। थोड़ी देर बाद श्यामसुन्दर झूले से उतर पड़े और किशोरीजू को झूलाने लगे। एक प्रहर हास-परिहास राग-रंग में बीता। इसके पश्चात सखियों के साथ किशोरी जी चली गईं। श्यामसुन्दर भी गायों को एकत्रित करने चले गये।

तब मैं झुरमुट में से निकलकर और झूले पर बैठकर धीरे-धीरे झूलने लगी। नयन और मन प्रियालाल जी की झूलन लीला की पुनरावृति करने में लगे थे। कितना समय बीता, मुझे ध्यान न रहा। मेरा ध्यान बँटा जब किसी ने पीछे से मेरी आँखें मूँद ली। मैंने सोचा कि कोई सखी होगी।

मैं तो अपने ही चिन्तन में थी, सो अच्छा तो नहीं लगा उस समय किसी का आना, पर जब कोई आ ही गया हो तो क्या हो? मैंने कहा, "आ सखी! तू भी बैठ जा! हम दोनों साथ-साथ झूलेंगी।"

वह भी मेरी आँखें छोड़कर आ बैठी मेरे पास। झूले का वेग थोड़ा बढ़ा। अपने ही विचारों में मग्न मैंने सोचा कि यह सखी बोलती क्यों नहीं? "क्या बात है सखी! बोलेगी नाय?" मैंने जैसे ही यह पूछा और तत्काल ही नासिका ने सूचना दी कि कमल, तुलसी, चन्दन और केसर की मिली जुली सुगन्ध कहीं समीप ही है। एकदम मुड़ते हुये मैंने कहा, "सखी! श्यामसुन्दर कहीं समीप ही .... ओ......ह........!" मैंने हथेली से अपना मुँह दबा लिया क्योंकि मेरे समीप बैठी सखी नहीं श्यामसुन्दर थे।

"कहा भयो री! कबसे मोहे सखी-सखी कहकर बतराये रही हती। अब देखते ही चुप काहे हो गई?" मैं लज्जा से लाल हो गई। मुझे झूले पर वापिस पकड़ कर बिठाते हुये बोले, "बैठ! अब मैं तुझे झुलाता हूँ।" मेरे तो हाथ पाँव ढीले पड़ने लगे। एक तो श्यामसुन्दर का स्पर्श और उनकी सुगन्ध मुझे मत्त किए जा रही थी। उन्होंने जो झूला बढ़ाना आरम्भ किया तो क्या कहूँ सखी, "चढ़ता तो दीखे वैकुण्ठ, उतरताँ ब्रजधाम। यहाँ अपना ही आप नहीं दिखाई दे रहा था। लगता था, जैसे अभी पाँव छूटे के छूटे। जगत का दृश्य लोप हो गया था। बस श्रीकृष्ण की मुझे चिढ़ाती हँसी की लहरियाँ, उनके श्री अंग की सुगन्ध एवं वह दिव्य स्पर्श ही मुझे घेरे था। अकस्मात एक पाँव छूटा और क्षण भर में मैं धरा पर जा गिरती पर ठाकुर ने मुझे संभाल लिया। पर मैं अचेत हो गई। न जाने कितना समय निकल गया, जब चेत आया तो देखा हल्की-हल्की फुहार पड़ रही है और श्यामसुन्दर मेरे चेतना में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे आँखें खोलते प्रसन्न हो बोले, "क्यों री! यह यूँ अचेत हो जाने का रोग कब से लगा? ऐसे रोग को पाल कर झूला झूलने लगी थी? कहीं गिरती तो? मेरे ही माथे आती न? आज ही सांझ को चल तेरी मैया से कहूँगा। इसे घर से बाहर न जाने दो। अचेत होकर कहीं यमुना में जा पड़ी तो जय-जय सीता राम हो जायेगा।" वे खुल कर हँस पड़े। मैं उठ बैठी तो वह बोले, "अब कैसा जी है तेरा?" हाँ बोलूँ कि न, बस ह्रदय निश्चित नहीं कर पा रहा था इस आशंका से कहीं ठाकुर चले न जायें, बस सोच ही रही थी कि आँखों

के आगे से वह रूप-रस-सुधा का सरोवर लुप्त हो गया। हाय! मैं तो अभी कुछ कह भी न पाई थी, नयन भी यूँ अतृप्त से रह गये ....।

मीरा अपने भाव आवेश में ही थी। श्रीश्यामसुन्दर उससे हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। वह लज्जा वश अभी कुछ मन की कह भी न पाई थी कि श्यामसुन्दर न जाने कहाँ चले गये। नयन और ह्रदय अतृप्त ही रह गये और वह रूप-रस का सरोवर लुप्त हो गया। अभी तक तो दासियाँ उसे बाहर बरखा में भावावेश में प्रसन्नता से भीगता हुआ देख रही थीं। अब उन्हें मीरा का विरह प्रलाप सुनाई दिया, "हे नाथ! मुझे आप यूँ यहाँ अकेले छोड़ कर क्यूँ परदेस चले गये? देखो, श्रावण में सब प्रकृति प्रसन्न दिखाई पड़ती है, पर आपके दर्शन के बिना मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। मेरा ह्रदय धैर्य नहीं धारण कर पा रहा नाथ! मैंने अपने आँसुओं में भीगे आपको कितने ही संदेश, कितने ही पत्र लिख भेजे हैं, मैं कब से आपकी बाट निहारती हूँ ...... आप कब घर आयेंगे? हे मेरे गिरधर नागर! आप मुझे कब दर्शन देंगे?"

दासियाँ स्वामिनी को किसी प्रकार भीतर ले गईं, किन्तु मीरा के भावसमुद्र की उत्ताल तरंगे थमती ही न थीं। "आप मुझे भूल गये न नाथ! आपने तो वचन दिया था कि शीघ्र ही आऊँगा। अपना वह वचन भी भूल गये ? निर्मोही ! तुम्हारे बिन अब मैं कैसे जीऊँ ? सखियों ! श्यामसुन्दर कितने कठोर हो गये हैं?"

देखो सइयाँ हरि मन काठों कियो।
आवन कहगयो अजहुँ न आयो करि करि वचन गयो।
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी कैसे करि मैं जियो॥
वचन तुम्हारे तुमहि बिसारे मन मेरो हरि लियो।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर तुम बिन फटत हियो॥

दासियाँ प्रयत्न करके थक गई, किन्तु मीरा ने अन्न का कण तक न ग्रहण किया। रह-रह कर जब बादल गरज उठते और मोर पपीहा गाते तो वह भागकर बाहर की ओर भागती- " हे मतवारे बादलों! क्या तुम दूर देस से उड़कर मुझ विरहणी के लिए मेरे प्रियतम का संदेश लाये हो?"

मतवारे बादल आये रे, हरि का संदेसो कबहुँ न लाये रे॥

दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सबद सुनाये रे॥
कारी अंधियारी बिजुरी चमकें, बिरहणि अति डरपाये रे॥
गाजे बाजे पवन मधुरिया, मेहा मति झड़ लाये रे॥
कारो नाग बिरह अति जारी, मीरा मन हरि भाये रे॥

इधर न उसकी आँखों से बरसती झड़ी थमती थी और न गगन से बादलों की झड़ी। उसी समय कड़कड़ाहट करती हुई बिजली चमकी और बादल भयंकर रूप से गर्जन कर उठे। श्रावण की भीगी रात्रि में श्री कृष्ण के विरहरस में भीगी मीरा भयभीत हो किन्हीं बाँहों की शरण ढूँढने लगी........

बादल देख डरी हों स्याम मैं बादल देख डरी।
काली पीली घटा उमड़ी बरस्यो एक घड़ी।
जित जोऊँ तित पाणी पाणी हुई हुई भौम हरी॥
जाकाँ पिय परदेस बसत है भीजे बाहर खरी।
मीरा के प्रभु हरि अविनाशी कीजो प्रीति खरी॥
बादल देख डरी हों स्याम मैं ....

श्रावण की रात्रि में मीरा श्री कृष्ण के विरह में व्याकुल अपने महल के बाहर आंगन में झर-झर झरती बूँदों को देख रही है। उसे महल के भीतर रहना जरा भी सुहा नहीं रहा। दासियाँ उसे विश्राम के लिए कह कहकर थक गई हैं, पर वह अपलक वर्षा की फुहार को निहारे जा रही है। प्रेमी ह्रदय का पार पाना, उसे समझना बहुत कठिन होता है। क्योंकि भीतर की मनोस्थिति ही प्रेमी के बाहर का व्यवहार निश्चित करती है। अभी तो मीरा को बादल गरज-गरज कर और बिजुरिया चमक-चमक कर भयभीत कर रहे थे। और अभी एकाएक मीरा की विचारों की धारा पलटी, उसे सब प्रकृति प्रसन्न और सुन्दर धुली हुई दिखने लगी। मीरा भाव आवेश में पुनः बरसाने के उपवन में पहुँच कर प्रियालाल जी की झूलन लीला दर्शन करने लगी। कदम्ब की शाखा पर अति सुसज्जित रेशम की डोरी से सुन्दर झूला पड़ा हुआ है। सखियों ने झूले को नाना प्रकार के रंगों और सुगंधित फूलों से सुन्दर रीति से आलंकृत किया है। श्रीराधारानी और नन्दकिशोर झूले पर विराजित हैं और सखियाँ मधुर

मधुर ताल के साथ तान ले पंचम स्वर में गा रही हैं। कोयल और पपीहरा मधुर रागिनी में स्वर मिला कर सखियों का साथ दे रहे हैं। शुक सारिका और मोर विविध नृत्य भंगिमाओं से प्रिया-प्रियतम की प्रसन्नता में उल्लसित हो रहे हैं।

हे सखी! ऐसी दिव्य युगल जोड़ी के चरणों में मेरा मन बलिहार हो रहा है।" बरसती बरखा में श्री राधा श्यामसुन्दर के इस विहार को वह मुग्ध मन से निहारते गाने लगी........

आयो सावन अधिक सुहावना, बनमें बोलन लागे मोर॥
उमड़ घुमड़ कर कारी बदरियाँ, बरस रही चहुँ और।
अमुवाँ की डारी बोले कोयलिया, करे पप्पीहरा शोर॥
चम्पा जूही बेला चमेली, गमक रही चहुँ ओर।
निर्मल नीर बहत यमुना को, शीतल पवन झकोर॥
वृंदावन में खेल करत हैं, राधे नंद किशोर।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, गोपियन को चितचोर॥

चार-चार, छः-छः दिन तक मीरा का आवेश नहीं उतरता। दासियों के सतत् प्रयत्न से ही थोड़ा पेय अथवा नाम-मात्र का भोजन प्रसाद उनके गले उतर पाता।

महाराणा विक्रमादित्य के मन का परिताप, क्रोध मीरा के प्रति बढ़ता ही जा रहा था। वह अपनी प्रत्येक राजनीतिक असफलता के लिए, परिवारिक सम्बन्धों की कटुता के लिए मीरा को ही दोषी ठहरा रहा था। सौहार्द से शून्य वातावरण को देखकर मीरा के मन की उदासीनता बढ़ती जा रही थी। प्राणाराध्य की भक्ति तो छूटने से रही, भले ही सारे अन्य सम्बन्ध टूट जाए। परिवार की विकट परिस्थिति में क्या किया जाये, किससे राय ली जाये, कुछ सूझ नहीं रहा था। मायके या ससुराल में उसे कोई ऐसा अपना नहीं दिखाई दे रहा था, जिससे वह मन की बात कह कोई सुझाव ले सके। भक्तों को तो एकमात्र गुरूजनों का या संतो का ही आश्रय होता है। मीरा ने कुछ ही दिन पहले रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-महिमा और यश-चर्चा के बारे में सुना था। एक भक्त की स्थिति को एक भक्त या संत ही सही समझ सकता है, अपरिचित होते ही भी दो भक्तों में एक रूचि होने से एक आलौकिक अपनत्व का सम्बन्ध

रहता है। सो, मीरा ने उनसे पथ प्रदर्शन के आशय से अपने ह्रदय की दुविधा को पत्र में लिख भेजा ....।

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हरण गुँसाई।
बारहिं बार प्रणाम करऊँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरू भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
बालपन में मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सों तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई।
मोंको कहा उचित करिबो अबसो लिखियो समुझाई॥

पत्र लिखकर मीरा ने श्री सुखपाल ब्राह्मण को बुलवाया और कहा "पंडित जी! आप यह पत्र महाराज श्री तुलसीदास गुँसाई जी को जाकर दीजियेगा। उनसे हाथ जोड़ कर मेरी ओर से विनती कर कहियेगा कि मैंने पितासम मानकर मैंने उनसे राय पूछी है, अतः मेरे लिए जो उचित लगे, सो आदेश दीजिये। बचपन से ही भक्ति की जो लौ लगी है, सो तो अब कैसे छूट पायेगी। वह तो अब प्राणों के साथ ही जायेगी। भक्ति के प्राण सत्संग हैं और घर के लोग सत्संग के बैरी है संतों के साथ मेरा उठना-बैठना, गाना नाचना और बात करना उन्हें घोर कलंक के समान लगता है। नित्य ही मुझे क्लेश देने के लिए नये-नये उपाय ढूँढते रहते है। स्त्री का धर्म है कि घर नहीं छोड़े, कुलकानि रखे, शील न छोड़े, अनीति न करे, इनके विचार के अनुसार मैंने घर के अतिरिक्त सब कुछ छोड़ दिया है। अब आप हुकम करें कि मेरे लिए करणीय क्या है? मेरे निवेदन को सुनकर वे जो कहें, वह उत्तर लेकर आप शीघ्र पधारने की कृपा करें, मैं पथ जोहती रहूँगी।

मीरा चित्तौड़ की परिस्थिति से, परिवारिक व्यवहार से उदासीन थी। सो, उसने अपने मन की दुविधा को एक पत्र में लिखा और अत्यंत अपनत्व से मार्ग दर्शन पूछते हुए उसने सुखपाल ब्राह्मण को तुलसीदास गोस्वामी जी के लिए पत्र दिया और उन्हें शीघ्र उत्तर लेकर आने की प्रार्थना भी की। "पण हुकम! तुलसी गुँसाई म्हाँने मिलेगा कठै (कहाँ)? वे इण वकत कठै बिराजे?" पंडित जी ने पूछा। "परसों चित्रकूट से एक संत

पधारे थे। उन्होंने भी मुक्त स्वर से सराहना करते हुये मुझे तुलसी गुँसाई जी की भक्ति, वैराग्य, कवित शक्ति आदि के विषय में बताया था। उनका जीवन वृत्त कहकर बताया कि इस समय वे भक्त शिरोमणि चित्रकूट में विराज रहें है। आप वहीं पधारें! जैसे तृषित जल की राह तकता है, वैसे ही मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी।" इतना कहते-कहते मीरा की आँखें भर आईं। "संत पर साँई उभो है हुकम! (सच्चे लोगों का साथ सदा भगवान देते हैं) आप चिन्ता न करें।" श्री सुखपाल ब्राह्मण मीरा को आशीर्वाद देकर चल पड़े।

कुछ दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात जब वह ब्राह्मण तुलसीदास जी का पत्र लाये तो वह पत्र पढ़कर मीरा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने आनन्द से आँखें बन्द कर ली तो बन्द नेत्रों से हर्ष के मोती झरने लगे। उसने तुलसीदास जी के पत्र का पुनः पुनः मनन किया ....

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम स्नेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितनि भये मुद मंगलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटे बहु तक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासो बढ़े सनेह राम पद ऐसो मतो हमारो॥

मीरा तुलसीदास जी के लिखे शब्दों की सत्यता से अतिशय आनन्दित हुई -"जिसका सिया राम जी से स्नेह का सम्बन्ध न हो, वह व्यक्ति चाहे कितना भी अपना हो, उसे अपने बैरी के समान समझ कर त्याग कर देना चाहिये। जिस प्रकार प्रह्लाद ने पिता हिरण्यकशिपु का, विभीषण ने भाई रावण का,भरत ने माँ कैकयी का, राजा बलि ने गुरु शुक्राचार्य का, और ब्रज की गोपियों ने पति का त्याग किया तथा ये त्याग इन सबके लिए अति मंगलकारी हुआ। ऐसे अंजन के प्रयोग से क्या लाभ जिससे कल को आँख ही फूट जाये तथा ऐसे सम्बन्ध का क्या लाभ जिससे हमें अपने इष्ट से विमुख होना पड़े। तुलसीदास तो शास्त्रों के आधार पर यही सुमति देते हैं कि हमारे अपने और हितकारी तो इस

जगत में बस वही है जिनके सुसंग से हमारी भक्ति श्री सीता राम जी के चरणों में और प्रगाढ़ हो।"

मीरा ने उठकर श्री सुखपाल ब्राह्मण के चरणों में सिर रखा और अतिशय आभार प्रकट करते हुये बोलीं, "क्या नज़र करूँ? इस उपकार के बदले मैं आपको कुछ दे पाऊँ-ऐसी कोई वस्तु नज़र नहीं आती।" फिर उसने भरे कण्ठ से कहा, "आपने मेरी फाँसी काटी है। प्रभु आपकी भव-फाँसी काटेंगे। आपकी दरिद्रता को दूर करके प्रभु अपनी दुर्लभ भक्ति आपको प्रदान करें, यह मंगल कामना है। यह थोड़ी सी दक्षिणा है। इसे स्वीकार करने की कृपा करें।" मीरा ने उन्हें भोजन कराकर तथा दक्षिणा देकर विदा किया।

संत तुलसीदास जी से अनुमति एवं आशीर्वाद पा मीरा ने उसी निर्देशित राह पर पग बढ़ाने का निश्चय किया। चित्तौड़ के लोगों, महलों, चौबारों से और विशेषतः भोजराज द्वारा बनाए गये मन्दिर आदि सभी से मीरा अपना मन उधेड़ने लगी। मेड़ते में मीरा का पत्र पहुँचा तो वीरमदेव जी ने तुरन्त जयमल के पुत्र मुकुन्द दास और श्याम कुँवर (मीरा के देवर रत्नसिंह की पुत्री) को चित्तौड़ मीरा को लिवाने के लिए भिजवाया। वीरमदेव जी का आशय था कि बीनणी मायके में सबको मिल भी लेगी और जमाई मुकुन्द दास के साथ राणा मीरा को बिना किसी तर्क के शांति से मेड़ते जाने भी देगा। जब मुकुन्द दास और श्याम कुँवर मीरा के महलों में पहुँचे तो मीरा ने ममत्व की खुली बाँहों से दोनों को स्वागत किया। एक में भाई जयमल की छवि थी तो दूसरे में देवर रत्न सिंह की। श्यामकुंवर ने माँ और पिता के जाने के पश्चात मीरा को ही माँ जाना था। मीरा ने दोनों को अच्छे से दुलारा, खिलाया पिलाया और कहा, "थोड़ा विश्राम कर लो तो काकीसा और दादीसा को भी मिल आना। उनके लिए भी तो देखने को बस तुम्हीं हो। मैं तो तुम्हारे साथ ही अब मेड़ता चलूँगी।"

श्यामकुँवर माँ की गोद में सिर रखकर रोते हुई बोली, "मेरे तो प्रियजन और सगे सम्बन्धी आपके चरण ही हैं म्होटा माँ! आपका हुकम है तो सबसे मिल आऊँगी। अपने माता-पिता तो मुझे स्मरण ही नहीं हैं। मैंने तो आपको और दादीसा को ही माता-पिता जाना है। वहाँ सुना करती थी कि काकोसा हुकम आपको बहुत दु;ख देते हैं, तो मैं बहुत रोती थी। पता नहीं किस पुण्य प्रताप से आप चित्तौड़ को प्राप्त हुईं पर मेरे

पितृ-वंश का दुर्भाग्य को देखिए, जो घर आई गंगा का लाभ भी नहीं ले पा रहे है। वहाँ भी मैं मन ही मन पुकारा करती थी कि मेरी म्होटा माँ को दुख मत दो.....प्रभु!"

बेटी के आँसू पौंछते हुये मीरा ने कहा, "मुझे कोई दु:ख नहीं मेरी लाडली पूत! तू ऐसे ही अपने मन को छोटा कर रही है। उठ! गिरधर का प्रसाद ले!" श्यामकुँवर ने प्रसाद लिया और फिर सिसकने लगी, "इस प्रसाद की याद करके न जाने कितनी बार छिप-छिप कर आँसू बहाये हैं। कितने बरस के बाद यह स्वाद मिला है?"

"बेटा! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुम्हारी आँखों में आँसू मुझसे देखे नहीं जाते। अब उठो! स्नान कर गिरधर के दर्शन करो!" मीरा के बार-बार कहने पर श्याम कुँवर ने स्नान कर गिरधर के दर्शन किए तो फिर उसकी आँखों से आँसू बह चले, "म्हाँरा वीरा! अगर तुम ही मुझे बिसार दोगे तो मैं किसकी आस करूँगी?" अपने त्रिलोकीनाथ भाई के चरणों को उसने आँसुओं से धोकर मन के उलाहने आँखों के रास्ते बहा दिये।

राणा का मीरा के प्रति व्यवहार बेटी और जमाई के आने से एकदम बदल गया। कभी वह स्वयं गिरधर के दर्शन के लिए आ जाता या कभी भगवान के लिए कुछ न कुछ उपहार भिजवा देता। मीरा ने सोचा शायद लालजीसा में परिवर्तन आ गया है पर दासियों को कभी भी राणाजी पर विश्वास नहीं आता था। उन्हें महलों से आई प्रत्येक वस्तु पर शंका होती थी और वह सावधानी से सबकी परख स्वयं करती।

श्याम कुंवर ने काकोसा का यह बदला व्यवहार देखा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। मीरा के महल में होली के उत्सव की तैयारियाँ चल रही है। मीरा ने श्याम कुंवर की मनोधारा बदलते हुए उसे भी उत्सव का उत्साह दिलाया। श्याम कुंवर को श्री कृष्ण की वेशभूषा पहनाई गई, मीरा स्वयं बनी राधा और दासियाँ सखियों के रूप में थीं ही। होली की पद पदावली का गायन आरम्भ हुआ। थोड़ी ही देर में सब जगह रंग की ही फुहार पड़ रही थी..........

साँवरो होली खेल न जाँणे। खेल न जाणे खेलाये न जाँणे॥
बन से आवै धूम मचावे, भली बुरी नहीं जाँणे।
गोरस के मिस सब रस चाखे, भोर ही आँण जगावै॥

ऐसी रीत पर घर म्हाँणे, साँवरो होली खेल न जाँणे॥
छैल - छबीलो महाराज साँवरिया, दुहाई नंद की न माँणे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तट यमुना के टाँणे॥
मेरो मन न रह गयो ठिकाँणे, साँवरो होली खेल न जाँणे॥

होली खेलते खेलते मीरा के अंग शिथिल हो गये और नयन स्थिर हो गये। वह भाव राज्य में प्रवेश कर देखती हैं.........

"वह बरसाना जा रही है। आज होरी है। शीघ्रता से वह पद बढ़ाये जा रही है। श्याम जू के संग होरी खेलने के लिए सखियों ने बुलाया है। श्यामसुंदर भी सखाओं के साथ पहुँचते ही होंगे बरसाने,......... कहीं राह में ही न भेंट हो जाए, ... मैं अकेली हूँ और वे बहुत से। कैसे पार पड़ेगी ? तभी दाऊ दादा की डफ के साथ कई कण्ठों से समवेत स्वर सुनाई दियो - "होरी खेलन को आयो री नागर नन्द कुमार।" मैं चौंक कर एक झाड़ी की ओट में हो गई और देखा सब तो वहाँ थे पर एक श्याम न हते। विशाल दादा के के सिर पर रंग को घड़ा और सबके कंधों पर अबीर गुलाल की झोरी। सब बहुत उत्साह में नाचते-गाते फिरकी लेते बढ़ रहे थे। सबके पीठ पै ढाल बंधे थी। वे आगे चले गये तो मैंने संतोष की सांस ली और जैसे ही चलने को उद्यत हुई, किसी ने पीछे से आकर मुख पर गुलाल मल दी। मैं चौंक कर खीजते हुई बोली, "अरे, कौन है लंगर (ढीठ)?

मीरा के महल में रंगीली होली का उत्सव है। श्यामकुँवर ने श्यामसुन्दर की वेशभूषा पहनी है, मीरा ने राधारानी की। भावावेश में मीरा बरसाने की होली के लिए जा रही है कि राह में पीछे से आकर किसी ने मुख पर गुलाल मल दी - "अरे, कौन है रे लंगर?"

मैं सचमुच खीज गईं थी। उधर पहुँचने की जल्दी थी, वहाँ किशोरीजू और कान्हा जू के साथ होली जो खेलनी थी।" और यह कौन आ गया बीच में मूसरचंद।" एकदम पल्टी मैं। देखा तो! श्यामजू दोनों हाथों में गुलाल लिए हँसते खड़े थे - "सो लंगर तो मैं हूँ सखी! मन न भरा हो तो एक-दो गाली और दे दे।" उनको देख कर एकबार तो लाज के मारे पलकें झुक गईं। फिर होरी में लाज को क्या काज है, सोचकर मैनें नजर उठाई, मैं ....भी तोको गुलाल लगाये दूँ?" मेरी बात पर वे ठठाकर हँस पड़े। "अरे होली में कोई पूछकर रंग लगाता है भला ? यह होरी तो

बरजोरी का त्यौहार है। जो मैं कह दूँ नहीं लगाना? मान जायेगी क्या?" वह और जोर से हँसने लगे। "तो.......तो ......" मैंने एक ही क्षण सोचा पर खीज में झपटकर उन्हीं की झोली से दो मुट्ठियों में अबीर और गुलाल भरा, और इससे पहले कि वे पीछे हटें, उनके मुख पर अच्छे से गुलाल मल दिया। बस हाथ मैं अभी नीचे भी नहीं कर पाई थी कि श्यामसुन्दर ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और बोले, "ठहर, अब मेरी बारी है।" थोड़ा खींचातनी हुई तो हाथ तो छुड़ा लिए और मैं भागी पर इसी बीच मेरी ओढ़नी का छोर उनके हाथ में आ गया। मैं लज्जा से दौड़ कर आम के वृक्ष के पीछे छिपकर खड़ी हो गई। "ऐ मीरा! यह ले चुनरी अपनी। मैं इसका क्या करूँगा?" उन्होंने कहा। "वहीं धर दो, मैं ले लूँगी।" मैंने लाज से धीमे से कहा। "लेनी है तो आकर ले जा। नहीं तो मैं बरसाने जा रहा हूँ।" " नहीं! तुम्हीं यहाँ आकर दे जाओ।" मैंने विनय की। "अच्छा! यह ले पकड़।" उन्होंने कहा। मैं श्याम जू से बचने के लिए वृक्ष के तने की परिक्रमा-सी करने लगी। वे इधर तो मैं उधर। आखिर झल्ला कर खड़े हो गये। "समझ गया। तुझे चुनरी नहीं चाहिए। मुझे देर हो रही है, अभी कोई न कोई सखा मुझे ढूँढता आता होगा।" उन्होंने जैसे ही जाने के लिए पीठ फेरी, मैंने दबे पाँव उनका उत्तरीय (पटका) खींच लिया और भागी ....मैं पूरे प्राणों का जोर लगा कर, बरसाना की ओर। "ए बंदरिया! ठहर जा। अभी पकड़ता हूँ। "ऐसा कहते वह मेरे पीछे दौड़े। जब बरसाना पास आया तो मैं लाज के मारे सोचने लगी - "ऐसे कैसे बिना चुनरी के जाऊँ?" पहले सोचा कि श्यामसुन्दर का दुपट्टा ओढ़ लूँ, पर नहीं। यह कैसे हो सकता है? यह तो मैंने किशोरीजू के लिए लिया है। मैं ओढ़ लूँगी तो उन्हें क्या दूँगी? मैंने पथ बदला और सखी करूणा के घर की तरफ चली। उसी के यहाँ से कोई चुनरी ले लूँगी। पीछे देखा तो कोई न था। श्यामसुन्दर सम्भवतः अपने सखाओं के साथ दूसरी ओर चले गये थे। फिर भी मैंने अपनी गति मन्द न होने दी। उस छलिया का क्या भरोसा? कौन जाने किस ओर से आ जाये?

होली के रागरंग में मीरा भावावेश में बरसाना जा रही है। श्यामसुन्दर राह में मिल गये और मीरा को रंग दिया। होरी की छीनाझपटी में मीरा की चुनरी श्रीकृष्ण के पास और उनका दुपट्टा मीरा के पास है। मीरा कान्हा जी को दुपट्टा किशोरीजू को नजर करना चाहती

है। राह में सखी करूणा के घर से चुनरी ले जब वह बरसाना पहुँचती है तो उसे महलों में रानियाँ और दासियों के अतिरिक्त कोई नहीं दीखता। मन में उत्सुकता थी कि किशोरीजू कहाँ हैं? मैं उनके कक्ष में गई तो वहाँ दया बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी - "आ गई तू? कहाँ रह गई थी? चल अब जल्दी!"

मैं उसके साथ गिरिराज परिसर में पहुँची। होली की धूम मच रही थी वहाँ। एक ओर बड़े-बड़े कलशों में लाल पीला हरा रंग घोला हुआ था। सखियों के कन्धों पर टंगी झोलियों में और हाथों पर अबीर गुलाल था। दोनों ओर कठिन होड़ थी। कभी नन्दगाँव से आये हुये श्यामसुन्दर के सखा और वे पीछे हटते और कभी किशोरीजू सहित हमें पीछे हटना पड़ता। पिचकारियों की बौछार से और गुलाल की फुहार से सबके मुख - वस्त्र रंगे थे। किसी को भी पहचानना कठिन हो रहा था। मैंने उस रंग की घनघोर बौछार में विशाखा जीजी को पहचान लिया। वे किशोरी जी की बाँयीं ओर थीं। समीप जाकर मैंने धीमे से उनके कान में दुपट्टे की बात कही, किन्तु उसी समय श्याम जू और उनके सखाओं ने इतनी जोर से हा-हा हू-हू की कि जीजी बात सुन ही न पाई। मैंने दुपट्टा निकाल कर उन्हें दिखाना चाहा, तभी पिचकारी की तीव्र धार मेरे मुँह पर पड़ी। मैंने उधर देखा तो श्यामसुन्दर ने मुँह बिचकाकर अँगूठा दिखा दिया। दूसरे ही क्षण उन्होंने डोलची से मेरी पीठ पर इतनी जोर से रंग वाले पानी की बौछार की कि मैं पीड़ा से दोहरी हो गई। विशाखा जीजी हाथ पकड़ कर मुझे दूर ले गईं - "अब कह क्या हुआ?"

"यह देखो, कान्हा जू का उत्तरीय "मैंने दुपट्टा उनके हाथ में देते हुये कहा। "यह कहाँ, कैसे मिला?" जीजी ने पूछा। मैंने सब बात कह सुनाई तो वह प्रसन्न हो हँस पड़ी - "सुन अब श्यामसुन्दर को पकड़ पाये तो बात बने। बार-बार हमारी मोर्चाबंदी को उनके सखा तोड़ देते हैं।"

"जीजी! आज श्याम जू मुझसे चिढ़े हुये हैं, अतः मुझे ही अधिक परेशान करेंगे। मैं आगे रहूँ तो अवश्य मुझे वे रंगने या गिराने का प्रयास करेंगे। मैं कुछ आगे बढ़ूँगी तो वह भी आगे बढ़ेगें। जैसे ही वे मुझे गुलाल लगाने लगें, बस तभी दोनों ओर से सखियाँ उन्हें घेरकर पकड़ लें।"

"बात तो उचित लगती है तेरी। पर यह उत्तरीय पहले कहीं छिपा कर रख दूँ।" जीजी ने प्रसन्न होते हुये कहा। मेरी राय सबको पसन्द आई।

श्री किशोरीजू को संग लेकर मैं आगे आ गई और हँस-हँस कर उनके ऊपर रंग डालने लगी। मेरी हँसी उन्हें चिढ़ा रही थी। मेरी चुनरी से उन्होंने अपनी कटि में फेंट बाँध रखी थी। मैं थोड़ा श्यामसुन्दर को ललकारती आगे बढ़ती हुई बोली, "हिम्मत है तो अब रंग लगा के दिखाओ! मैं भी देखूँ, कितना दम है तुम में!"

"ठहर जा तू!" दोनों हाथ की मुट्ठियों में गुलाल भर कर जैसे ही मेरी ओर बढ़े, पीछे से सखा भी आ गये। "अहा, हाँ बलिहार जाऊँ ऐसी हिम्मत पर।" मैनें चिढ़ा कर हँसते हुये कहा - "सखाओं की फौज लेकर पधार रहें हैं महाराज! मुझसे निपटने! अरे, तुमसे तो मैं ही अच्छी हूँ जो कि अकेली ललकार रही हूँ। आओ जरा देखें भला कौन जीते और कौन हारे?"

श्रीकृष्ण वाकई चिढ़ गये थे। सखाओं को बरज करके वे अकेले ही दौड़े आगे आये। मैं एक-दो पद पीछे हट गई, और जोश में आ तीव्र गति से श्याम जू ने मुझे अच्छे से पकड़ कर रंग दिया। मेरे हाथों में थमी अबीर बिखर गई। अपना मुख बचाने के लिए मैंने उनके कंधे पर धर दिया।

मीरा के महल में होली का उत्सव है। वह भावावेश में गिरिराज परिसर में किशोरीजू की सखियों के संग मिल श्यामसुन्दर के साथ होली खेल रही है। विशाखा से परिमर्श कर वह ठाकुर की घेराबन्दी के लिए उनकी हिम्मत को ललकारती आगे बढ़ी तो ललित नागर ने उसे ही पकड़ कर अच्छे से रंग दिया।

मेरे हाथों में थमी अबीर बिखर गई और अपना मुख बचाने के लिए मैंने उनके कंधे पर धर दिया। "ए, मेरा उत्तरीय कहाँ छिपाया है तूने?" उन्होंने एक हाथ से मुझे पकड़े हुये और दूसरे हाथ से मुझे गुलाल मलते हुये कहा। मुझे कहाँ इतना होश था कि किसी बात का जवाब दे पाऊँ। ये धन्य क्षण, यह दुर्लभ अवसर, कहीं छोटा न पड़ जाये, खो न जाये ......मेरे हाथ पाँव ढीले पड़ रहे थे, मन तो जैसे डूब रहा था उस स्पर्श, सुवास, रूप और वचन माधुरी में।

"ए, नींद ले रही है क्या मज़े से?" उन्होंने मुझे झकझोर दिया -"मैं क्या कह रहा हूँ, सुनती नहीं?" फिर धीरे से कहा, "कहाँ है दे दे न, यह ले तेरी चुनरी......ले ......।"

मेरा सुझाव काम कर गया। मुझसे उलझे रहने से श्याम जू को पता ही नहीं चला कि कब चारों ओर से सखियों ने उन्हें घेर लिया। "यह तो हम से धोखा किया।" उन्होंने और सखाओं ने चिल्ला कर कहा, पर सुने कौन? सखियाँ उन्हें पकड़ कर गिरिराज निकुन्ज में ले चलीं। जाते-जाते मेरी ओर देखकर ऐसे संकेत किया - "ठहर जा, कभी बताऊँगा तुझे।"

सखियों ने मिलकर श्याम जू को लहंगा फरिया पहना उन्हें छोरी बनाया और फिर श्रीदाम भैया से उनकी गाँठ जोड़ी। दोनों का ब्याह रचाया। खूब धूम मची। सखियों ने तो अपनी विजय की प्रसन्नता में कितना हो-हल्ला किया। गाजे-बाजे के साथ बनोली निकली। सखियाँ गीत गा रही थी। उनके सखा बाराती बन श्रीदाम के साथ चले। श्याम जू बेचारे-विवश से चलते लहंगा-फरिया में रह-रहकर उलझ जाते।

ललिता जीजी दुल्हन की बाँह पकड़े संभाले थीं। ब्याह के बाद दुल्हा-दुल्हनको श्री किशोरीजू के चरणों में प्रणाम कराया तो प्रियाजी ने भी उदार मन से दोनों को शगुण और आशीर्वाद दिया। हम सब हँस-हँस कर दोहरी हो रही थीं। सन्धया में सबने मल-मल कर स्नान किया और रंग उतारा। किशोरीजू ने उन्हें निकुन्ज में पधराया और सखियों ने भोजन कराया। उनके सखा जीम-जूठकर प्रसन्न हो विदा हुए। भोजन के समय भी विविध विनोद होते रहे। श्री किशोरीजू ने प्रसन्न हो मेरा हाथ थामकर समीप खींचा - "आज की बाजी तेरे हाथ रही बहिन!" कहकर उन्होंने स्नेह से चम्मच में बची खीर मेरे मुख में दे दी।

"अहा सखी! उसका स्वाद कैसे बताऊँ तुम्हें? उस स्वाद-सुधा के आनन्द को संभाल पाना मेरे बस में न रहा और मैं अचेत हो गई।"

मीरा अभी भी भावावेश में ही है। किशोरीजू ने होली के उत्सव में श्यामसुन्दर पर विजय पाई। मीरा की सेवा और समर्पण से प्रसन्न हो जब प्रियाजी ने मीरा को अपना प्रसाद दिया तो वह आनन्द के वेग को न संभाल पाने से अचेत हो गई। कितनी देर अचेत रही, ज्ञात नहीं। जब संभली तो देखा कि विशाखा जीजी श्रीकृष्ण का उत्तरीय, मेरी रंग भरी चुनरी और किशोरीजू के प्रसादी वस्त्र, सब मुझे देती हुई बोलीं - "तनिक चेत कर बहन! सांझ हो रही है।"

"नन्दीग्राम जाओगी बहिन?" श्री किशोरीजू ने पूछा। क्या उत्तर दूँ?

मन भर आया था। मैं रोते हुये प्रियाजी के चरणों से लिपट गई - "इन चरणों से दूर जाने की किसे इच्छा होगी स्वामिनी जू?" प्रियाजी ने मुझे अपनी बाँहों में भरते हुये कहा, "तुम मुझसे दूर नहीं हो बहिन। पर तुम्हारे वहाँ होने से हमें बड़ी सुविधा है, वहाँ के समाचार मिलते रहते हैं।"

"श्रीजू! क्या कहूँ? मैं किसी योग्य नहीं। बस आपकी चरणरज की सेवा में बनाए रखने की कृपा हो! जैसी-तैसी बस मैं आपकी हूँ.......।" मैं फिर उनके चरणों में लुढ़क गई।

"मैं घर जाय रहयो हूँ, तू भी साथ चलेगी क्या? रास्ते में तू अपने घर चली जाना, तेरी माँ चिन्ता करती होयेगी।" श्यामसुन्दर ने हाथ पकड़ कर उठाते हुये कहा तो मुझे चेत हुआ। किशोरीजू की आज्ञा से सखियों ने मुझे उनके प्रसादी वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत किया। ह्रदय से लगाकर राधारानी ने मुझे श्याम जू के साथ विदा किया।

"तेरा श्रृंगार किसने किया री?" श्यामसुन्दर ने राह में मुझसे चलते-चलते पूछा। "मालूम नहीं! मेरी आँखों में तो प्रियाजी के चरण समाये हैं।" "मैं नहीं दिखता री तुझे?"

"समझ में नहीं पड़ता श्याम जू! कभी तुम, कभी किशोरीजू। वही तुम, तुम वही, कभी आप दोनों एक हो, कभी अलग।"

"तू तो बड़ी सिद्ध हो गई है री, जो इती बड़ी-बड़ी बातें बोल रही है। पर तेरो तिलक कछु ठीक नाहिं लागे मोहे .... ठीक कर दूँ क्या?"

बस मीरा उसी समय मूर्ति की तरह जड़ हो गई। वह चित्तौड़ में अपने महल में, शरीर में वापिस तो लौट आई थी पर मन कहीं छूट गया था। कभी पागल सी हँसती, कभी रोती......। मीरा की यह दशा देख श्यामकुंवर बाईसा उदयकुंवर बाईसा से लिपट कर रोने लगीं। "मेरी बड़ी माँ को यह क्या हो गया?"

"कुछ नहीं बेटा! इनको जब जब भगवान् के दर्शन होते हैं, ये ऐसी ही हो जाती हैं। तुम धीरज रखो! अभी भाभी म्हाँरा ठीक हो जायेंगी" उदयकुँवर ने बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

श्यामकुँवर ने मीरा को ऐसी दशा में कभी देखा नहीं था। पुलकित देह, सतत आँसूओं की धारा से अधखुले नेत्र, मुख पर अनिर्वचनीय आनन्द। वह दौड़ कर गिरधर गोपाल से बिलखते हुये प्रार्थना करने लगी- "ऐ रे म्हाँरा वीरा! म्होटा माँ ही मेरी सब कुछ हैं। इन्हें मुझसे मत

.....छीनो .....मत छीनो।" चम्पा, चमेली आदि दासियाँ ने श्यामकुँवर को स्नेह से समझाया और सब मीरा के समीप बैठ संकीर्तन करने लगीं -

"मोहन मुकुन्द मुरारे कृष्ण वासुदेव हरे"

दो घड़ी के पश्चात मीरा के पलक-पटल धीरे-धीरे उघड़े किन्तु आनन्द के वेग से पुनः मुंद जाते। कीर्तन के स्वरों के साथ-साथ मीरा सामान्य हुई तो श्यामकुँवर ने भी प्रसन्न हो माँ की गोद में सिर रख दिया। मीरा ने भी बेटी को दुलारा।

दासियाँ उठकर रंग के कुण्डे पिचकारियाँ साफ करने में लग गईं। मीरा ने अपनी ओढ़नी से कुछ निकाल कर स्नेह से श्यामकुँवर के हाथ में थमा दिया। उसने मुट्ठियाँ खोलकर देखा तो वन केतकी के दो पुष्प और एक पेड़ा। उसने साभिप्राय माँ की तरफ़ देखा। "प्रभु ने दिये हैं। प्रसाद खा लो और फूलों को संभाल कर रखना।" मीरा ने उत्तर दिया।

सबके जाने के बाद मीरा ने जब अपनी साड़ी पर रंग देखा तो उसे वापस उसी दिव्य लीला का स्मरण हो आया। कितना हास-परिहास, कितना हँसी विनोद और सब सखियों की भीड़ ......। पर वह अपने वर्तमान में अपने को यूँ अकेला पा उदास हो गई और उसके मन की पीड़ा स्वर बन झंकृत हो उठे..........

किनु संग खेलूँ होली........, पिया तज गये हैं अकेली......।

मीरा और श्यामकुँवर दोनों गिरधर की सेवा में लगी थीं, कि एक कुमकुम नाम की दासी बड़ी सी बाँस की छाब लेकर आई और बोली, "महाराणा जी ने आपके लिए शालिग्राम जी और फूलों की माला भिजवाई है हुकम!"

"शालिगराम कौन लाया ? कोई पशुपतिनाथ या मुक्तिनाथ के दर्शन करके आया है क्या ?" मीरा ने अपने सदा के मीठे स्वर में पूछा। "मुझे नहीं मालूम अन्नदाता! मुझे जो हुकम हुआ, उसे पालन के लिए मैं हाजिर हो गई। वैसे भी बहुत समय से मेरे मन में आप हुजूर के दर्शन की लालसा थी। आज महामाया ने पूरी की। मुझ गरीब पर मेहर रखावें सरकार, हम तो बड़े लोगों का हुकम बजाने वाले छोटे लोग हैं सरकार!" कुमकुम ने भरे कण्ठ से कहा।

"ऐसा कोई विचार मत करो। हम सब ही चाकर हैं उस म्होटे धणी (भगवान) के। जिसकी चाकरी में हैं, उसमें कोई चूक न पड़ने दें, बस। हम सब का ठाकुर सबणे जाणे और सब देखे है, उससे कुछ छिपा नहीं रहता।" मीरा ने स्नेह से समझाते हुये कहा, "गोमती! इन्हें प्रसाद दे तो।" फिर श्यामकुँवर की ओर देखती हुई मीरा बोली, "बेटी! इस छाब की डोरियों को खोलो तो, तुम्हारे गिरधर के साथ इनकी भी पूजा कर लूँ। कोई लालजीसा के लिए पशुपतिनाथ या मुक्तिनाथ से शालिग्राम भेंट में लाया होगा तो उन्होंने मेरी काम की चीज समझ कर यहाँ भेज दिए हैं।"

जैसे ही श्यामकुँवर ने डोरी खोलने को हाथ बढ़ाया तो चम्पा बोल पड़ी - "ठहरिये बाईसा! इसे हाथ मत लगाईये। जिस तरह से यह दासी इसे ला रही थी, यह छाब भारी प्रतीत होती थी और शालिग्राम तथा फूलों का भार ही कितना होता है?"

"तू तो पगली है चम्पा! उधर से हवा भी आये तो तू वहम से भर जाती है। तुम खोलो बेटा!" मीरा ने श्यामकुँवर से कहा। श्यामकुँवर खोलने लगी तो कुमकुम प्रसाद को ओढ़नी में बाँध आगे बढ़ आई, "सरकार! बहुत मजबूती से बँधी है। आपके हाथ छिल जायेंगे, लाईये मैं खोले देती हूँ।"

उसने डोरियों को खोल जैसे ही छाब का ढक्कन उठाया, फूत्कार करते हुये दो बड़े-बड़े काले भुजंग चौड़े फण उठाकर खड़े हो गये। दासियों और श्यामकुँवर के मुख से चीख निकल पड़ी। कुमकुम की आँखें आश्चर्य से फट सी गईं, और वह घबराकर अचेत हो गई। मीरा तो मुस्कराते हुये ऐसे देख रही थी मानों बालकों का खेल हो। देखते ही देखते एक साँप छाब में से निकलकर मीरा की गोद में होकर उसके गले में माला की भांति लटक गया।

"बड़ा हुकम!" श्यामकुँवर व्याकुल स्वर में चीख सी पड़ी। "डरो मत बेटा! मेरे साँवरे की लीला देखो।" पलक झपके, तब तक तो छाब में बैठा नाग एक बड़े शालिगराम के रूप में और मीरा के गले में लटका नाग रत्नहार के रूप में बदल गया।

"गोमती! कुमकुम बाई को थोड़ा पंखा झल तो! थोड़ा चरणामृत भी दे। बेचारी डर के मारे अचेत हो गई है।" मीरा ने शांत स्वर में कहा। चमेली क्षुब्ध स्वयं में बोली - "मरने भी दीजिए अभागी को जो आपके

लिए सिर पर मौत उठाकर लायी। हमारा वहम तो झूठा नहीं निकला, किन्तु सरकार के भोलेपन के सामने वहम का क्या बस चले?"

"ऐसी बात मत कह चमेली! यह बेचारी कुछ जानती होती तो स्वयं आगे बढ़ कर छाब की डोरियाँ क्यूँ खोलती? और यदि जानती भी होती तो अपना क्या बिगड़ गया? ले! ये चरणामृत दें तो इसके मुख में!" अथाह स्नेहपूर्वक दोनों हाथों से छाब में फूलों के ऊपर रखे हुये शालिग्राम जी को मीरा ने उठाया और एकबार सिर से लगाकर सिंहासन पर पधराते हुये वे बोलीं, "मेरे प्रभु! कितनी करूणा है आपकी इस दासी पर!"

दासियों ने और श्यामकुँवर ने जयघोष किया - "शालिग्राम भगवान की जय! गिरधरलाल की जय!"

राणा विक्रमादित्य ने मीरा को बाँस की छाब में दो काले भुजंग भिजवाये और कहलवाया कि शालिग्राम जी और फूल हैं। छाब का ढक्कन खोलते ही नाग निकले, लेकिन देखते ही देखते एक ने शालिग्राम का स्वरूप ले लिया और एक ने रत्नों के हार का।

जब दासी कुमकुम को चेत आया तो वह मीरा के चरणों में सिर रखकर रो पड़ी - "मैं कुछ नहीं जानती अन्नदाता! मुझे तो महाराणा के सेवक ने यह छाब पकड़ाई और कहा कि शालिग्राम जी और फूल हैं मैं आपके यहाँ पहुँचा दूँ। यदि मैं इस साजीश के बारे में जानती होऊँ तो भगवान इसी समय मेरे प्राण हर लें।" फिर एकाएक चौंक कर बोली, - "वे कहाँ गये दोनों कालींगढ़?"

"ये रहे।" मीरा ने एक हाथ से शालिग्राम जी को और दूसरे से गले में पड़े हार को छूते हुये बताया - "तुम डरो मत! मेरे साँवरे समर्थ हैं।" श्यामकुँवर बहुत क्रोधित हुई यह सब देखकर और बोली, "अभी जाकर काकोसा से पूछती हूँ कि यह सब क्या है? अभी तक तो सुनते ही थे पर आज तो आँखों के समक्ष सब देख लिया।" पर मीरा ने बेटी को शांत कर समझाया, "कुछ नहीं पूछना है और हमारे पास प्रमाण भी कहाँ है कि उन्होंने साँप भेजे। फिर साँप हैं कहाँ? बल्कि गोमती, जा! जोशी जी को बुला ला, बोलना शालिग्राम प्रभु पधारे हैं। प्राणप्रतिष्ठा करनी है। और चम्पा! प्रभु के आगमन पर उत्सव भोग की तैयारी करो, और सब महलों में प्रसाद भी बंटेगा।"

श्यामकुँवर तो यह सब देख सकते में आ गई एक शरणागत का, एक भक्त का किसी भी स्थिति को देखने का, उस स्थिति को संभालने का ही नहीं बल्कि उसे प्रभु की लीला मान उसे उत्सव का स्वरूप दे देना कितना भावभीना दृष्टिकोण है!"

"और मेरे लिए क्या आज्ञा है हुकम?" कुमकुम रो पड़ी। "जो यह प्रसाद मेरे पल्ले में न बँधा होता तो वे नाग मुझे अवश्य डस गये होते। अब वहाँ जाकर क्या अर्ज करूँ?"

"केवल यही कहना कि छाब को मैं कुंवराणी के पास रख आई हूँ और अर्ज कर दिया है कि शालिग्राम और फूलों के हार हैं। इच्छा हो तो उत्सव के पश्चात आकर तुम प्रसाद ले जाना।" मीरा ने कहा।

"न जाने किस जन्म के पाप का उदय हुआ कि ऐसे कार्य में निमित्त बनी। यदि आपको कुछ हो जाता अन्नदाता! तो मुझे नरक में भी ठिकाना न मिलता। हुजूर आप तो पीहर पधार रही हैं....... मुझे भी कोई सेवा प्रदान कर देतीं!" दासी ने आँसू पौंछते हुये कहा।

"मेरी क्या सेवा? सेवा तो ठाकुर जी की है। उनका जो नाम अच्छा लगे, उठते-बैठते काम करते हुये लेती रहो। जीभ को न तो खाली रहने दो और न फालतू बातों में उलझायो। यह कोई कठिन काम नहीं है, पर आदत नहीं होने से प्रारम्भ में कठिन लगेगा। आदत बनने पर तो लोग घोड़े-ऊँट पर भी नींद ले लेते है। बस इतना ध्यान रखना कि नियम छूटे नहीं।" मीरा ने कहा।

"मुझे ....भी एक ......ठाकुर जी ....बख्शावें। म्हूँ लायक तो कोय न, पण हुजर री दया दृष्टि सूँ तर जाऊँली।" कुमकुम ने संकोच से आँचल फैला कर कहा।

मीरा उसके भाव से प्रसन्न हो बोली, "बहुत भाग्यशाली हो जो ठाकुर जी की सेवा की इच्छा जगी। प्रसाद लेने आवोगी तो जोशीजी भगवान और नाम दोनों दे देंगे। इनके नाम में सारी मुसीबतों के फंद काटने की शक्ति है। यदि तुम नाम भगवान को पकड़े रहोगी तो आगे-से-आगे राह स्वयं सूझती जायेगी और वह स्वयं भी आकर तुम्हारे ह्रदय में, नयनों में बस जायेंगे।" "आज तो मेरा भाग्य खुल गया।" कहते हुये उसने अपने आँसुओं से मीरा के चरण पखार दिए।

शालिग्राम जी के पधारने का उत्सव हुआ। जब जोशी जी ने

शालिग्राम भगवान का पंचामृत अभिषेक हुआ तो श्यामकुँवर और दासियों ने जयघोष कर मीरा का उत्साह वर्द्धन किया। मीरा भगवान के स्वयं घर पधारने से प्रसन्न चित्त मुद्रा में पर अतिशय भावुक हो विनम्रता से शीश निवाया। और ह्रदय के समस्त भावों से प्रियतम का स्वागत करने में तन्मय हो गईं.........

म्हाँरे घर आयो प्रियतम प्यारा ....

मीरा जी के महल में प्रभु शालिग्राम जी के आगमन का उत्सव विधिवत सम्पन्न हुआ। पहले ठाकुर जी का शंखनाद के साथ अभिषेक, भजन संकीर्तन, ब्रह्म भोज और फिर प्रसाद। सबके महलों में प्रसाद बँटा।

उदयकुँवर बाईसा को प्रसाद पाकर बहुत आश्चर्य हुआ तो वह स्वयं मीरा के यहाँ उत्सव का कारण पूछने चली आई। श्यामकुँवर और मीरा प्रसाद पाने बैठने ही लगे थे। तो मीरा ने दासी को कह उदयकुँवर बाईसा की भी थाली साथ ही लगवा ली।

"आज कैसा उत्सव है भाभी म्हाँरा?" उदयकुँवर ने जिज्ञासा वश पूछा। "आज शालिगराम प्रभु पधारे हैं बाईसा!" मीरा ने प्रसन्नता से कहा। श्यामकुँवर ने प्रसाद पाते-पाते सारा वृतान्त बुआ को कह सुनाया। उदयकुँवर सांप के पिटारे की बात सुनकर बहुत क्रोधित हुई, "मैं तों समझी थी कि महाराणा को अब अकल आ गई है। वे भाभीसा को अब पहचान गये हैं। किन्तु कुछ भी नहीं बदला है। मैं जाकर पूछती हूँ कि यह क्या किया आपने, क्या मेड़तियों को शत्रु बना कर मानेंगे?"

"नहीं बाईसा! कुछ नही किसी से भी पूछना है। भाई जयमल के पुत्र मुकुन्द दास भी अभी यहीं है। मेड़ता में जरा सा भी भनक पड़ गई तो दोनों तरफ की तलवारें भिड़ जायेगीं। मेरा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, पर हमारी बेटी का पीहर खो जायेगा।" मीरा ने श्यामकुँवर के सिर पर हाथ रखते हुये कहा।" और रही बात मेरी, वो तो वैसे भी परसों मैं जा ही रही हूँ।" उदयकुँवर विह्वल स्वर में भौजाई से लिपटते हुये बोली, "आप समंदर हो भाभी म्हाँरा!"

तभी कुमकुम ठाकुर जी को लेने आ गई। मीरा उसे और श्यामकुँवर को ले मन्दिर पधारी तो जोशीजी को उसकी इच्छा बताई। "तुमको कौन से ठाकुर जी अच्छे लगते हैं, रामजी, कृष्णजी, एकलिंगनाथ,

माता जी या कोई और?" मीरा ने पूछा। "मुझे अच्छे बुरे लगने की अकल कहाँ है सरकार!" कुमकुम विनम्रता से बोली।

"भगवान से एक रिश्ता जोड़ना पड़ता है, इसलिए पूछ रही हूँ। तुम्हें बालक चाहिये कि बींद, मालिक चाहिए कि चाकर, यह बताओ।"

"म्हारे तो नान्हा लाला चावे हुकम!" मीरा ने बालमुकुन्द जी को उठाकर जोशीजी के हाथ में दिया। जोशीजी उसे कुमकुम के हाथ में देते हुये बोले - "तुमसे जैसी बन पाये, वैसी पूजा करना और छोटे बालक की तरह ही सार-संभाल करना। आज से ये तेरे लाला हैं। अपने बालक की तरह ही लाड़-गुस्सा भी करना। इन्हें खिला कर ही खाना-पीना, इन पर पूरा भरोसा करना।"

उसके कान में लाला का गोपाल नाम देते हुए कहा - "इस नाम को कभी नहीं भूलना मत, ज़ुबान को नाम से विश्राम मत देना, समझी?" कुमकुम ने आँसुओं से भरी आँखों से जोशीजी की ओर देखकर सिर हिलाया। पल्लू से चाँदी का एक रूपया खोलकर जोशीजी के पाँवों के पास रख प्रणाम किया। वहाँ बैठे सबको प्रणाम कर अन्त में उसने मीरा के दोनों चरण पकड़ रोते हुये कहा, "मैं पापिन आपके लिए मौत की सामग्री लेकर आई थी और आपने मेरे लिए वैकुण्ठ के दरवाजे खोले। बस इस दासी पर सदा कृपा करना, भूल मत जाना।"

मीरा ने सिर पर हाथ फेर आश्वासन दिया। जोशीजी के आग्रह से मीरा ने मन्दिर में गिरधर के समक्ष, जाने से पहले एक पद गाया.......

मैं गोविन्द के गुण गाणा।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठयाँ कह जाणा॥
राणा भेज्या जहर पियाला, इमरित करि पी जाणा॥
डबिया में भेज्या दुई भुजंगम, सालिगराम कर जाणा॥
मीरा तो अब प्रेम दिवानी, साँवरिया वर पाणा॥
मैं गोविन्द के गुण गाणा॥

संवत १५९१ वैशाख मास (1534) में सदा के लिए चित्तौड़ छोड़कर मीरा मेड़ते की ओर चली। एक दिन भोजराज के दुपट्टे से गाँठ जोड़कर इसी वैशाख मास में गाजे-बाजे के साथ वे इस महल की देहली पर पालकी से उतरी थी। आज सबसे मिलकर इस देहली से विदाई ले

रही है। ये वे महल-चौबारे थे, जहाँ उसने कई उत्सव किए थे, जहाँ उसके गिरधरलाल ने अनेक चमत्कार दिखाये थे, जहाँ उसके प्रिय सखा कलियुग में द्वापर के भीष्म से भी अधिक भीषण प्रतिज्ञा का पालन करने वाले महाभीष्म भोजराज ने देह छोड़ी थी और जहाँ विक्रमादित्य ने उसके विरुद्ध कई षडयन्त्र रचायें थे।

एकबार भरपूर नजर से उसने सबको देखा, उस कक्ष में जहाँ भोजराज विराजते थे ....वे वहाँ जाकर खड़ी हो गईं। पंचरंगी लहरिये का साफा, गले में जड़ाऊ कण्ठा-पदक पहने, कटार-तलवार बाँधे, हँसते-मुस्कराते भोजराज मानों उसके सम्मुख खड़े हो गये थे। मीरा की आँखें भर आई - "सीख बख्शाओं, महाराजकुमार! विदा, विदा मेरे सखा! मेरे सुदृढ़ कवच! मुझसे जो भूलें, जो अपराध हुये हों, उनके लिए मैं क्षमा याचना करती हूँ।" कहते हुये मीरा ने मस्तक धरती पर रख भोजराज को प्रणाम किया - "मैं अभागिनी आपको कोई सुख नहीं पहुँचा सकी, कोई सेवा नहीं कर सकी। अपने गुणों और धीर-गम्भीर स्वभाव से आपने जो मेरी सहायता की और सदा ढाल बनकर रहे, जो भीष्म प्रतिज्ञा आपने की और अंत तक उसे निभाया, उसके बदले मैं अकिंचन आपको क्या नजर करूँ? किन्तु हे मेरे सखा! मेरे स्वामी सर्व समर्थ हैं। वे देंगे आपको अपनी इस दासी की सहायता का प्रतिफल। आपका मंगल हो...आप जहाँ भी हैं ....मेरा आपको प्रणाम।" उसने आँसुओं से भरी आँखों से पुनः धरती पर प्रणाम किया।

बहुत देर से चम्पा स्वामिनी को यूँ भावुक हो रोते हुये देख रही थी- "बाईसा हुकम! नीचे पालकी आ गई है, सबसे मिलने पधारें।" आँसू पौंछकर मीरा उस कक्ष से बाहर आ गई। आवश्यक सामान और गिरधर की पोशाकें आभूषण सब गाड़ियों पर लदकर जा चुका था। मीरा के जो सेवक और दासियाँ जो चित्तौड़ में ही पीछे रह रहे थे, उनके लिए द्रव्य और जीविका का प्रबन्ध कर दिया था। सभी मन ही मन जानते थे कि अब मीरा वापस चित्तौड़ की ओर मुख न करेगी, सो उसके प्रियजनों के प्राण व्याकुल थे।

मीरा अपनी सासों और गुरूजनों की चरणवन्दना करने पधारी। सब उसे भारी मन से मिले। धनाबाई सास तो उसे हृदय से लगा बिलख पड़ी तो मीरा ने उन्हें आश्वस्त किया। हाड़ी जी (विक्रमादित्य की माता)

को मीरा ने प्रणाम कर अपने अन्जाने में अपराधों के लिए क्षमा माँगी। हाँडीजी बोली, "पहले मैं समझती थी कि तुम जानबूझ कर हम सबकी अवज्ञा करती हो बीनणी! किन्तु बाद में मैं समझ गई कि भक्ति के आवेश में तुम्हें किसी का ध्यान नहीं रहता। तुमसे पल्ला फैला एक भिक्षा माँगती हूँ.......दोगी? हमारे किए अपराधों को मन में ....।"

मीरा ने स्नेह से सास का पल्ला हटाकर उनके दोनों हाथ पकड़कर माथे से लगाते हुये बोली, "ये हाथ किसी के सामने फैलाने के लिए नहीं बने है ये हाथ आश्रितों पर छत्रछाया करने और मुझ जैसी अबोध को आशीर्वाद देने के लिए बने हैं। यह चित्तौड़ की जननी के हाथ हैं, आपके ऐसा करने से आपके राजमाता के पद का अपमान होता है।" "नहीं! मुझे कहने दो बीणनी!" कहते-कहते हाड़ी जी की आँखों से आँसू बहने लगे।

"नहीं हुकम! कुछ मत फरमाइये आप। मेरे मन में कभी किसी के लिए रोष नहीं आया। मनुष्य अपने कर्मों का ही फल भोगता है। दूसरा कोई भी उसे दु:ख या सुख नहीं दे सकता, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। आप निश्चिंत रहें। भगवान कभी किसी का बुरा नहीं करते। उसके विधान में सबका हित, सबका मंगल ही छिपा होता है।" मीरा ने स्नेह से सास को ह्रदय से लगाया तथा प्रणाम कर चलने की आज्ञा माँगी।

मीरा राजमाता जी के महल से निकल दास दासियों को यथायोग्य अभिवादन करती पालकी में आ बैठी। सब मुक्त कण्ठ से मीरा की प्रशंसा कर रहे थे। तभी ननद उदयकुँवर बाईसा उसके चरणों से आकर लिपट गई तो मीरा ने उसे ह्रदय से लगा आश्वस्त किया।

"भाभी म्हाँरा! मैं आपकी हूँ, आप मुझे भूल मत जाइयेगा। मेरे ठाकुर जी तो आप ही हो। मैं किसी और को नहीं जानती।" रोते-रोते उदा ने कहा। "धैर्य रखिये। आप म्हाँरा और म्हूँ आपरी हूँ बाईसा। थाप मारने से पानी अलग नहीं हो जाता। पर मनुष्य की शक्ति कितनी? आप उस सर्व समर्थ ठाकुर जी पर विश्वास कीजिए, उनके चरणों में मन लगाईये, उसके नाम का आश्रय लीजिए।" मीरा ने समझाया। उदयकुँवर मुँह ढाँप कर जैसे ही एक तरफ हुई तभी कुमकुम आकर मीरा के चरणों में पड़ गई। उसकी आँखों से झरता जल मीरा के पाँव पखारने लगा।

"उठो, तुम पर तो बहुत कृपा की है प्रभु ने। अपनी दृष्टि संसार

और इसके सुखों की ओर नहीं, प्रभु की ओर रखना। मन के सभी परदे उनके सामने खोल देना। ह्रदय में उनसे छिपा कुछ रह न जाए, यह ध्यान रखना।"

मीरा की पालकी भोजराज के बनवाये हुये मन्दिर की ओर चली प्रभु के दर्शन कर जब वह प्रांगण में खड़ी हुईं तो उसे प्राण प्रतिष्ठा का वो दिन स्मरण हो आया जब वह भोजराज के साथ पूजा के लिए बैठी थीं - "कैसा अनोखा व्यक्तित्व था भोजराज का ! लोगों के अपवाद, मुखर जिह्वायें उनके पलकें उठाकर देखते ही तालू से चिपक जाती थीं। तन और मन की सारी उमंग, सारे उत्साह को मेरी प्रसन्नता पर न्यौछावर करने वाले हे महावीर नरसिंह! प्रभु आपके मानव जीवन का चरम फल बख्शेंगें।" उसे ज्ञात ही नहीं हुआ कि कब उसकी आँखों से नीर बहने लगा। आँसू पौंछ वे नीचे झुकी और प्रागंण की रज उठा मीरा ने सीस चढ़ाई। "कितने संतों, भक्तों की चरण रज है यह।"

जोशीजी ने मीरा को चरणामृत दिया तो उसने ठाकुर जी की पूजा सेवा का प्रबन्ध ठीक से रखने की प्रार्थना की। बाहर आते उसे नन्हें देवर उदयसिंह मिल गये तो उसे दुलार कर उसके सिर पर हाथ रखा। मन्दिर से मिले प्रसाद की कणिका मुख में रख थोड़ा उदयसिंह के मुख में डाला। बाकी प्रसाद उसकी धाय पन्ना राजपूत को दे कर कहा, "बड़े से बड़ा मूल्य चुका कर भी इस वट बीज की रक्षा करना। कल यह विशाल घना वृक्ष बनकर मेवाड़ को छाया देगा।"

ब्राह्मणों को दान, गरीबों को अन्न वस्त्र दे मीरा पालकी में सवार हुई - मानों चित्तौड़ का जीवंत सौभाग्य विदा हो रहा हो। कुछ स्त्रियाँ विदाई के गीत गाती साथ चली पर मीरा ने सबको समझा बुझा कर लौटाया। महराणा और उमराव नगर के बाहर तक पहुँचाने पधारे। सवारी ठहरने पर महराणा विक्रमादित्य पालकी के समीप पहुँचे। हाथ जोड़कर वह झुके और बोले; "खम्माधणी!"

मीरा ने हँसकर हाथ जोड़े; "सदा के लिए विदा दीजिये अपनी इस खोटी भौजाई को। अब ये आपको कष्ट देने पुन: हाज़िर नहीं होगी। मुझसे जाने अन्जाने में जो अपराध बने हो, उनके लिए क्षमा बख्शावें!"

महाराणा घबराकर बोल उठे, "ये क्या फरमाती हैं भाभी म्हाँरा ! कुल कान की खातिर, जो कुछ कभी कभार अर्ज कर देता था, उसके

लिए मुझे ही क्षमा मांगनी चाहिए।"

"भगवान आपको सुमति बख्शे!" मीरा ने हाथ जोड़े, "मेरे मन में कभी आपका कोई कार्य अथवा बात अपराध जैसी लगी ही नहीं। फिर माफी कैसी लालजीसा! यह राज जैसे अन्नदाता हुकम चलाते थे, वैसे ही आप भी चलायें ,यही सब की कामना है।

मुकुन्द दास और श्यामकुँवर ने भी सबसे विदा ली। मीरा की कुछ दासियाँ सपरिवार साथ थी हीं। जो साथ नहीं चल सकते थे, जिनकी जड़े अब चित्तौड़ में जम चुकी थीं, उन्हें मीरा ने स्नेह से समझा कर वापिस भेजा। किन्तु संतों और यात्रियों की टोली तो साथ ही चली।

मीरा का लक्ष्य उसे अपनी तरफ़ पुकार रहा था। वह धीरे-धीरे पिछलें रिश्तों को सम्मान देकर आगे बढ़ने लगी......... उसके ह्रदय में कहीं दूर से एक ही संगीत ध्वनि सुनाई दे रही थी ....

चालाँ वाही देस...........

तीस वर्ष की आयु में मीरा ने चित्तौड़ का परित्याग करके पुनः मेड़ता में निवास किया। उसके हितैषी स्वजनों, चाकरों और दासियों को मानों बिन माँगे वरदान मिला। हर्ष और निश्चिन्तता से उनके आशंकित-आतंकित मन खिल उठे। मेड़ते का श्यामकुन्ज पुनः आबाद हुआ। कथा-वार्ता, उत्सव और सत्संग की सीर खुल गई।

मेड़ता का श्याम कुन्ज उत्सव और सत्संग की उल्लास भरी उमंग से एकबार पुनः खिलखिला उठा। किन्तु मीरा के गिरधर गोपाल की योजना कुछ और ही थी। उसके प्राणधन श्यामसुन्दर को अपनी प्रेयसी का अपने धाम से दूर रहना नहीं सुहाता था। मीरा ने चित्तौड़ छोड़ दिया, केवल इतने मात्र से वे संतुष्ट नहीं थे। वे इकलखोर देवता जो ठहरे। उन्हें चाहने वाला दूसरों की आस करें, यह वे तनिक भी सह नहीं पाते। लेना-देना सब का सब पूरा चाहिए उन्हें। जिसे उन्होंने अपना लिया, उसका और कोई अपना रहे ही क्यों? बस ठाकुर जी की इच्छा से राजनैतिक परिस्थितियाँ करवट बदलने लगी।

मीरा के चित्तौड़ त्याग के बाद बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। राजपूत वीरों ने घमासान युद्ध किया पर सफलता नहीं मिल पाई। इस युद्ध में बत्तीस हजार राजपूत वीरगति को प्राप्त हुये और तेरह

हजार स्त्रियाँ राजमाता हाड़ीजी के साथ जौहर की ज्वाला में कूदकर स्वाहा हो गईं। इन्हीं बीच पासवान पुत्र वनवीर की राज्य-लिप्सा बढ़ चली और उसने एक रात महाराणा विक्रमादित्य को तलवार से मार डाला। राज्य को अकंटक बनाने की लोलुपता में वह वनवीर तो महाराणा के छोटे भाई उदयसिंह को भी मार डालना चाहता था, परन्तु पन्ना धाय ने अपने पुत्र की बलि देकर उदयसिंह के प्राणों की रक्षा की।

उधर मेड़ता की स्थिति भी अच्छी नहीं थी, उस पर भी भीषण विपत्ति टूट पड़ी। मीरा को मेड़ता आये हुये अभी दो वर्ष ही हुये थे कि जोधपुर के मालदेव ने मेड़ता पर चढ़ाई कर दी। सामन्तों के समझाया, "परस्पर में व्यर्थ का संघर्ष उचित नहीं। जब उनका आवेश शांत हो जायेगा, तब हम सब लोग उन्हें समझा कर आपको मेड़ता वापिस दिलवा देंगे।" सरल ह्रदय वीरमदेव जी उन सामन्तों पर विश्वास करके मेड़ता छोड़ अजमेर आ गये, और वहाँ से नराणा तथा फिर पुष्कर। भाग्य की रेखाएँ वक्र थी जो उनको जगह-जगह भटकना पड़ रहा था। मीराबाई भी परिवार के साथ ही थी।

सन् 1595 में पुष्कर में निवास करते समय मीरा के चिन्तन में मोड़ आया। प्रेरणा देनेवाले भी वही जीवन अराध्य गोपाल ही थे। मीरा सोचने लगी कि दर-दर ठोकर खाने की अपेक्षा यही उचित है कि अपने प्राण-प्रियतम के देश वृन्दावन में वास किया जाए। उसे मन ही मन बड़ी ग्लानि हो रही थी कि ऐसा निश्चय वे अब तक क्यों नहीं कर पाई। कुछ सैनिकों और अपनी दासियों के साथ वह तीर्थ यात्रियों की टोली के संग वृन्दावन की तरफ़ चल पड़ी ....

"चाला वाही देस" की संगीत लहरियाँ उसके ह्रदय में हिलोर लेने लगीं। आज उसका एक-एक स्वप्न साकार रूप लेने को तैयार था। वह बार बार वृन्दावन नाम का उच्चारण मन ही मन करते पुलकित हो उठती ..... उसकी भावनाओं को पंख से लग गये थे ......वह आज अपने प्रियतम गिरधरलाल के देस जा रही थी और उनके लिए आज उनकी बैरागन बनना ही उसका सौभाग्य था ....

बाला मैं बैरागन हूँगी।
जिन भेषाँ मेरो साहिब रीझो सो ही भेष धरूँगी॥

कहो तो कसूमल साड़ी रँगावाँ, कहो तो भगवा भेस॥
कहो तो मोतियन माँग पुरावाँ, कहो छिटकावा केस॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिड़द नरेस॥

मीरा की अपने प्रियतम के देश, अपने देश पहुँचने की सोयी हुई लालसा मानों ह्रदय का बाँध तोड़कर गगन छूने लगी। ज्यों-ज्यों वृन्दावन निकट आता जाता था, मीरा के ह्रदय का आवेग अदम्य होता जाता। कठिन प्रयास से वे स्वयं को थाम रही थी। उसके बड़े-बड़े नेत्र आसपास के वनों में अपने प्राण आराध्य की खोज में इधर-उधर चंचलता से परिक्रमा सी करने लगते। मानों वहीं कहीं श्यामसुन्दर वंशीवादन करते हुये किसी वृक्ष के नीचे खड़े दिख जायेंगे।

मीरा बार-बार पालकी, रथ रूकवाकर बिना पदत्राण (खड़ाऊँ) पहने पैदल चलने लगती। बड़ी कठिनाई से चम्पा, चमेली केसर आदि उन्हें समझा कर मनुहार कर के यह भय दिखा पाती कि अभ्यास न होने से वह धीरे चल रही हैं और अन्तःत साथ में चल रहे सब यात्रियों को असुविधा होती है। इसके बाद भी मीरा पैदल चलने से विरत नहीं हो रही थीं। उनके पद छिल गये थे, उनमें छाले उभरकर फूट गये थे, किन्तु वह इन सब कष्टों से बेखबर थी। दासियों, सेवकों की आँखें भर आती। मीरा हँसकर उन सभी को अपनी सौगन्ध दे रथ पर या गाड़ी पर बैठा देती।

मीरा भजन गाती, करताल बजाती चल रही है, किन्तु दासियों को केवल वह रक्त छाप दिखाई देती है, और उसके प्रत्येक पद पर उनके ह्रदय कराह उठते। जब उनकी यह पीड़ा असहनीय हो गयी तो चम्पा रथ से कूद पड़ी और स्वामिनी के चरणों से लिपट गयी।

"मुझसे जो भी अपराध हुए हों बाईसा हुकम! इतनी कठिन सजा मत दीजिये कि अभागिनी चम्पा सह न सके। हम पर दया करें स्वामिनी ...दया करें ....।" वह अचेत सी हो स्वामिनी के चरणों में लुढ़क गयी।

"क्या हुआ तुझे?" कहती हुई मीरा नीचे बैठ गयीं। चम्पा को गोद में भरकर उसके आँसू पोंछती बोली। "अपने पदतल तो देखिए बाईसा हुकम!" चमेली ने जैसे ही मीरा के पाँव को छुआ मीरा की दर्द से हल्की सी कराह निकल गई।

"में तो ठीक हूँ पगली तुम क्यों घबरायीं? यदि कुछ हुआ भी तो सार्थक हुआ ये मांस पिंड, प्रभु के धाम की तरफ़ चलने से। हानि क्या हुई भला?"

"हानि तो हमारी हुई है हुकम! हम अभागिनियों को, जो सदा सेवा की अभ्यासी हैं उनको तो सवारी पर चढ़ने की आज्ञा हुईं और हमारी सुमन सुकुमारी स्वामिनी पांवों से चलें, हम उनके घावों से रक्त बहता देखें और सवारी का सुख लें, इससे बड़ा दण्ड तो यमराज की शासन पुस्तिका में भी नहीं होगा।" चम्पा के इस कथन के साथ ही सभी बरबस हो जोर से रो पड़ी।

जो यात्री यह दृश्य देख रहे थे, वे भी अपने आँसू रोक नहीं सके। रात होने पर, पड़ाव के खेमें में, जब चमेली मीरा के घायल तलवों पर औषध लेप लगाने लगी, तब भी मीरा का एक ही आग्रह था, "जा! अरे, यह सब छोड़! जा, जरा किसी यात्री से पूछकर तो आ कि वृन्दावन अब कितनी दूर रह गया है?" वृन्दावन समीप जानकर एकदम से चलने को उद्यत हो उठती। जो यात्री पहले वृन्दावन गये थे, उन्हें बुलवाकर दूरी पूछती, वहाँ के घाट, वन और कुन्जों का विवरण पूछती, यमुना, गोवर्धन और मन्दिरों का हाल पूछती, वहाँ की महिमा कभी स्वयं बखान करती और कभी दूसरों के मुख से सुनती।

सुबह, जब सब यात्रियों की टोली चली तो मीरा के पाँव मन की गति पा उड़ने से लगे। उसका पुलकित ह्रदय शब्दों में आनन्द उड़ेलने लगा ....

चलो मन गंगा -जमना तीर॥
गंगा - जमना, निरमल पाणी सीतल होत सरीर।
बंसी बजावत गावत कान्हो संग लियाँ बलबीर॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै कुण्डल झलकत हीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल पर सीर॥

कहीं एक साथ नदी, पर्वत और वन देखती तो मीरा को वृन्दावन की स्फुरणा हो आती। वह गाती-नृत्य करती और प्रणिपात (प्रणाम) करने लग जाती। दासियाँ पद-पद पर मीरा की संभाल करती। बहुत कठिनाई से समझा पाती - "बाईसा! अभी वृन्दावन थोड़ी दूर है.......।

ब्रज की सीमा पर पहुँच कर यात्रा रोक देनी पड़ी। मीरा धरा पर लोट ही गई। अपना घर.......अपना देस देखते ही उसके संयम के बाँध टूट गये। विवेक तो जैसे प्रेम से प्रताड़ित होकर कहीं जा दुबका। आँखों से बहती गंगा-यमुना ब्रजभूमि का अभिषेक करने लगी। सारी देह धूलि धूसरित हो उठी। थोड़ी देर तक मीरा को दासियों ने कठिनाई से सम्भाला। सन्धया होते-होते सबने वृन्दावन में प्रवेश किया। मीरा और उसके दास दासियाँ यात्री दल से यहाँ से पृथक हो गये और वृन्दावन में प्रथम रात्रि वास उन्होंने श्री श्यामसुन्दर की लीला स्थली ब्रह्म कुण्ड पर किया।

ब्रह्म कुण्ड पर वह रात्रि पर्यन्त निरन्तर अस्पष्ट कण्ठ से अपने प्राणप्रियतम को पुकारती, निहोरा करने लगीं। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह प्रकृतिस्थ नहीं हुईं। किसी प्रकार भी उन्हें दो कौर अन्न और दो घूँट पानी नहीं पिलाया जा सका। अपनी प्रेम दीवानी स्वामिनी को घेरकर दासियाँ सारी रात संकीर्तन करती रही।

चम्पा ने किसी को डाँटकर तो किसी को प्यार से भोजन करने को समझाया - "चाहे मन हो या न हो पर स्वयं को सेवा के लिये स्वस्थ रखने के लिए हमें इस देह को पुष्ट रखना है। अन्यथा हमारा सेवक धर्म कलंकित होगा।"

प्रातः होते ही मीरा ने यमुना-स्नान की रट लगा ली। यमुना अभी दूर है, कहकर उन्हें पालकी पर चढ़ाया गया। चम्पा साथ बैठी। लेकिन मीरा के ह्रदय में इतनी त्वरा थी कि बैठे रहना उसे सुहा नहीं रहा था। वह जिद कर फिर उतर पड़ी - "कि निज घर में भी कोई पालकी में सवार होता है भला ? ब्रजरज का तो जितना हम स्पर्श पाये उतना ही हमारा सौभाग्य है।"

"वृन्दावन धाम! यह तो है ही प्रेम-परवश प्राणों का आधार, उनके ह्रदय सर्वस्व की लीलास्थली, रसिकों का निवास-स्थल। दूर-दूर से प्यासे प्राण इस लीलाधाम को ताकते हुये चले आते हैं। बड़े-बड़े राजाओं के मुकुट यहाँ धूल में लोटते नजर आते हैं। महान दिग्विजयी विद्वान रजस्नान करके वृक्षों से लिपटकर आँसू बहाते हुये दिखते हैं। कहीं नेत्र मूँदे हुये आँसू बहाते, प्रकम्पित पुलकित देह, किसी घाट पर या किसी

वृक्ष की छाया में, या किसी एकान्त कुटिया में प्रेमी जन लीला दर्शन सुख में निमग्न है। जिस वृन्दावन की महिमा महात्मय के वर्णन में स्वयं ब्रजराजकिशोर अपने को असमर्थ पाते है, उसे मैं मूढ़ शुष्क ह्रदय कैसे कहूँ?"

सेवाकुन्ज के पीछे की गली में एक घर लेकर दो सेवकों और तीन दासियों के साथ मीरा रहने लगी। यद्यपि वह प्रारम्भ से ही नहीं चाहती थी कि वृन्दावन यात्रा में कोई भी उसके साथ आये, पर जिन्होंने अपनी जिंदगी की डोर उसके चरणों में उलझा दी थी, उन्हें वह कैसे पीछे छोड़ आती?

वृन्दावन में मीरा का मन पहले से ही रमा हुआ था। फिर भक्ति में स्वछन्दता, किसी भी तरह की व्यवहारिकता से परे का वातावरण, कोई बन्दिश नहीं मानों मीरा की प्रेम भक्ति को उड़ने के लिये विस्तृत आकाश मिल गया हो। उसे वृन्दावन में हुई ठाकुर जी की लीलाओं की स्मृति अनायास ही हो आती। कभी ठाकुर की गोपियों से छेड़छाड़ की लीला तो कभी माधुर्य भाव की लीला। वह उन भावों को संगीत में स्वभाविक ही बाँध देती...........

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना॥
ले मटकी सिर चली गुजरिया। आगे मिले बाबा नन्द जी के छोना॥
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी। "ले लेहु री कोउ स्याम सलोना॥
बिंद्राबन की कुंज गलिन में। आँख लगाय गयो मनमोहना॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। सुन्दर स्याम सुघर रस लोना॥

मीरा का आवास स्थान सेवाकुन्ज के समीप ही गली में ही था। सेवाकुन्ज तो स्वयं सिद्ध पीठ है मानो तो जैसे वृन्दावन का ह्रदय, प्रियालाल जी की नित्य रास स्थली। फिर पास में श्री यमुना महारानी जो प्रियालाल जी की नित्य रसकेलि की चिर साक्षी है। चारों तरफ मन्दिर, सत्संग-मीरा का उत्साह तो पल-पल में उफान ले रहा था। वह किसी दूसरे ही जगत में थी। वृन्दावन वास के दिवा निशि भी इस जगत के कहाँ थे? मीरा को कुछ खाने-पीने की भी सुध कहाँ थी? पर हाँ ....उसकी आत्मा अवश्य पुष्ट हो रही थी।

मीरा की ऐसी स्थिति में अन्दर बाहर का सारा कार्य दासियाँ ही

संभाल रही थी। चमेली बाई अपने पति शंकर और केसर बाई अपने पति केशव को साथ लेकर वृन्दावन के लिए प्रस्थान करते समय मीरा के पीछे चल दी थी। चमेली के कोई सन्तान नहीं थी और केसर ने अपना एकमात्र पुत्र गोमती को सौंपा। जब केसरबाई स्वामिनी के पीछे-पीछे चली तो केशव भी चला आया। मीरा ने जब केसर के पुत्र गोविन्द को माँ के लिए रोते देखा तो केसर से लौट जाने को बहुत आग्रह किया। पर केसर ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया -"माँ बाप ने सरकार के विवाह के समय मुझे इन चरणों में सौंपा था। सेवा में पटु न होने पर भी ऐसा क्या महान अपराध बन पड़ा हुकम कि इस दासी को आप अनाथ कर रही हैं? बस एक अनुरोध है, वृन्दावन में आप जहाँ भी रहेंगी, मैं आपके दूर से ही दर्शन कर लिया करूँगी। बस, इतनी नियामत बख्शें आप इस किंकरी को!" चमेली ने भी कहा "वहाँ तो सब सीधे-सीधे मिलेगा नहीं। चम्पा श्री चरणों की सेवा करेगी, तो मैं और केसर लकड़ी लाना, आटा पीसना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना बुहारी लगाना आदि कार्य संभाल लेंगी। इतना जीवन आपकी सेवा में बीता है तो बाकी का क्यों अभिशाप बनें?" मीरा दोनों की सेवाभावना से निरूत्तर हो गई।

चम्पा ने विवाह किया ही नहीं था। वह मीरा की दासी ही नहीं, अंतरंग सखी भी थी, उसके भावों की वाहिका, अनुगामिनी, अनुचरी। कभी-कभी जब अंतरंग भावों की चर्चा होती तो उसके भावों की उत्कृष्टता देखकर मीरा चकित हो उठती। चम्पा से मीरा को स्वयं चिन्तन में सहायता मिलती। वे पूछतीं, "चम्पा! कहाँ से पा गई तू यह रत्नकोष?" वह हँसती - "सब कुछ इन्हीं चरणों से पाया है सरकार! और किसी को तो जानती नहीं मैं।"

कथा, सत्संग, मन्दिरों के दर्शन, भजन, कीर्तन नृत्य आदि का उल्लास और उत्साह ऐसा था कि मानों परमानन्द सागर में डुबकी-पर-डुबकी लग रही हों। मीरा की भजन ख्याति वृन्दावन में फैलने लगी थी। जिसने भी सुना, वही दौड़ा-दौड़ा आता। आकर कोई तो प्रणाम करता और कोई आशीर्वाद देता। ब्रज के संतों से विचार-विनिमय और भाव चर्चा करके मीरा तीव्रतापूर्वक साधन-सोपानों पर चढ़ने लगी। यद्यपि मीरा स्वयं सिद्धा संत थीं, पर यहाँ इस पथ में भला इति कहाँ है?

मीरा का मन पूर्णतः वृन्दावन में रच बस गया था। उसे कभी

स्मरण भी नहीं होता कि वह प्रारम्भ से यहाँ नहीं थी। उसे वृन्दावन भा गया था और वहाँ की सात्विकता और घर-घर में सहज और स्वभाविक भक्ति देख उसका मन उल्लास से गा उठता..........

आली म्हाँने लागे वृन्दावन नीको।
घर - घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविन्दजी को॥
निरमल नीर बहे जमुना को भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप विराज्या मुकट धर्यो तुलसी को॥
कुंजन - कुंजन फिरूँ साँवरा सबद सुणत मुरली को।

एक दिन किसी से पूज्य श्री जीव गोस्वामी पाद का नाम, उनकी गरिमा, उनकी प्रतिष्ठा सुनकर मीरा उनके दर्शन के लिए पधारी। सेवक के द्वारा उनकी भजन कुटीर में सूचना भेजकर वे बाहर बैठकर प्रतीक्षा करने लगी। सेवक ने कुटिया से बाहर आकर कहा, "गोस्वामी पाद किसी स्त्री का दर्शन नहीं करते। "

मीरा हँस कर खड़ी होते हुये बोलीं, "धन्य हैं श्री गोस्वामी पाद ! मेरा शत-शत प्रणाम निवेदन करके उनसे अर्ज करें कि मुझ अज्ञ दासी से भूल हो गई जो दर्शन के लिए विनती की। मैंने अब तक यही सुना था कि वृन्दावन में पुरूष तो एकमात्र रसिकशेखर ब्रजेन्द्रनन्दन श्री कृष्ण ही हैं। अन्य तो जीव मात्र प्रकृति स्वरूप नारी है। आज मेरी भूल को सुधार करके उन्होंने बड़ी कृपा की। ज्ञात हो गया कि वृन्दावन में कोई दूसरा पुरुष भी है !" अंतिम वाक्य कहते-कहते मीरा ने पीठ फेरकर चलने का उपक्रम किया।

मीरा द्वारा सेवक को कही गई बात भजन कुटीर में बैठे श्री जीव गोस्वामी जी ने सुनी। "कृप्या क्षमा करें मातः !" ऐसा कहते हुए गोस्वामी पाद स्वयं कुटिया से बाहर आये और मीरा के चरणों में प्रणाम किया।

"आप उठें आचार्य!" वे इकतारा एक ओर रखकर हाथ जोड़ते हुये झुकीं - "मैंने तो कोई नई बात नहीं कही प्रभु ! यह तो सर्वविदित सत्य है कि वृन्दावन में पुरुष केवल एक ही है - ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ! और हम सब साधक तो गोपी स्वरूप हैं! बस ऐसा ही संतों के मुख से सुना है।"

"सत्य है, सत्य है ! पर सत्य और सर्वविदित होने पर भी जब तक

हम किसी बात को व्यवहार में नहीं उतारते, जानकारी अधूरी रहती है माँ! और अधूरा ज्ञान अज्ञान से बढ़कर दु:खदायी होता है।" उन्होंने दोनों हाथों से कुटिया की ओर संकेत करते हुये विनम्र स्वर में कहा -"पधार कर दास को कृतार्थ करें।"

"ऐसी बात न फरमायें श्री गोस्वामी पाद! आप तो ब्राह्मण कुल-भूषण ही नहीं, श्री चैतन्य महाप्रभु के लाड़ले परिकर हैं। मेरी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न देह आपकी चरण-रज स्पर्श की अधिकारी है।" कहते हुये मीरा ने झुककर श्री जीव गोस्वामी पाद के चरणों के समीप श्रद्धा से मस्तक रखा। श्री पाद "ना-ना" ही कहते रह गये।

"अब कृपा करके पधारे।" श्री पाद ने अनुरोध किया। "आगे आप, गुरूजनों के पीछे चलना ही उचित है।" मीरा ने मुस्कराते हुये कहा। "मैं तो बालक हूँ। पुत्र तो सदा माँ के आँचल से लगा पीछे-पीछे ही चलता है।" अतिशय विनम्रता से श्री पाद बोले।

इस समय तक कई संत महानुभाव एकत्रित हो गये थे। वे दोनों का विनय-प्रेम-पूर्ण अनुरोध और आग्रह देखकर गदगद हो गये। एक वृद्ध संत के सुझाव पर कुटिया के बाहर चबूतरे पर सब बैठ गये। सबने मीरा से आरम्भ करने का आग्रह किया।

मीरा ने श्री जीव गोस्वामी पाद के इष्ट श्री गौरांग महाप्रभु के सन्यास स्वरूप और अपने इष्ट श्रीकृष्ण के स्वरूप का समन्वय बैठाते हुये स्वभाविक ही एक ऐसे पद का गान कर दिया, जिसका श्रवण कर सब भक्तजनों के प्राण झंकृत हो उठे। इस गान में जहाँ चैतन्य महाप्रभु की जीवमात्र के उद्धार के लिये उनकी करूणा थी वहीं श्रीकृष्ण की वृन्दावन लीला का अति भावपूर्ण चित्रण था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मीरा ने पद गाया तो स्वभावतः ही, पर एक-एक पंक्ति में दोनों लीलाओं का 'गौरलीला' और 'श्रीकृष्ण लीला' का अद्भुत समिश्रण भी था और दोनों लीलाओं के प्रधान गुण-गौरलीला के विरह, करूणा और श्रीकृष्ण लीला की रसिकता भी।

अब तो हरि नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा नाम धर्यो बैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली कित छोड़ी वह गोपी।

मूँड़ मुँड़ाई डोरी कटि बाँधे माथे मोहन टो पी॥
मात जसोमति माखन कारन बाँधै जाके पाँव।
स्यामकिसोर भये नव गौरा चैतन्य जाको नाँव॥
पीताम्बर को भाव दिखावै कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी मीरा रसना कृष्ण बसै॥

सब बैठे हुये भक्त जनों में से कोई ऐसा न था जो श्री गौरांग महाप्रभु की जीवमात्र के उद्धार के लिए करूणा अनुभव कर आँसुओं से अभिषिक्त न हुआ हो। "धन्य हो! साधु! अद्भुत! वाह!" सब संत जनों ने प्रशंसा करते हुये अनुमोदन किया। मीरा ने विनम्रता से सबको प्रणाम किया और श्री जीव गोस्वामी पाद से श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धांत और प्रेम भक्ति के विषय में कुछ सुनाने का आग्रह किया। श्री पाद के साथ अन्य संतों ने भी चर्चा में भाग लिया। एक भक्ति पूर्ण गोष्ठी हो गई। श्री पाद मीरा के विचारों की विशदता, भक्ति की अनन्यता और प्रेम की प्रगाढ़ता से बहुत प्रभावित हुये। पुनः पधारने के आग्रह के साथ कुछ दूर तक मीरा को पहुँचा कर उन्हें विदाई दी।

एक रात्रि मीरा की नींद अचानक से उचट गई। उन्हें लगा कि जैसे कोई खटका सा हुआ है। मिट्टी की दीवारों और खपरैल की छत से बने इस साधारण से कक्ष में भूमि पर ही मीरा के सोने का बिछौना था। पैरों की ओर तीनों दासियाँ सोयी हुईं थी। दोनों सेवक आगे वाले दूसरे कक्ष में थे। अंधेरे से अभ्यसत हो जाने में आँखों को दो क्षण लगे।

मीरा ने देखा कि चम्पा अपनी शय्या से उठ खड़ी हुई है, किन्तु क्या यह वही उनकी प्रिय दासी और सखी चम्पा है? हाँ और नहीं भी। वृन्दावन आते समय उनके स्वयं की और दासियों की देह पर एक भी अलंकार नहीं था। सबके वस्त्र सादे और साधारण किस्म के थे, किन्तु इस समय तो चम्पा दिव्य रत्न जड़ित वस्त्र आभूषणों से अलंकृत खड़ी थी। वैसे भी चम्पा गौरवर्णा थी, किन्तु इस समय उसका वर्ण स्वर्ण चम्पा के समान था। उसका गुजरिया के समान ऊँचा घेरदार घाघरा, कंचुकी और ओढ़नी, पैरों में मोटे घुँघरू के नूपुर गूँथे छड़े, हाथों में मोटे-मोटे स्वर्ण कंगनों के बीच हीरक जटित चूड़ियाँ थीं, उसके मुख की शोभा के सम्मुख मीरा का अपना सौन्दर्य फीका लग रहा था। उसके नेत्रों में कैसी सरलता..।

मीरा ने देखा कि चम्पा उसकी ओर बढ़ी उसकी प्रथम पदक्षेप से नुपूरों की क्षीण मधुर झंकार ने ही उन्हें जगाया था। दो पद आगे बढ़कर वह नीचे झुकी और मीरा का हाथ थामकर बोली - "माधवी! उठ चल!"

मीरा चकित रह गई। चम्पा सदा उन्हें आदरपूर्ण शब्दों से सम्बोधित करती रही है। यद्यपि मीरा उसे दासी से अधिक सखी मानती थीं, पर उसने अपने को दासी से अधिक कभी कुछ नहीं समझा। वही चम्पा आज इस प्रकार बोल रही है और यह माधवी कौन है? क्षण भर में ये सब विचार उसके मस्तिष्क में घूम गये।

चम्पा ने फिर उसे उठने का संकेत किया तो वह उठकर खड़ी हो गई। मीरा ने कुछ कहना चाहा तो, चम्पा ने अपनी सुन्दर अंगूठी से विभूषित तर्जनी अंगुली को अपने अरूण अधरों पर धरकर चुप रहने का संकेत किया। ऐसा लगता था कि इस समय चम्पा स्वामिनी है और मीरा मात्र दासी। वे दोनों धीरे-धीरे चलकर द्वार के समीप आईं। अपने आप रूद्ध द्वार-कपाट उदघाटित हो गये और वे दोनों बाहर आ गईं।

मीरा ने देखा कि जिस वृन्दावन में वह रहती है, घूमती है, यह वैसा नहीं है। वृक्ष, लता, पुष्प सब दिव्य हैं। पवन, धरा और गगन भी दिव्य हैं। इस सबकी उपमा कैसे दें? क्योंकि यह सब इस जगत का नहीं बल्कि सब दिव्य, आलौकिक है। हवा चलती है तो ऐसा लगता है कि जैसे कानों के समीप मानों चुपके-चुपके कोई भगवन्नाम ले रहा हो। वृक्षों के पत्ते हिलते हैं तो मानों कीर्तन के शब्द मुखरित होते हैं। रात्रि होने पर भी भंवरे गुनगुना रहे हैं और वह गुनगुनाहट और कुछ नहीं भगवन्नाममयी ही है। तनिक ध्यान देने पर लगता है कि सम्पूर्ण प्रकृति श्री राधा-माधव-प्रेम-रस में निमग्न है।

सघन वन पार कर के वे दोनों गिरिराज की तरहटी में पहुँचीं। गिरिराज की नाना रत्नमयी शिलाओं से प्रकाश विकीर्ण हो रहा था। तरहटी में कदम्ब वृक्षों से घिरा हुआ निकुञ्ज भवन दिखाई दिया। कैसा आश्चर्य? इस भवन की भीतियाँ, वातायन (खिड़कियाँ एवं रोशनदान) आदि सब कुछ कमल, मालती, चमेली और मोगरे के पुष्पों से निर्मित है। गिरिराज जी का दर्शन करते ही मीरा को कुछ देखा-देखा सा लगा ऐसा लगता था मानों उसकी स्मृति पर हल्का सा पतला पर्दा पड़ा हुआ है। अभी याद आया, अभी याद आया की ऊहापोह में वह चलती

गई..........।

दिव्य वृन्दावन की एक दिव्य रात्रि में चम्पा और मीरा गिरिराज जी की तरहटी में पहुँची है। पुष्पों से निर्मित एक निकुञ्ज द्वार पर पहुँच मीरा को सब वातावरण पहले से ही पहचाना सा ही लग रहा है।

निकुञ्ज द्वार पर खड़ी एक रूपसी ने चम्पा को अतिशय स्नेह के साथ आलिंगन करते हुए पूछा, "अरे चम्पा! आ गई तू?" "क्यों बहुत दिन हो गये न ?" चम्पा ने भी उतने ही स्नेह से गले लगे हुये कहा। "नहीं अधिक कहाँ? अभी कल परसों ही तो गई थी तू? यह कौन? माधवी है न ?" माधवी? यह सब मुझे माधवी क्यों कहते हैं? मीरा के अन्तर में एक क्षण के लिए यह विचार आया और फिर जैसे बुद्धि लुप्त हो गई हो।

"श्री किशोरीजू, श्री श्यामसुन्दर ....! चम्पा ने बात अधूरी छोड़ कर उसकी ओर देखा। "आओ न! भीतर तुम दोनों की ही प्रतीक्षा हो रही है। मैं तो तुम्हारी अगवानी के लिए ही यहाँ खड़ी थी।"

"चलो रूप! कल और आज दो ही दिन में ऐसा लगता है कि मानों दो युग बीत गये हों। पर बताओ कि प्रियालाल जी प्रसन्न तो हैं न?" चम्पा रूप के साथ चलते हुये बोली।

"हाँ! दोनों बहुत प्रसन्न हैं। किशोरीजू तो तुम्हारे त्याग और प्रेम की प्रशंसा करती रहती हैं।" "मेरी क्या प्रशंसा रूप! और क्या त्याग? हमारे प्राणधन श्यामसुन्दर और प्राणेश्वरी श्री किशोरीजू जिसमें प्रसन्न रहे वही हमारा सर्वस्व है।" इन्हें आते देख बहुत सी सखियाँ हँसती हुई उठ गईं - "चलो! भीतर किशोरीजू प्रतीक्षा कर रही हैं।"

अगले कक्ष में प्रवेश करते ही जैसे मीरा, मीरा न रही। प्रेम पीयूष से उसका ह्रदय यों ही सदा छलकता रहता था, पर आज इस क्षण तो जैसे उसका रोम-रोम रस-सागर बन गया। सामने विराजित नीलघनद्युति मयूरमुकुटी श्यामसुन्दर और स्वर्ण चम्पकवर्णीया श्री किशोरीजू की दृष्टि उस पर पड़ने से वह आपा भूल गई। रूप और सौरभ की छटा का दर्शन हो वह मुग्ध सी हो अपना अस्तित्व खो बैठी। नेत्र उस घनश्याम वपु के सौन्दर्य-सिंधु की थाह पाने में असमर्थ-थकित होकर डोलना भूल गये। नासिका सौरभ सिन्धु में खो गई। और कर्ण? तभी आकर्षण की सीमा पार कर वे दीर्घ नेत्र उसकी ओर हुये और कर्णों में मिठास घोलते हुये

बोले - "माधवी! तुझे माधवी कहूँ कि मीरा?" वह कहते हुये हँसे, और उनके शब्दों और हँसी की माधुरी चहुँ दिशा में फैल गई।

श्री किशोरीजू के संकेत पर चम्पा मीरा को लेकर उनके समीप गई। मीरा और चम्पा दोनों ने राशि-राशि के उदगम उन चरणों पर सिर रखा। श्री राधारानी के सौन्दर्य ने तो मीरा की चेतना ही हर ली। जब नेत्र खुले तो प्रियाजी का करकमल उसके मस्तक पर था। मीरा के नेत्रों से आँसुओं की धारायें बह चलीं।

"सुन माधवी!" अतिशय स्नेह से सिक्त सम्बोधन सुन मीरा ने आँसू से भरी आँखें उठाकर ठाकुर की तरफ़ देखा। "सुन माधवी! अभी तेरी देह रहेगी कुछ समय तक संसार में।" उन्होंने कहा।

वह ऐसे चौंक पड़ी मानों जलते हुये अंगारों पर पैर पड़ गया हो। उसने मौन पलकें उठाकर प्रभु की ओर देखा। जैसे पीड़ा का महासागर ही लहरा उठा हो मानों उस दृष्टि में। मीरा ने रूदन स्वर में कहा, "मैं जन्म जन्म की अपराधिनी हूँ, पर आप करूणासागर हो, दया निधान हो, मेरे अपराधों को नहीं, अपनी करूणा को ही देखकर अपनी माधवी को इन चरणों में पड़ी रहने दो। जगत की मीरा को मर जाने दो। अब और विरह नहीं सहा जाता ....नहीं सहा जाता प्रभु।"

मीरा, श्री गिरिराज जी की तरहटी के भीतर पुष्पों से निर्मित निकुञ्ज भवन में प्रियालाल जी के दर्शन पा अतिशय भावुक एवं आनन्दित है। पर एकाएक प्रभु के मुख से अपने संसार में अभी कुछ समय और रहने की बात से मीरा चौंक कर प्रभु से स्वयं को अपने चरणों में स्थान देने के लिए विनती करती हैं।

'माधवी!' प्रभु का कण्ठ भर आया। करुणार्णव प्रभु के नेत्रों से कई बूँदे चरणों में पड़ी मीरा के मस्तक पर गिरी तो चौंककर मीरा ने सिर उठाया। प्रभु की आँखों में आँसू देख मीरा विह्वल हो उठी- अरे, यह मैंने क्या कह दिया? प्रभु को मुझ तुच्छ जीव के लिए यह कष्ट? मीरा ने स्वयं को धिक्कारते हुए मन में सोचा, "यह तो शरणागति की परिभाषा नहीं?"

"मैं रहूँगी-रहूँगी....जो भी आप मेरे लिए निर्धारित करें प्रभु, वही रह लूँगी; प्रभु, आप प्रसन्न रहें, आपके निर्णय में, न्याय में ही मेरी प्रसन्नता और मंगल निहित है प्रभु!" मीरा ने झट से आँचल से अपने आँसू प्रभु से छिपाते हुये कहा।

श्यामसुन्दर मधुर स्वर से फिर बोले, "प्राकृत देह से, यहाँ मेरी कृपा के बिना कोई प्रवेश नहीं कर सकता माधवी! यहाँ केवल भावदेह अथवा चिन्मयदेह का ही प्रवेश हो पाता हैं। परन्तु माधवी अब तुम्हारी देह पूर्णत: प्राकृत नहीं रही। यहाँ प्रवेश पाकर अब यह देह आलौकिक हो गयी है। देखने में भले ही साधारण लगे, पर माधवी अब तुम्हारी देह को ना अग्नि जला सकती है, ना जल डुबा सकता है, ना पवन सुखा सकता है। वर्षों तक पड़ी रहने पर भी यह देह विकृत नहीं होगी। तेरी यह देह धरा पर पड़े रहने के योग्य नहीं हैं किन्तु.......

"किन्तु क्या मेरे प्रभु! अपनी सेविका से क्या संकोच? जो भी हो निःसंकोच कहिये। दासी वही करेगी, जो प्राणसंजीवन को प्रिय हो।"

"संसार में रहकर कुछ वर्षो तक भक्ति भागीरथी - प्रवाहित कर, माधवी! तेरी आलौकिक प्रीति, भक्ति, विरक्ति, और प्राण-परित्याग-लीला को देखकर घोर कलिकाल में भी भक्ति की और लोग आकर्षित होंगें। मीरा तुम्हारा नाम पढ़-सुनकर के लोग कठिन से कठिन यातना सहकर भी भक्ति करेंगे। तुम्हारी दृढ़ता उन्हें वैराग्य की असिधार पर चढ़ने की प्रेरणा देगी। लोक-कल्याण के लिए बस कुछ समय और ...!" कहते हुए कंठ भर आया निजजनप्राण श्यामसुंदर का।

"लोक-कल्याण के लिए नहीं प्राणधन! आपकी इच्छा के लिए रहूँगी। जब तक आप चाहेंगे, तब तक रहूँगी। आपकी आज्ञा शिरोधार्य प्रभु! आप मेरी ओर से निश्चिंत रहें और तनिक भी खेद न करें!"- मीरा स्वयं को संभालते हुये घुटनों के बल बैठ गयी

"खेद नहीं माधवी! मुझे स्वयं तेरा वियोग असह्य हो जाता हैं। मैंने ही तो तुझे इस आनंद - सागर से दूर जा पटका। अत्यंत कठोर हूँ मैं!" - ठाकुर रूँधे हुये कण्ठ से बोले।

मीरा श्यामसुन्दर के रतनारे नेत्रों में आँसुओं को फिर से लहराते देख घबरा गई। और फिर बल जुटाकर स्वयं और प्रभु को आश्वासन देते हुये कहने लगी, "जीव अपने ही कर्मों से कष्ट पाता है प्रभु! आपने तो पल -पल मेरी संभाल की है। आपकी कृपा ने ही तो प्रत्येक विपत्ति को फूल बना दिया।" मीरा उठकर जाने को प्रस्तुत हुई। मन-ही-मन मीरा कहने लगी - "इस दिव्य प्रदेश में प्रवेश! अहा! ठाकुर आपकी करुणा की थाह

कहाँ है?"

श्यामसुंदर ने मीरा के दोनों हाथों को अपने हाथ में लिया और पुछा -"कुछ चाहिये, माधवी!" "बस प्रभु! सहन-शक्ति, आपका मधुर नाम और यह आपकी मनोहारी मूर्ति मेरे नयनों में बसी रहे, बस यही ...यही एक अभिलाषा है प्रभु!" मीरा ने कहा।

"यह तो पहले से ही तेरे अधिकार में हैं। मैं और क्या प्रिय करूँ तेरा!" "मुझे भुला ना देना प्रभु!" कहते-कहते मीरा के नेत्र पुन: भर आये। ठाकुर ने स्वयं को संयत कर कहा, "चम्पा अब यही रहेगी।" वह अपनी इच्छा से इतने दिन तुम्हारे साथ रही।"

श्री श्यामसुन्दर की आज्ञा से चम्पा उसी दिव्य वातावरण में ही नित्य निकुञ्ज सेवा में ही रह गई और मीरा उस दिव्य जगत के दर्शन कर अभी कुछ समय और कलियुग में भक्ति भागीरथी प्रवाहित करने हेतु धरती पर ही रहेगी। चम्पा ने सस्नेह मीरा को आलिंगन कर आश्वस्त किया। मीरा ने कृतज्ञता से चम्पा को सिर निवाया और कहा, "आपके मेरे साथ रहने से मुझे बहुत संबल था।"

तभी ठाकुर की स्निग्ध वाणी वातावरण में घुल गई, "ललिते !" तुरन्त ही ललिता सखी श्री राधारानी के कक्ष से उपस्थित हुईं तो ठाकुर ने फिर कहा, "ललिते! माधवी को पहुँचा आ और नित्य प्रति रात्रि इसे साथ लेकर यहाँ की लीला-स्थलियों के दर्शन करा देना। यदा-कदा यहाँ भी लाती रहना।"

"जी! और स्वामिनी जू का आग्रह है कि मैं माधवी को समय, स्थान देखकर पूर्व जीवन की भी स्मृति करा दूँ।" ललिता ने ठाकुर से निवेदन किया। "हाँ! यह उचित होगा।" श्रीकृष्ण ने कहा।

मीरा प्राणधन को प्रणाम कर चली तो जैसे उसके पाँव में किसी ने मनों भार बाँध दिया हो। ऐसे दिव्य निकुञ्ज के साक्षात दर्शन करने के पश्चात, किस का ह्रदय अपने स्वामी स्वामिनी जू से विलग होने पर भारी नहीं होगा? पर वह लीलाधारी की लीला पर आश्चर्य चकित थी कि चम्पा इतने वर्ष उसके साथ रही और वह उसका स्वरूप पहचान न पाई और .... कहाँ मेड़ता .....फिर चित्तौड़ और आज मुझे यहाँ मेरे गन्तव्य नित्य दिव्य वृन्दावन तक पहुँचा कर ....।" मीरा ने चिन्तन धारा को

वहीं विराम दे भरे कण्ठ से ललिता जू से कहा, "एक बार किशोरीजू के दर्शन हो जाते........ !"

"चलो हाँ हाँ क्यूँ नहीं सखी ?" कहकर ललिता उसे निकुञ्ज महल के द्वार की ओर चली। "हे करूणामयी" कहते मीरा ने स्वामिनी जू के अमल धवल चरणों पर अपना मस्तक रख दिया।

"उठ बहिन ! तेरे कलुष का निवारण हुआ।" कहते हुए श्री किशोरीजू ने मीरा के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। "जब तक तुम वृन्दावन में हो, तब तक ललिता तुझे सब कुछ समझायेगी और दिखायेगी। तुम अधीर न होना। श्यामसुन्दर करूणावरूणालय हैं। उनके प्रत्येक विधान में जीव का मंगल ही मंगल निहित है, अतः घबराना नहीं। अन्त में तुम मुझे ही प्राप्त होओगी।" श्री जी ने अपने मुख का सुवासित प्रसादी पान देकर पूछा -"कुछ और चाहिये माधवी?"

"ऐसी उदार स्वामिनी से मैं क्या माँगू, जो सब कुछ देकर भी पूछती हैं कि क्या चाहिये ? अब तो बस मात्र आपकी चरणरज का आश्रय ही चाहिये।" कहते हुए मीरा ने उनके चरणों के नीचे की रज मुठ्ठी में उठाकर अपनी ओढ़नी के छोर में बाँध ली।

प्रातःकाल जब मीरा उठी तो चमेली ने पूछा, "चम्पा कहीं दिखाई नहीं देती बाईसा हुकम! आपको कुछ कहकर गई है?" मीरा की देह और मन में रात के दर्शनों की खुमारी भरी हुई थी। वे कुछ ठीक से सुन नहीं पाईं। पर चम्पा का नाम सुनते ही मीरा ने अपनी ओढ़नी का छोर टटोला। गाँठ खोलकर एक चुटकी रज मुख में डाली और थोड़ी मुख पर, ह्रदय पर मल ली। चमेली समझ नहीं पाई। फिर उसने सोचा -"शायद किसी महात्माजी की चरणरज होगी। पर यह सुबह-सुबह चम्पा कहाँ चली गई?"

मीरा तो उन्मादिनी हो गई। आलौकिक जगत का यूँ साक्षात्कार पाकर कोई फिर स्वयं को कैसे संभाले - लौकिक संसार की उसे कैसे सुध रहे ? मीरा के मानस नेत्रों के समक्ष सारा समय रात्रि के दृश्यों का पुनरावर्तन होता रहता, वह कभी भाव में हँसती, कभी रोती और कभी गाने लगती। उस दिव्य अनिर्वचनीय रूप के दर्शन की स्मृति में मीरा के नेत्रों की पुतलियाँ स्थिर हो जाती, पलकें अपना कार्य भूल जाती। ह्रदय के आनन्द सिन्धु में ज्वार उठने लगता और उसकी उत्ताल तरंगो पर

उसकी अवश देह डूबती उतरती रहती। मीरा आतुरता पूर्वक रात्रि की प्रतीक्षा में रहती और भरी दोपहरी में ही वह चमेली से पूछती - "रात हो गई क्या? अभी तक ललिता क्यों नहीं आई?"

मीरा चमेली को ही ललिता - चम्पा कहकर पुकारती। चमेली की व्यथा का पार नहीं था। वह अपनी स्वामिनी के उन्माद रोग के कारण दुखी होती - "हे भगवान! यह क्या किया तूने? घर से इतनी दूर लाकर इन्हें बीमार कर दिया। अब इस अन्जान जगह में किससे सहायता माँगू? अब इस कठिन घड़ी में यह चम्पा भी न जाने कहाँ चली गई, वह बाईसा को ठीक से समझ लेती थी, अब कहाँ ढूँढ़ूँ उसे?"

वह अपने पति शंकर से किसी वैद्य को, चम्पा को ढूँढ कर लाने को कहती और उसके असफल लौटने पर खूब झगड़ती - "जैसा तुम्हारा नाम है वैसे ही हो गये हो तुम! खाये बिना ही भाँग धतूरे का नशा चढ़ा रहता है तुम्हें।" बीच में ही केसरबाई आकर टोकती - "जीजी! ऐसे धैर्य खोने से काम नहीं चलेगा। तुम सारा क्रोध, दु:ख चिन्ता जीजाजी पर निकाल देती हो। आँधी तूफान की तरह इन पर बरसने से पहले उनकी हालत तो देखो! सारा दिन अन्जान स्थान पर हम सब के लिये मेहनत कर कमा कर लावें कि अब चम्पा को ढूँढे?" और केसर चमेली को समझाते हुये स्वयं भी रोने लगी।

केसर को रोती देख चमेली ने उसे ह्रदय से लगा शांत किया -"क्या करूँ बहन! वहाँ तो हम गढ़ की बड़ी-बड़ी दिवारों के भीतर रहने के आदी थे और बाईसा भी। चित्तौड़ और मेड़ता में तो ये फिर भी बँधी रहती थीं। यहाँ आकर तो जैसे चारों दिशाओं के कपाट खुल गये हों। जहाँ कहीं संत का समाचार पाया कि तम्बूरा उठाकर पधारने लगती हैं। इनके चरण देखे हैं तुमने? जब से यहाँ आई हैं पगरखी तो भूल से भी कभी धारण नहीं की।" फिर स्वयं ही सोचती हुई बोली - "आवेश तो पहले भी इन्हें आता था, पर ऐसा नहीं कि कभी हाथ पाँव लम्बे हो जायें और कभी कछुआ की तरह सिकुड़ कर गठरी हो जायें। बाईसा की हालत देखकर मेरे प्राण सूख जाते हैं।"

चमेली चिन्ता करती हुईं फिर से कहने लगी, "और इसपर एक बात और कि घड़ी-घड़ी में यह बाबा लोग दर्शन को चले आते हैं कहते हुये - "महाभागा मीरा माँ कहाँ है?" "संत शिरोमणि मीरा की जय हो!"

और ये बाबा बाईसा हुकम की दशा नहीं समझते, उन्हें आशीर्वाद नहीं देते, उनकी चिंता करने के बदले उल्टे धन्य हो, धन्य हो कहते इनके चरणों में लोटने लगते हैं, इनकी चरण धूलि सिर पर चढ़ाने लगते हैं। तब तो मुझे लगता है केसर, मैं पागल हो जाऊँगी। इनकी जिस दशा से हम चिंता से सूखी जा रही हैं, वही उनके हर्ष का कारण है। ऐसे में चम्पा होती तो वह संभाल लेती, पर उसे भी अपनी भोली स्वामिनी पर दया नहीं आई जो हम सब को यूँ छोड़कर न जाने कहाँ बैठी है? ....या तो कोई ढंग का वैद्य ही मिल जाता इस परदेस में!" कहते-कहते चमेली का धैर्य टूट गया और वह रोने लगी। उसे यूँ रोते देख केसर, शंकर और किशन की भी आँखें भर आई।

मीरा कक्ष के भीतर अधमुँदे नेत्रों से अपने ह्रदय का विरह गीत में उड़ेल गिरधर को सुना रही थी........

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी .... मेरो दर्द न जाने कोय.....

एक दिन एक वयोवृद्ध, श्वेत वस्त्र पहने, हाथ में कमण्डलु लिए तेजोदीप्त संत पधारे। द्वार से ही उन्होंने पुकार की - "जय जय श्री राधे!" चमेली ने रसोई से उठ कर द्वार खोला तो संत की भव्य, शांत प्रसन्न मुख मुद्रा दर्शन कर चकित रह गई। कण्ठ और भुजाओं में तुलसी जी की माला और नेत्रों से मानों कृपा की वर्षा हो रही हो। ऐसे तेजस्वी संत के तो उसने आज तक दर्शन नहीं किए। शीघ्रता से प्रणाम कर आसन बिछाया, किशन को बुला चरण धुलाये और प्रसाद पाने के लिए करबद्ध प्रार्थना की।

आशीर्वाद देकर संत ने आसन ग्रहण करते हुये पूछा - "हमारी बेटी मीरा कहाँ हैं? हम तो बड़ी दूर से बेटी मीरा का यश श्रवण करके आये हैं।" तब तक किशन शर्बत बना लाया तो संत ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। और फिर मीरा के बारे में पूछा। किशन और चमेली सम्मान पूर्वक संत को भीतर मीरा के मन्दिर वाले कक्ष में ले गये और उन्हें वहीं आसन दिया।

मीरा कक्ष में श्वेत आसन पर नयन मूँदे बैठी है। दाहिनी ओर इकतारा रखा है। वे श्वेत वस्त्र धारण किए हुये है। हाथों की कलाईयों और गले में तुलसी की माला बँधी है। आयु तीस वर्ष पार कर गई है पर

सौन्दर्य ने मानों आयु के चरणों में मेख जड़ दी हो। वे अभी बाईस-पच्चीस वर्ष से अधिक नहीं लगती। शुभ्र ललाट पर गोपी चन्दन की गोल बिन्दी लगी है। काले भँवर सम केशों की मोटी वेणी पीठ से बाँये पाशर्व में होकर बाँये घुटने पर पड़ी है। वेणी नीचे से थोड़ी खुली हुईं है। मुँदी हुई पलकों से दो चार अश्रु बिन्दु झर पड़ते हैं, किन्तु मुख म्लान नहीं है बल्कि अधरों पर एक अनिर्वचनीय मुस्कान है। वे बाह्यज्ञान शून्य है।

संत ने देखा कि कक्ष में साधारण सी चटाई के ऊपर चौकोर गद्दियाँ पड़ी थी और उसके पीछे दीवार पर एक चित्र लगा है, जिसमें श्यामसुन्दर यमुना के तट पर एक चरण पर दूसरा चरण चढ़ाये हाथ में वंशी लिए सामने देखते हुए शिला पर विराजमान हैं। महात्मा चित्र को देखकर मुस्कुराये। मीरा के समक्ष ही दीवार के साथ लगी चौकी पर सुन्दर मखमल के ऊपर गिरधर गोपाल का सिंहासन है। धूप दीप अभी प्रज्वलित था।

चमेली को लगा कि यह संत अवश्य ही बाईसा हुकम को स्वस्थ कर सकते हैं। उसने संत के चरणों में प्रार्थना की -"महाराज ! हमारी स्वामिनी को स्वस्थ कर दो। इनके बिना हम सब जीवित भी मृत के समान हैं। कृपा करें महाराज!" कहते-कहते चमेली का गला रूँध गया। संत ने हँसकर उसके सिर पर हाथ रखा - "चिंता मत कर बेटी ! यह तो पंथ ही ऐसा है कि अपनी सुध नहीं रहती, औरों की कहाँ चले ? ये अभी चैतन्य हुई जाती है। तुम महाभाग्यवान हो जो ऐसी स्वामिनी की सेवा मिली। अपने भक्त की सेवा भी भगवान स्वयं स्वीकार करते हैं।"

उन्होंने आगे बढ़कर मीरा के मस्तक पर हाथ रखकर नेत्र मूँद लिए। दो क्षण पश्चात मीरा की पलकें हिली और धीरे-धीरे उसने नेत्र खोले। मीरा ने संत दर्शन कर स्वभाव वश प्रणाम किया। सामने खड़ी दासियों और सेवकों के तो जैसे प्रसन्नता से प्राण ही लौट आयें हो। मीरा के इंगित करने पर चमेली ने गिरधर गोपाल को भोग लगाकर संत को जिमाया। फिर संत के आग्रह से मीरा और बाकी सब ने भी प्रसाद पाया।

प्रसाद के उपरान्त संत ने हँसते हुए कहा, "बेटी मीरा बड़ी दूर से तुम्हारा यश सुनकर आया हूँ। जो सुना, यहाँ आकर उससे बढ़कर ही पाया। मैं तो तुम्हारी भावधारा में बहने और तुम्हें बहाने आया हूँ।" "पहले आप कुछ फरमायें !" मीरा ने विनम्रता से कहा। "न बेटी ! तुम्हीं कुछ

सुनाओ, इसी आशा में तो कितनी दूर से आया हूँ।

मीरा ने इकतारे के तार को झंकृत किया और आलाप ले गाने लगीं...... गाते-गाते अभी भी उसकी आँखें बीच में मुँद जातीं, राग शिथिल होती तो वह संभाल लेती......

चाकर राखो जी ....स्याम! म्हाँने चाकर राखो जी..

मीरा को गाते देख चमेली ने ढोलक संभाली और केसर ने मञ्जीरे। जहाँ बीच में मीरा का भाव प्रबल हो स्वर शिथिल होता तो संत बीच बीच में सुन्दर आलाप ले उसका साथ देते.......

स्याम म्हाँने चाकर राखो जी॥
चाकर रहस्यूँ बाग लगास्यूँ नित उठ दरसण पास्यूँ।
बिन्दराबन की कुंज गली में गोबिन्द लीला गास्यूँ॥
चाकरी में दरसण पास्यूँ सुमिरण पास्यूँ खरची।
भाव भगति जागीरी पास्यूँ तीनों बाताँ सरसी॥
मोर मुगुट पीताम्बर सोहे गल बैजन्ती माला।
बिन्दराबन में धेनु चरावे मोहन मुरली वाला॥
हरी - हरी नव कुंज लगास्यूँ बीच बीच राखूँ बारी।
साँवरिया रो दरसण पास्यूँ पहर कुसुम्बी सारी॥
जोगी आया जोग करण कूँ तप करणे सन्यासी।
हरी भजन को साधु आया बिन्दराबन रा बासी॥
आधी रात प्रभु दरसण दीन्हा जमना जी रे तीरा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर हिवड़ो घणो अधीरा॥

भजन विश्रमित हुआ तो संत विभोर हो झूमने लगे, नेत्र बँद कर वे दोनों हाथ उठाकर मीरा की गाई पंक्तियों को दोहराने लगे ....

चाकरी में दरसण पास्यूँ सुमिरण पास्यूँ खरची।
भाव भगति जागीरी पास्यूँ तीनूँ बाताँ सरसी॥

तुमने तो बेटी इतनी विनम्रता से अपना दास्य धर्म भी बतला दिया और कितनी चतुराई से अपनी रूचि के अनुसार ठाकुर से अपनी पगार भी माँग ली......वाह......किसी भी भक्त के लिए कितनी शिक्षाप्रद बात

कह डाली, "हे श्यामसुन्दर ! मैं श्री वृन्दावन वास करती हुई, आपके उपवन का ध्यान रखती हुई आपकी सरस, मधुर लीला का गुणगान करूँगी और आप मेरे आपके लिए गये इस कार्य की पगार के रूप में। अपने दर्शन, अपने स्मरण की हाथ में खरची और अपने भाव भक्ति की जागीर बस मुझे दे देना।"

"वाह ! धन्य-धन्य मीरा ! आज मैं धन्य हो गया। वृन्दावन की प्रेममयी धरा और तुम सी प्रेममूर्ति के दर्शन पाकर मैं सचमुच धन्य हो गया।" "ऐसा क्यों फरमाते हैं महाराज! प्रेम भक्ति मैं क्या जानूँ? मुझे तो अपने गिरधरलाल बस अच्छे लगते हैं। उनकी बात करने वाले अच्छे लगते हैं, उनकी चर्चा अच्छी लगती है....बस ठाकुर से सम्बन्धित सभी कुछ अच्छा लगता है। बस क्या अच्छा लगना ही प्रेम होता है?" मीरा ने भोलेपन और सरलता से कहा - "प्रेमी तो आप हैं भगवन! न जाने कहाँ से इस अनधिकारिणी को दर्शन देकर कृतार्थ करने पधारे हैं।"

"बेटी ! जिसके अतिरिक्त तुम्हें कुछ और दिखाई न दे, जिसमें तुम्हारी सारी दिनचर्या, सारे क्रिया कलाप सिमट जायें, उसी का नाम, उसी की सेवा, उसी का चिन्तन ही हर पल भाये - यही तो प्रेम भक्ति है।" संत ने स्नेह से समझाते हुये कहा।

संत की सादगी और अपनत्व ने, उनके आलाप-कण्ठ की गहराई और राग-स्वर की शुद्धता ने मीरा को चकित कर दिया था। मीरा ने सम्मान सहित कहा, "अब तो महाराज हमें भी आप कुछ श्रवण कराईये।"

"क्यूँ थक गई हो बेटा?" संत बोले। "नहीं महाराज! हरि गुणगान से तो थकान उतरती है, चढ़ती नहीं। फिर संतों के दर्शन और सत्संग में तो मेरे प्राण बसते है। यदि पात्र समझे तो कृप्या अपना परिचय दीजिये न बाबा!" "साधु का क्या परिचय पुत्री!" वह सरलता से हँस दिए - "कभी सचमुच आवश्यकता पड़ी तो स्वयं जान जाओगी।" महात्मा फिर हँसे, "तो फिर बेटी एक भजन और सुनाओ! आज मैं तुम्हें अच्छे से थकाये देता हूँ।" "यह सहज सम्भव नहीं है बाबा!" मीरा ने हँसकर उत्तर दिया और कर पल्लव में करताल खड़-खड़ा उठी।

जब एक रूचि के दो लोग मिले तो समय का कहाँ भान रहता है? और जहाँ ठाकुर को प्यार करने वाले मिल जायें तो वहीं सत्संग हो जाता

है। मीरा संत के आग्रह पर पुनः कर-पल्लव में करताल ले आलाप ले नृत्य के लिए खड़ी हो गई।

उसी समय श्री जीव गोस्वामी पाद आ गये। परस्पर नमन के पश्चात उन्होंने वृद्ध संत को प्रणाम किया और केसरबाई के द्वारा बिछाई गद्दी पर बैठ गये। केसर ने मीरा के इंगित पर उनके चरणों में नुपूर बाँधे और वह मंजीरे लेकर चमेली के पास बैठ गई। श्री जीव गोस्वामी पाद सत्संग का जमा जमाया वातावरण पाकर अति आनन्दित हो उठे। मीरा ने गोपी स्वरूप से नृत्य करते हुए श्री श्यामसुन्दर की माधुरी का एक अतिश य भावपूर्ण पद गाया ....

आली रे म्हाँरे नैनन बान पड़ी।
चित्त चढ़ी म्हाँरे माधुरी मूरत हिय बिच आन गड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ अपने भवन खड़ी॥
अटक्या प्राण साँवरी सूरत जीवन मूल जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकाणी लोग कहे बिगड़ी॥
आली री म्हाँरे नैनन बान पड़ी.....

अन्तिम पंक्ति की पुनरावृति करते हुए संत ने कितने ही विभिन्न विभिन्न भावों से सुन्दर आलाप लिए। उनके कण्ठ की सरसता से सब आत्म विभोर हो उठे। मीरा को तो भावावेश हो आया। संत और गोस्वामी जी विभोर-विह्वल थे। मीरा ने बिना रूके नाचते हुए दूसरा शरणागति का पद आरम्भ किया ....

मैं गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ भोर भये उठी आऊँ।
रैण दिना वाँके संग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ ताहि लुभाऊँ॥
जो पहिरावै सो ही पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
म्हाँरी वाँकी प्रीत पुराणी उण बिन पल नू रहाऊँ॥
जहाँ बिठावैं तितही बैठूँ बैचे तो बिक जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार-बार बलि जाऊँ॥

पद-गायन के बीच में ही वृद्ध संत ने ललक करके चमेली के हाथ

से ढोलक ले ली और श्री जीव गोस्वामी पाद ने केसर से मञ्जीरें देने का संकेत किया। दोनों ही उमंग के साथ बजाने लगे। कभी-कभी महात्माजी बीच में लम्बा आलाप लेते और सम पर लाकर छोड़ते ही सब झूम जाते। मीरा भाव के अनुसार मंद, मध्यम और तीव्र गति में नृत्य कर रही थी। उसकी कनक वल्लरी सी कोमल देह और मृदुल मृणाल सी बाहु युगल सुन्दर भावभिव्यक्ति की सार्थकता दर्शा रही थी। मीरा के मुख की दिव्य कान्ति उसके किसी अन्य लोक में होने की साक्षी दे रही थी। नेत्रों की वर्षा कभी थमती और कभी तीव्र होती। कभी मीरा के सुन्दर नयन समर्पण के भावाधिक्य में मुँद जाते और कभी दर्शन के आह्लाद में विस्फुरित हो पलकों को झपकाना भूल जाते। दिनमणि ढ़ल गये तो मीरा ने करताल रखकर संतों को प्रणाम किया।

वृन्दावन में मीरा की प्रेम भक्ति एक नया मोड़ ले रही थी। दिन, या तो सत्संग में बीतता या रात्रि के दर्शन के आनन्द में। मीरा रात्रि होते ही ललिता जू की प्रतीक्षा में सतर्क हो बैठती। वह उनका संकेत पाते ही उठकर चल देती। ललिता जू मीरा को नित्य नवीन लीलास्थली में नव-नव लीला दर्शन कराती। वे लीला-दर्शन के लिए जाती तो रात्रि में ही पर किन्तु लीला यदि दिन की है जैसे धेणु-चारण, कालिय दमन, माखन चोरी, दान लीला, पनघट लीला इन सबका दर्शन करते समय उन्हें दिन ही दिखाई देता। वे भूल जातीं कि अभी अर्धरात्रि में वह शय्या से उठकर आयी हैं। वे केवल देखती ही नहीं, उन लीलाओं में सम्मिलित भी होती। ललिता उन्हें सदा अपने समीप रखती। लीलाओं में श्री किशोरीजू का सरल शान्त भोलापन देखकर वह न्यौछावर हो-हो जाती। श्यामसुन्दर की बात-बात में चतुराई, उनका अपनत्व, ठिठौली और उनका प्रेम मीरा के रग-रग में बस गया। उसका रोम-रोम श्याममय हो गया। सबसे अन्त में देखा मीरा ने अपना माधवी रूप।

ब्रज के ही एक छोटे से गाँव में माधवी रहती है। बचपन में ही उसके पिताजी उसका विवाह नंदीश्वर के सुन्दर से कर देते हैं। विवाह के कुछ समय के उपरान्त माधवी के पिताजी का देहान्त हो जाता है। माधवी माँ के संरक्षण में - उसकी रोक-टोक में ही बड़ी होती है। माधवी बड़ी हो रही है तो बहुत सुन्दर दिखने लगी है। उसकी सुन्दरता की उपमा गाँव वाले लक्ष्मी और गौरी माँ से देते।

नन्दगाँव से माधवी के ससुराल से गौना करवाने का समाचार आया। इधर माधवी की माँ ने सुना कि नंदरायजी के पुत्र श्री कृष्ण की ऐसी मोहिनी है कि जो एकबार देख लेता है, वह बौरा ही हो जाता है। स्त्रियाँ अग-जग कहीं की नहीं रह जाती। केवल उसके दर्शन से ही लोग पागल नहीं होते, जो कदाचित उसकी वाणी अथवा वंशी का स्वर भी कान में पड़ जाये, तब भी तन-मन का विघटन हो जाता है। डरकर मैया बेटी माधवी को शिक्षा देने लगी कि भूलकर भी वह कभी नंदरायजी के उस सलोने सुत को न स्वयं देखे न अपना मुख उसे दिखाये, अन्यथा उसके पातिव्रत्य की मर्यादा भंग हो जायेगी। माँ उसे पतिव्रत धर्म की महिमा एवं मर्यादा सुनाती और उसके भंग होने की हानि भी समझाती। भोली माधवी ने मैया की एक-एक बात एक-एक शिक्षा गाँठ बाँध ली। उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि किसी प्रकार भी वह ब्रज के युवराज। को नहीं देखेगी और न ही स्वयं को देखने देगी।

अंतमें वह दिन भी उदित हुआ। जब कि रथ लेकर उसक पति सुंदर उसे लिवाने आया। जैसा नाम था, वैसा ही सुंदर था सुंदर। समय पर माँ ने एक बार और अपनी शिक्षा की याद दिलायी। सबने आँखों मे आँसू भरकर उसे विदा किया।

रास्ते में पति ने एकाध बार अपने सखा कन्हैया की चर्चा भी की पर माधवी ने कोई उत्साह नहीं दिखाया तो वह चुप हो गया। सुंदर रथ हाँक रहा था और वह रथ में बैठी थी। अगर कोई गाँव पथ में पड़ता तो रथ के पर्दे गिरा दिये जाते। सुंदर बीच-बीच में अपनी मैयाकी, अपने गाँव की व घर की बातें करता जाता और वह चुपचाप बैठी सुनती रहती। एकाएक सुंदरने कहा "देखो! ये हमारे व्रजकी गायें चर रहीं हैं! कन्हैया यहीं कहीं होगा! देखेगा तो अभी दौडा आयेगा!" सुनकर माधवी ने मुख ही नहीं अपने हाथ-पैर अच्छी तरह ढांक लिये। तभी कोई पुकार उठा - "सुंदर! बहू ले आया क्या?" "हाँ भैया!" "भैया! मोंकू भाभीको मोहडो तो दिखाय दे।"

"अरे भैया! पहले मों ते तो तू मिल के हिय को ताप बुझाय दे। सुंदर रथ से कूद पड़ा और दूसरे ही क्षण किसीसे आलिंगनबद्ध हो उठा - "भैया कन्नू रे! ऐसो लगे जुगन बाद मिल्यो तोसौं। तेरी चर्चा हूँ जहाँ न होय, वहाँ विधाता कबहूँ वास न दें।" "अब दिखाये दे मोंकू बहू को

मोहडो।" "कन्नू रे, मैं कहा दिखाऊं? भैया, तूही देख ले। तोसों काह परदो है?"

माधवी को लगा कि एक बालक रथ पर चढ़ गया है - "ऐ भाभी! अपना मोहड़ो तो दिखाय दे।" कहते हुये उसने घूँघट उठाना चाहा। लेकिन माधवी ने कसकर अपना घूँघट पकड़े रखा। मुख तो दूर रहा, अपनी उँगली का पोर भी नहीं देखने दिया।

"मैं काह देखूँ? अब तो तू ही मेरो मुख देखिबे को तरसेगी।" कहते हुए नन्दसुवन रथ से उतर गया। वह स्वर सुनकर माधवी थोड़ी चौंकी, क्योंकि वह स्वर न उसके पति का था और न ही उस बालक का। वह गम्भीर स्वर मानों सत्यता की साक्षी देता - सा ....। अपनी जीत पर माधवी प्रसन्न थी।

दो-तीन दिन बाद उसकी सास उसे नन्दरानी के यहाँ प्रणाम कराने के लिए। नई बहू का मुख देख नन्दरानी बहुत प्रसन्न हुईं, और अति चाव से भूषण-वसन देकर उसका मुख मीठा कराया। अनेक प्रकार के दुलार करते देख उसकी सास ने कहा, "अब तो हमारे कन्हैया को विवाह कर ही दो रानी जू! जब भी उसके किसी सखा का विवाह होता है, तो उसका भी विवाह का चाव बढ़ जाय है।"

"क्या कहू बहिन! मेरी.........।" तभी कन्हाई ने आकर कहा, "मैया! हो मैया! बड़ी जोर की भूख लगी है। कछु खायबे को देय!" फिर अकस्मात नई बहू को देखकर वह पूछ बैठा, "यह कौन की बहू है मैया?" "आ, तोकू याको मोहड़ो दिखाऊँ! कैसो चाँद जैसो मुख है याको! तेरे सखा सुन्दर की बहू है।" मैया ने उन्हें पुकारा।

"अच्छा तो यह सुन्दर की बहू है? अभी नाय मैया! अभी मोंकु सखाओं के साथ कहूँ जानो है।" वे मुड़कर जाने लगे। "अरे लाला! कछु खातो तो जा! तोकू तो भूख लगी थी।" मैया पुकारती रह गई, पर वे न रूके।

"न जाने याको कहा सरम लगी! नयी दुल्हन को मुख देखने को तो यह सदा आतुर रहता है। आज कान्हा को जी अच्छा नहीं है शायद!" माँ ने अनमनी होकर कहा।

माधवी गोचारण का समय होते ही भीतरी कोठे में चली जाती। कानों में अंगुली दे देती ताकि वंशी का नाद उसे सुनाई न पड़े। फिर ऐसे

ही वह सांझ को करती। जल भरने भी उस समय जाती जब घाट सूना होता। पर घर में तो सबको, घर में ही क्यों ब्रज भर के सभी जनों को कृष्ण के गुणगान का व्यसन था। वह अपने गृहकार्य में लगी रहती और मन ही मन हँसती-कैसे हैं ये लोग? सब के सब एक कृष्ण के पीछे बावरे हो रही हैं। वह बार-बार अपनी मैया की शिक्षा याद करके अपने पतिव्रत धर्म की सावधानी से रक्षा करती।

माधवी की सास कहती- 'पहले तो नंदलाला रोज घर आता। कुछ-न-कुछ माँग कर खाता, सुंदर के साथ खेलता, मुझसे और सुंदर से बतियाता, पर जबसे बहू आई है, ऐसा लजाने लगा है कि बुलाने पर भी नहीं आता। बहू को भी ऐसी लाज लगती है कि कन्हैया के आने की भनक लगते ही दौड़कर भीतरी कोठे में पहुँच जाती है। "अरे, बावरी! लाला से कहा लाज? वह तो अपनो ही है।"

इसी तरह कुछ समय व्यतीत हुआ। इन्द्रयाग के स्थान पर गिरिराजजी की पूजा हुई। पूजा-परिक्रमा के समय भी माधवी ऐसी ही सावधान रही कि आँखों की पलकें झुकाये ही रहती। माधवी की ठाकुर के प्रति ऐसी बेरूखी और बेगानापन देख, इधर मीरा की आँखों से झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी - "आह! कैसी प्राणघाती शिक्षा मैया की और कैसी मूढ़ता मेरी?"

ललिता माधवी को गिरिराज के चरण-प्रान्त में ले गयी। माधवी ने देखा, इन्द्र के कॉप से घनघोर वर्षा और उपल-वृष्टि आरम्भ हुई। मानव, पशु सब अति बेहाल! ऐसा प्रतीत होता मानो प्रलय उपस्थित हो गया हो। किसी को किसी भी ओर से त्राण (रास्ता) नहीं दिखाई देता था। गाय, बछड़े, बैल डकरा रहे थे। करुण-स्वर में सभी जन पुकार रहे हैं - "कन्हैया रे! लाला रे! कनुआ रे! भैया रे! श्यामसुंदर! हे कृष्ण! बचाओ, बचाओ।" ऐसा प्रतीत होता था, मानो इन्द्र का कोप आज ब्रज का नाश कर देगा।

आँधी-पानी के भयानक स्वर में उन ब्रजवासियों के स्वर डूब-डूब जाते। तभी वहाँ घन-गंभीर स्वर सुनायी दिया, प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जन को सुनायी दिया -"गिरिराज तरहटी में चलो, वही हमारी रक्षा करेंगे।"

माधवी भी भाग रही है। प्राण के संकट के समय लाज-घूँघट का स्मरण किसे रहता हैं। सबके साथ वह भी गिरिराज-शिला के नीचे पहुँच

गयी। जब थोडा ढाढ़स बँधा तो देखा कि सबके सिर पर गिरिराज-गोवर्धन छत्र की भाँति तना हुआ है। पानी की एक बूँद भी जो कहीं टपकती हो। पर ये गिरिराज किसके आश्रय ठहरे हैं? घूमती हुई दृष्टि एक छोटी-सी कनिष्ठिका पर जा रुकी। ऐसी सुंदर अंगुली और हाथ..... आश्चर्याभिभुत दृष्टि, भुज के सहारे नीचे उतरने लगी.....और.....वह मुख....वह छवि.......एक नजर में जो देखा जा सका, सो ही बस, नेत्रों के पथ से उस रूप-समुद्र ने उमड़कर ह्रदय को लबालब भर दिया। मन, बुद्धि न जाने किस ओर भाग छूटे? सात दिन कब बीते, इसका ज्ञान किसी और को हो तो हो, माधवी को नहीं था।

एक दिन पुन: वही स्वर गूँजा -"वर्षा थम गयी हैं, सब बाहर निकलकर अपने-अपने घर जाओ।" मैया यशोदा कह रही हैं -'लाला रे! तेरा हाथ दुखतो होयगो बेटा! अब तो धर दे याऐ नीचे।"

इतना सुन माधवी का ह्रदय हाहाकार कर उठा। श्यामसुंदर सबकी ओर देखकर मुस्कुरा रहे थे, और जाते हुए लॊगो को हंसकर कुछ-न-कुछ आश्वासन दे रहे थे। किन्तु माधवी की ओर एक बार भी भूलकर ना देखा।

माधवी स्वयं को यूँ उपेक्षिता पा तड़प सी उठी - "अरी मैया! यह कैसी उल्टी शिक्षा दी तैंने? यह शिक्षा, यह लाज ही मेरी बैरन हो गई!" वह व्याकुल हो पुकार उठी - "क्षमा करो ठाकुर! मुझ अबोध से भूल हुई। कृपा करो! मैं ऐसा क्या करूँ.....जिससे आप प्रसन्न होवो .....अब यह माधुरी छवि मेरी आँखों से दूर न हो .....कृपा करो।" वह जहाँ थी वहीं अचेत सी गिर पड़ी।

अब की बार सरस-मीठी वाणी कानों में सुधा-सिंचन करने लगी - "भूल मान गयी है, अत: दर्शन तो नित्य होंगे, पर हमारी अन्तरंग लीला में सम्मिलित न हो सकोगी। परिमार्जन (पश्चाताप) के लिए कलिकाल में जन्म लेकर भक्ति-पथ का अनुसरण करने पर शुद्ध होकर ही मुझे प्राप्त कर पाओगी।" माधवी अचेत हो गयी।

उस दिन के पश्चात माधवी का व्यवहार एकाएक परिवर्तित हो गया। अब नित्य प्रातः सायँ मुरली-स्वर कानों में पड़ते ही अटारी पर चढ़ जाती, पुष्प वर्षा करती। सखियों के संग जा-जा कर लीला-स्थलियों के

दर्शन करती और उनकी बाते ध्यान से सुनती, आज कन्हैया ने किसका घड़ा फोड़ा, किसके घर माखन की कमोरी फोड़ी, किसकी चोटी खाट से बाँधी, किसके बछड़े को खोलकर दूध पिला दिया। इन विविध लीलाओं को सुन-सुन करके अकेले में अश्रु बहाती। सोचती मैं भी तो सबके साथ ही रहती हूँ परन्तु मेरी मटकी को हाथ तक भी नहीं लगाया, कभी मुझे चिढ़ाया भी नहीं, और तो और कभी मेरी ओर ठीक से देखा तक नहीं। उसकी सास बार-बार पूछती- "कोई मांदगी लगी हैं क्या बहू ? कही दुखता हैं बेटी?, तू ठीक से कुछ खाती-पीती भी नहीं। पीहर की, मैया की याद आ रही हो तो कछु दिन वहाँ हो आ लाली!"

माधवी ने तुरन्त उत्तर दिया - "ना मैया! मोकू पीहर नाय जानों। मैं तो स्वस्थ हूँ मैया! आप कछु चिंता मत करबो करौ!" मीठा बोल सास को तो समझा लेती पर उसका ह्रदय ही जानता कि जिसकी मधुर छवि उसके मन प्राण में अटकी है, उसकी उपेक्षा, उसकी विमुखता को सहन करने में वह किस कष्ट में जी रही है। भीतर ही भीतर जैसे वह घुलती सी जा रही थी।

ऐसे में उसके प्राणाराध्य की चर्चा ही उसके प्राणों का आधार थी। गृह कार्यों से निवृत हो वह पद-सेवा के मिस अपने पति सुंदर के चरणों को गोद में लेकर बैठ जाती और, धीरे से कोई चर्चा चला देती -"आज आपके सखा और आप.......? बस, उसके लिए इतना संकेत ही पर्याप्त था। ब्रज में तो सभी कृष्ण-चर्चा, कृष्ण-गुणगान के व्यसनी हैं। चर्चा आरम्भ हुई तो दोनों इतने निमग्न की रात्रि कब बीती, दोनों ही जान नहीं पाते। भोर होने पर ताम्रचूड की बाँग ही उन्हें सचेत करती।

दिन बीत रहे थे इसी प्रकार, और एक दिन वज्रपात हुआ - वृन्दावन में तो जैसे सबके पावँ तले धरती ही खिसक गई हो। पता लगा कि मथुरा से अक्रूर श्रीकृष्ण को लिवाने आया है। श्रीराधा रानी तो ठाकुर के लिये माला गूँथ कर यमुना किनारे प्रतीक्षा रत थीं। श्रीकृष्ण के मथुरा गमन जाने का सुन उनकी अन्तरंग सखियों की स्थिति तो कहाँ तक वर्णन करें? श्रीराधा रानी को कौन कैसे बताये? ललिता जी स्वयं को सम्भाल प्रियाजी को नन्दभवन के बाहर राजपथ तक रथ के पास ले आईं। वहाँ तो समस्त ब्रज ही मानों आँसुओं में डूब रहा था। माधवी भी स्वयं की मर्यादा भूल राजपथ पहुँची - आँसुओं की झड़ी थमती न थी -

"हाय! जब श्यामसुन्दर यहाँ थे, तो मैं बैरन लाज के जंजाल में फँसी रही ......जब सुध आई तो मेरे हिस्से में उपेक्षा ही आई ..... और अब मैं कैसे जीवन धारण करूँगी?" क्रूर अक्रूर, ब्रजेन्द्रनन्दन, ब्रज के प्राणाधार को लेकर मथुरा ले चला गया।

और इधर मीरा मुर्छित हो ललिता के चरणों में जा गिरी। ललिता ने गोद में लेकर दुलार से समझाया- "वह अमानिशा बीत गयी माधवी! देख तो, जीवन प्रभात समीप है अब तो।" जल पिलाने पर सचेत होकर उसने पूछा -"यह चम्पा.....?" "मेरे साथ आ! बताती हूँ।" ललिता जी ने साथ चलने का संकेत करते हुए कहा।

मीरा देख रही थी कि यहाँ की भूमि कहीं स्वर्ण, कहीं स्फटिक, कहीं हरितमणी और कहीं पुष्पराग की है। इसी प्रकार वृक्ष-वल्लरियाँ पुष्प, पत्र और फल भी मणिमय, स्वर्ण और रजतमय ही है। विविध पुष्पों के सौरभ से प्रकृति महक रही है छहों ऋतुँ सदा यहाँ प्रियालाल जी के भाव को समझ सदा सेवा सम्पादन को उपस्थित रहती हैं। यमुना के घाट स्वर्ण और स्फटिक के बने हुए हैं। सीढ़ीयाँ कहीं प्रवाल और कहीं पन्ने की। पत्र, पुष्प, लता, वृक्ष, सबके सब मणिमय प्रकाशमय होते हुए भी अत्यंत कोमल हैं। जिस ओर भी दृष्टि जाय, सर्वत्र सुंदरता, मधुरता, कोमलता, दिव्यता ही छायी है। कभी-कभी उसे सम्पूर्ण प्रकृति में प्रियालाल जू की ही झाँकी दिखाई पड़ती। वहाँ कुछ भी जड़ नहीं था, सब चैतन्य, दिव्य एवं चिन्मय था जो युगल दम्पति के सुख के निमित्त हेतु लीला में आवश्यकता अनुसार कोई भी रूप धारण कर लेता था। सखियाँ एवं श्री राधारानी की मधुरता, उनके श्रीविग्रह की कोमलता अचिन्त्य थी - मानों वह सब चलित रत्नमय विग्रह हों। उनके कुण्डलों का प्रतिबिंब कपोलों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता।

सभी वृक्ष फूलों के भार से नमित हो मानों ललिता जू से सेवा का आग्रह कर रहे हों - जैसे कह रहे हों कि हमारे प्राणेश्वर एवं प्राणेश्वरी को शीघ्र वन विहार करा हमें कृतार्थ करो न सखी! पशु पक्षी सब श्री श्यामसुन्दर के विरह में शिथिल गात होकर उनके समीप आ जाते, तब ललिता जू उन्हें हाथ से दुलारती हुई कहतीं - माधव शीघ्र ही आयेंगे और अपनी प्राणप्रिया के संग आकर तुम्हें दर्शनान्द अवश्य प्रदान करेंगें। पर मीरा के स्पर्श से वे थोड़ा बचने की चेष्टा करते।

"अरे बाँवरो! यह तो अपनी ही हैं। अपनी ही सखी है। हाँ, हाँ! किशोरीजू ने आश्वासन दिया है कि एक दिन फिर यह अन्तरंग लीला में सम्मिलित होंगी। देखो न, ऐसा न होता तो यह यहाँ कैसे होती भला?" ललिता जी मीरा का हाथ थामकर मृग दम्पति, पक्षियों और शशकों पर फिराती। एक चिरैया मीरा के हाथ पर बैठकर स्नेह से सिर घुमा-घुमाकर संकेत कर आश्वस्त करने लगी। ललिता जू के संग ही कुछ पद चलकर उसने देखा कि झरने के पास शिला पर एक अर्ध मूर्छित किशोरी पड़ी है। उसके दीर्घ कृष्ण केश भू-लुंठित बिखरे पड़े हैं और सुन्दर नेत्रों से आँसुओं की धार बह रही है। उसी समय चम्पा वहाँ आई। उसने उस किशोरी को बाँहों में भरकर उठाया। मीरा ने देखा, वह किशोरी तो माधवी है।

"चम्पा ने उससे परिचय पूछा और यह जानकर कि वह सुन्दर की बहु है, प्रसन्न हुई। चम्पा ने स्नेह से कहा, "इस प्रकार धीरज खोने से कैसे चलेगा बहिन! तुम अकेली ही तो नहीं हो। जो सबने खोया है, वही तुमने भी खोया है। यों धीरज खो दोगी तो कैसे बात बन पायेगी। जब श्यामसुन्दर मथुरा से आ जायेंगे तो क्या मुख लेकर उनके समक्ष जाओगी?"

"दूसरी बहिनों से मेरी क्या समता बहिन! वे सब भाग्यशालिनी हैं - उन्होंने कुछ पाकर खोया है। मुझ अभागिनी ने तो पाने से पूर्व ही खो दिया। आप सबका घट उन्हें खोकर भी परिपूर्ण है और मैं दुर्भागिनी तो सदैव रीती की रीती (ठाकुर के स्नेह से वंचित) ही रही।" कहते-कहते माधवी फूट-फूट कर रो पड़ी।

चम्पा ने माधवी को ढांढस बँधाते हुए कहा, "हाय! श्री कृष्ण के मथुरा जाने से आज तो ब्रज में सब अपने-अपने दुर्भाग्य को सब से बड़ा समझ रही हैं, मानो दुर्भाग्य की होड़ लगी हो, किन्तु तुम अपनी बात कहो तो मैं कुछ समझूँ। इन आँसुओं की जुबां नहीं होती। मुख से कुछ तो कहो।"

माधवी के नेत्रों की बरखा रुकने में ही नहीं आती थी। चम्पा के बहुत अनुरोध-प्रबोध के बाद वह कुछ कहने का प्रयत्न करती तो होंठ फड़फड़ा कर रह जाते। चम्पा ने स्नेह से माधवी के केशो को संभाल कर बाँधा। चुनरी छोर भिगोकर मुँह पोंछा। ह्रदय से लगाकर प्यार भरी

झिड़की दी, "अहा, कैसा रूप दिया है विधाता ने? इसे इस प्रकार नष्ट करने का क्या अधिकार है तुझे री? यह तो अपने ब्रज वल्लभ की सम्पति है, इसे........।" बात पूरी होने से पहले ही माधवी बुरी तरह रो पड़ी, मानो प्राण निकल ही जायँगे। उसकी यह हालत देखकर चम्पा भी अपने को रोक नहीं पायी। उसके धैर्य ने मानों हार मान ली थी। आँखे बरबस बहने लगी। यह सोचकर कि इस प्रकार तो यह मर ही जायगी, उसने अपने आपको सँभाला और स्नेह एवं अधिकार से कहते हुए उसका मुख ऊपर किया- "क्या है? मुझसे नहीं कहेगी? क्यों कहेगी भला! परायी जो हूँ।" कहते हुए चम्पा के नेत्र भर आये।

"ऐसा मत कहो, मत कहो।" माधवी के कंठ से मरते पशु-सा आर्तनाद निकला।" "फिर कह! पहले अपनी आँखों को प्रवाह थाम, अन्यथा एक भी बात मैं समझ नहीं पाऊँगी।" माधवी ने रूकते-अटकते शब्दों में भरे कंठसे सारी व्यथा, अपनी दुर्भाग्य कथा कह डाली - "मेरा दुर्भाग्य सीमा-हीन है बहिन! मैं प्रतिदिन निराशा के गहन गर्त में विलीन होती जा रही हूँ! न जाने कलिकाल कितनी दूर हैं......न जाने ..... कहाँ....जाना...होगा....कैसे....किसके सहारे? भवाटवी......की भयानक अँधेरी गलियों.......में अवलम्बहीन मैं........।"

माधवी पुन: चम्पा की गोदमें सिर रख फूट-फूट करके रो पड़ी। चम्पा कुछ देर तक उसे गोदमें लिए बैठी, मन में सोचती रही, "सचमुच ऐसा प्रबल दुर्भाग्य तो ब्रज के पशु- पाहनका भी नहीं रहा कभी! किन्तु इसे ऐसे भी कैसे छोड़ दूँ?" "सुन माधवी!" उसने कहा- "कलिकाल चाहे कितनी ही दूर हो, तुझे चाहे जहाँ जाना पड़े, जैसे भी रहना पड़े, मैं तेरे संग चलूँगी और संग रहूँगी। बस अब रोना बंद कर! श्यामसुन्दर चाहकर भी कभी किसी के प्रति कठोर नहीं हो पाते। अवश्य ही इसमें तेरा हित निहित है। और माधव की दया, करुणा, कोमलता, मधुरता, कृपा की घनीभूता स्वरूप है श्रीकिशोरीजू। चल, मेरे साथ चल। उनके चरणों के दर्शन-चिंतन मात्र से ही विपत्ति का भय नष्ट हो जाता है। उठ!" उसने हाथ पकड़ कर कर उठाया।

"जीजी! आपने मेरे लिए कलिकाल में, संसार के ....।" "अरी चुप! अब एक भी बात नहीं बोलेगी तू। बहिन! मैं और तू एक ही माला के फूल हैं, कोई आगे तो कोई पीछे। हम सबका दु:ख समान है। श्री

किशोरीजू का सुख ही हमारा सुख है और उनका दु:ख ही हमारा दु:ख। हम सब उनकी हैं और उनके लिये ही हैं।

चम्पा उसे लेकर बरसाने के राज महल में श्री किशोरी जू के पास गयी। प्रणाम के अनन्तर चम्पा के मुख से सबकुछ सुनकर उन्हों ने माधवी के सिर पर हाथ रखा- "मत घबरा मेरी बहिन! अपनों को श्रीकृष्ण कभी निर आश्रित नहीं छोड़ते। प्रयोजन की प्रेरणानुसार अपनों को अपने से दूर करके वे उसके लिए स्वयं व्याकुल रहते हैं, और क्षण-क्षण में उसकी सार-सँभाल करते हैं। तेरे साथ तो फिर चम्पा ने अपने को बाँध लिया है। ऐसा साथ सहज ही नहीं मिलता.........।"

"श्रीजू! मेरे लिए जीजी ने अपने को कैसी विपत्ति में डाल लिया है।" माधवी ने बीच में ही भरे गले से कहा - "आप इन्हें निवारित करें।"

"ऐसा मत कह बावरी! यह साथ रहेगी तो कलिकाल के कंटक तुझे छूनेका साहस नहीं कर पायेंगे। प्राणेश्वर प्रतिक्षण तेरे तन-मन-नयन में बसे रहेंगें। चम्पा तेरी दासी बनकर सेवा ही नहीं करेगी, अपितु इस जीवन यात्रा में तेरा पाथेय (मार्ग दर्शक) भी बनेगी।" यह सब सुनकर माधवी "हा स्वामिनी! हा स्वामिनी!" कहती मूर्छित हो गई।

यह सब देख श्रवण कर मीरा अतीत और वर्तमान को मिलाते हुये ललिता जी के साथ आगे बढ़ आई तथा राधारानी को प्रणाम कर रूँधे कण्ठ से बोली, "हे मेरी स्वामिनी! इतनी अनुपम ममता, अगाध करूणा, अपार कृपा .... इस तुच्छ दासी पर!" कहते-कहते मीरा श्रीकिशोरी जू के चरणों में गिर गई। नेत्र जल से उनके चरण पखारने लगी। श्रीकिशोरी जू का वात्सलय पूर्ण कर-पल्लव उसके मस्तक पर उसे सहला रहा था - "यह देख, मेरी अन्तरंग एवं प्रिय सखी चम्पकलता ही तेरी चम्पा है।"

मीरा चम्पा को देखते ही उसके चरणों में प्रणाम करने बढ़ी कि चम्पकलता ने हँसते हुए उसे कण्ठ से लगा लिया और रागानुगा भक्ति का सार आधार तत्त्व स्वाभाविक ही बताते हुये कहा - "यहाँ हम सब सखियाँ हैं बहिन! स्वामिनी हमारी हैं किशोरीजू। अतः चरण वन्दना, सेवा-टहल सब इनकी और इनके प्रियतम श्यामसुन्दर की।"

पाँच वर्ष तक वृन्दावन में वास करते हुए मीरा व्रज में नित्य लीला का रस लेती रहीं। आरम्भ में कुछ समय तो ललिता उन्हें लेने आती। पर कुछ समय पश्चात् वह वहाँ के आह्वान पर स्वयं ही उठकर चल देतीं।

और निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाती। वहाँ रहकर मीरा ने असंख्य लीलाओं में सम्मिलित हो लीला-रस का आस्वादन किया। उनका स्वभाव सर्वथा बदल गया था।

चमेली को मीरा के स्वभाव में बदलाव देख आश्चर्य होता - "पहले चित्तौड़ में बाईसा हुकम को भावावेश होता तो कभी-कभी आठ-आठ दिन तक वे अचेत रहती, किन्तु सचेत होने पर, वे अपनी दिनचर्या में लग जाती। चितौड़ में रहते समय भी सब दास-दासियों के पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने और भाव-अभाव की खबर रखतीं। उत्सवों में सबके यहाँ प्रसाद पहुँचाने, पुरस्कार देने, गरीबो की सहायता करने और ब्राह्मणों को दान देने का उत्साह रखतीं। विवाह, मरण आदि के अवसरों पर कुछ देने का हुक्म करतीं। चित्तौड़ से मेड़ते आ जाने पर भी ऐसा ही व्यवहार रहा। किन्तु यहाँ वृन्दावन में जिस दिन से चम्पा लुप्त हुई हैं, इन्हें तो संसार जैसे सर्वथा विस्मृत हो गया है।"

"अब कभी नहीं पूछतीं कि किसी ने प्रसाद पाया या नहीं, न ही तो इनको यह सोच है कि सब खाद्य सामग्री कहाँ से आती है, और न ही यह चिन्ता कि द्रव्य (धन) है कि समाप्त हो गया?" चमेली मन ही मन सोचती - "बाईसा हैं तो यहाँ, पर यहाँ नहीं; पूरे दिन वाह्य ज्ञान-शून्य बैठी रहती हैं और मुस्कराती हैं, या लेटी रह बस अश्रु बहाती हैं। हम मुख में कुछ दे दें, तो जैसे-तैसे चबाकर निगल लेती हैं। जल-पात्र मुख से लगाये तो पी लेती हैं। कीर्तन के स्वर या संतो की उपस्थिति ही इन्हें सचेत करती हैं। ऐसे यह देह कितने दिना चलेगी? किससे पूछें?"

एक दिन उनको तनिक सचेत देख चमेली ने पूछा - "यह चम्पा कहाँ मर गयी बाईसा हुकम?" मीरा ने घबराकर उसके मुँह पर हाथ रख दिया- "उनके लिये ऐसे शब्द ना बोल चमेली! अपराध होगा।" चमेली चकित नेत्रों से स्वामिनी की ओर देखने लगी और मन-ही-मन सोचा, "चम्पा के लिये "उन" शब्द? वह आदरणीया कबसे हो गयी? इनके लिए अपनी बहिन जैसी बराबरी वाली से कुछ कहने पर अपराध कैसे लगेगा और क्यों लगेगा?"

उसने सहमते हुए पूछा- "बाईसा, वह कहाँ चली गयी एकाएक, किसी से कुछ कह गयी क्या? मीरा ने गदगद् स्वर में कहा- "जहाँ से वे

पधारी थीं, वहीं वे चली गयी।" चम्पा का स्मरण होते ही उनका देह रोमांचित हो उठा। मीरा के चम्पा के प्रति ऐसा हाव-भाव देख चमेली को लगा कि अभी मूर्छित हो गिर पड़ेंगी। और कही चम्पा के पधारने की बात करते-करते मुझे भी आदरयुक्त सम्बोधन न करने लगें, इस भय से वो उनके सामने से हट गयी।

एक दिन उन्होंने अपने सेवक-सेविकाओं से वृन्दावन की महिमा का बखान करते हुए कहा- "यह वृन्दावन साधारण भूमि नहीं है, यहाँ ठाकुर जी की कृपा के बिना वास नहीं मिलता। तुम किसी के प्रति मन-वचन और काया द्वारा अवज्ञा मत कर बैठना। इन नेत्रों से जैसा दिखाई देता हैं, वैसा ही नहीं है। यह तो परम दिव्य-ज्योतिर्मय धाम हैं, इसके कण -कण में, पेड़-पत्ते और प्रत्येक जन के रूप में स्वयं ठाकुर जी ही विराजमान हैं।"

भोजन-पान उचित मात्रा में न लेने के कारण मीरा की देह दिनों-दिन क्षीण होती जा रही थी। किन्तु उनका तेज, भक्ति का प्रताप और ह्रदय की सरसता उत्तरोंत्तर बढती ही जाती थी। वे बहुधा देहाभास से शून्य ही रहतीं। संतो-सत्संगियो के आने पर उन्हे कीर्तन द्वारा सचेत किया जाता था। बार-बार चमेली से पूछती, "ललिता आयी ?" धीरे-धीरे मीरा चमेली को ही ललिता मानने लगीं। चार-पाँच वर्ष में लोग भूल गये कि उसका नाम चमेली हुआ करता था। मीरा उससे ऐसे स्थान और लोगो की चर्चा करतीं, जो उसकी समझ में किसी प्रकार नहीं आती। पर चमेली बहुधा इसी चिंता में रहती, कि यदि धन समाप्त हो गया तो, क्या खाया-पिया जायेगा और कैसे संतो और अतिथियों का सत्कार होगा? उसे कहीं कोई, किनारा दिखाई नहीं देता था। ऐसे ही पाँच वर्ष बीत गये।

"माधवी!" एक रात श्यामसुन्दर ने कहा, "अब तू यहाँ नित्य लीला में न आकर भक्ति किया कर। तुम्हारे दर्शन, स्पर्श, भाषण से लोगों का कल्याण होगा। तुम्हारा प्रभाव देखकर लोग भक्ति-पथ पर अग्रसर होने का उत्साह पायेंगे। अभी यहीं वृन्दावन में रहो, कुछ समय के पश्चात किसी अन्य स्थान पर जाने के लिए प्रेरणा प्राप्त करोगी।"

सिर झुका कर मीरा प्राणाराध्य की बात सुनती रही। प्राणों में एका-एक वियोग की असह्य पीड़ा से मीरा की पलकें ऊपर उठी। वह भाव और पीड़ा के सम्मिलित अथाह महासागर में भी बड़वानल सी

सुलग उठीं। देखते ही देखते उसकी वह स्वर्ण वल्लरी सी देह सूख कर कृष्ण वर्णा हो गई और वह सूखे पत्ते सी धरती पर झर श्री श्यामसुन्दर के चरणों में गिर पड़ी। तुरन्त ही करूणासागर के मंगल चरणों के स्पर्श से उसे राहत मिली जैसे सुवासित, सुशीतल चन्दन का स्पर्श हुआ हो।

श्यामसुन्दर स्नेहाभिसिक्त स्वर से बोले, "बहुत, बहुत कठोर हूँ न मैं मीरा! तुझ सुमन सुकुमार के लिये कंटक - बिद्ध पथ पर चलने का विधान कर रहा हूँ।" कमल की पाँखुड़ी से खिले नेत्रों से आँसुओं की दो बूँदे स्वच्छ धुली ओस की बूँदो की भाँति....... चरणों पर पड़ी मीरा के मस्तक पर गिर पड़ी।

मीरा प्राणनाथ को कष्ट में देख विचलित हो गई - "नहीं, नहीं प्रभु ऐसा न कहें। जो भी मेरे मंगल के लिए आवश्यक होगा, आप वही विधान मेरे लिए निश्चित करेंगे, यह मुझे पूर्णतः विश्वास है। आप .... आप निसंकोच कहें ...... आपकी आज्ञा शिरोधार्य प्रभु! वह तो ......इन चरणों से दूर होने की आशंका का ही अपराध है, मेरा नहीं! मैं तो आपकी आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत हूँ।"

"मीरा! माधवी!" प्रभु ने मीरा को चरणों से ऊपर उठाया और भाव में विह्वल हो काँपते स्वर में बोले, "तू जब चाहेगी, मुझे अपने समीप पायेगी। पर अब तेरी वह अचेतन अवस्था नहीं रहेगी, बस इतना ही। सदा भावावेश में डूबे रहना भले ही तेरे लिए कितना ही रूचिकर हो, पर उससे दूसरों का क्या भला होना है? मीरा, तेरे सचेत रहने से ही दूसरों के भावों को पोषण मिलेगा। उनके प्रश्नों का तू समाधान कर पा उन्हें दिशा दे पायेगी। तेरी सेवा उनका कल्याण करेगी, तेरा स्पर्श ....।" "यह लोकैष्णा (लोक कीर्ति) ...... ज़हर....... लगती...... है।" मीरा ने कहा।

"ऐसे भावावेश में डूबे रहने से केवल तुम्हें ही लाभ है। तुम्हारे आसपास के जीव तो तुम्हारे अनुभव से वंचित रह जायेंगे न! और फिर तुझे कीर्ति आक्रान्त करे, इतना साहस उसमें नहीं है।" फिर मुस्कराते हुए ठाकुर बोले, "और फिर मेरे प्रिय भक्त की सुकीर्ति मुझे कितना सुख देती है! और तुझे ज्ञात भी नहीं होगा और न ही उन्हें, जिनका कल्याण होगा। दोनों ही बेखबर रहेंगे ....तब तो ठीक है न?"

थोड़ा सोचते हुये श्यामसुन्दर फिर मधु सिंचित वाणी में कहने लगे,

"एक और भी सुप्रयोजन है ....इस देश का शासक तुम्हारे दर्शन से पवित्र होगा। और..... जानती है मीरा, तेरे सेवक-सेविकाएँ नित्य रो-रोकर मुझसे अपनी स्वामिनी के आरोग्य के लिए प्रार्थना करते हैं।" श्रीकृष्ण मुस्कुराये।

"उन पर कृपा कब होगी प्रभु? उन्होंने तो मेरी सेवा के लिए अपनी देह-गेह का मोह भी छोड़ दिया है ...... बस वे मेरी ही चिन्ता में व्यस्त और व्याकुल रहते हैं।"

"तेरा कथन मेरा कथन है, मेरे भक्त की सेवा मेरी सेवा है, क्योंकि तू, तू है ही नहीं है। तुझमें निरन्तर मैं ही क्रियाशील हूँ, अतः तेरे सेवकों के कल्याण में संदेह बाकी ही कहाँ रहा ?" ठाकुर ने मीरा के सिर पर हाथ रखते हुये कहा। "और हाँ यह ले!" एक चन्दन की कलात्मक छोटी सी मंजूषा मीरा की ओर बढ़ाई, "यह चमेली को दे देना, जिसके कारण से वह चिंतित है, उसका समाधान इसमें है।"

तभी चम्पा ने आकर कहा, "आज के नृत्योत्सव में प्रथम नृत्य माधवी का हो, ऐसा श्री किशोरीजू का आग्रह है।" मीरा ने स्वामिनी जू की आज्ञा पा प्रसन्नता से दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये।

वृन्दावन में मीरा की भक्तिलता की सुगन्ध, चन्दन की तरह चारों दिशाओ में व्याप्त हो रही थी।

"जय श्री राधे" की द्वार पर पुकार सुनते ही केसर उपस्थित हुई, "पधारे भगवन्!" सत्संग कक्ष में बैठी मीरा आहट सुन उठ खड़ी हुई। देखती हैं कि साधारण नागरिक वेश में दो भव्य पुरुष अभिवादन कर रहे हैं। मीरा ने उत्तर में हाथ जोड़ कर सिर झुकाया और आसन पर विराजने के लिये अनुरोध किया। उनमें से एक युवक ने विनम्रता पूर्वक कहा - "सुयश सुनकर श्रवण कृतार्थ हेतु सेवा में उपस्थित हुए हैं।"

मीरा ने बोलने वाले की तरफ देखा तो दाहिने हाथ पर बंधी तर्जनी पर दृष्टि रुकी। उस पर मिजराब (सितार वादन के लिये मुद्रा) धारण का चिन्ह अंकित था। मीरा मन ही मन सोचने लगी अवश्य कोई गुणी कलावंत हैं। उससे थोडा पीछे की ओर एक बीस-बाईस साल का युवक अत्यंत साधारण वेशभूषा में होने पर भी, उसकी दृष्टि और मुखमुद्रा से झलकता रौबे-हुकूमत उसे विशिष्ट बनाए दे रही था। वह सेवक की तरह बनकर आया था पर उसकी बैठक राजा की तरह थी। वह उत्सुकता-

पूर्वक मीरा की ओर देख रहा था।

मीरा ने अतिशय विनम्रता से मुस्कराते हुए कहा- "सुयश तो भगवान का अथवा उनके अनन्य प्रेमी जनों का ही श्रवण योग्य होता हैं भाई! साधारण जनों का यश तो उन्हें पतन की ओर धकेल देता है। यश बहुत भारी ची है। इसे झेलने की शक्ति होनी चाहिए।"

आगे बैठा व्यक्ति बोला, "यह तो आपकी विनम्रता है, नहीं तो साधारण जन तो धन और यश की लिप्सा से ही उधर प्रवृत होते हैं।" "यह मैंने साधारण जन के लिए नहीं, शाह के लिए कहा है।" मीरा ने अपनी बात को समझाते हुये कहा, "राजकर्म सेवक का धर्म हैं। राजा होकर स्वयं को सेवक मानना, समान रूप से प्रजा का पोषण करना, अपनी कीर्ति सुनकर प्रमत्त न होना बल्कि राज्य को ईश्वर की धरोहर मानना, गुणीजनों का सम्मान करना, प्रजा धन-धान्य से खुशहाल रहे, यही उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है। अपने अवगुण बताने वाले हितैषियों पर क्रोध न करें, सदा न्याय को महत्व दें तथा समय-समय पर प्रभु-प्रेमियों के मुख से प्रभु का सुयश सुनते रहना, और भोग, धन, पद के मद से निरपेक्ष रहना। यही उसका सबसे बड़ा कर्तव्य हैं।"

दोनों आगंतुक चकित से हाथ जोड़ सिर झुकाये सुन रहे थे......... फिर आगे बैठे व्यक्ति ने विनम्रता से कहा, "राजनीति का यह उपदेश हम अनाधिकारियों को भ्रांत कर देगा माता ! हरि यशगान सुनने की अभिलाषा ही श्री चरणों में खीच लायी है।"

मीरा ने मुस्कुराते हुए कहा - "प्रभु किसके द्वारा क्या कहलवाना चाहते हैं। यह हम कैसे जान सकते हैं? सत्य तो यह है कि दाता केवल एक है, बाकी तो सब भिखारी हैं, चाहे तो राजा हो या कृषक।" पुन: पद सुनने की प्रार्थना पर मीरा ने एकतारा उठाया। चमेली ढोलक, और केसर मंजीरे बजाने लगी ....

मन रे......परसि हरि के चरण।
सुभग ,सुसीतल ,कँवल, कोमल,
त्रिविध ज्वाला हरण.........

दोनों झूम-झूम गये। आँखे झरने लगी। संगीत में ऐसा आनन्द भी होता है, यह दोनों अतिथियों के लिए नया अनुभव था। मीरा ने आगे बैठे

व्यक्ति से गाने का आग्रह किया। वे चौंक कर बोले- "मैं सरकार?" मीरा बोलीं, "वाणी की सार्थकता तो हरि गुण-गान में ही है -

जग रिझाये क्या मिले थोथा धान पुआल।
हरि रिझाये हरि मिले खाली रहे न कुठाल॥

मीरा ने सहजता से कहा," देखिए! कोई भी गुण अगर उस प्रभु से जुड़ जाये तो उसमें स्वभाविक मधुरता आ जाती है। जग को अपने गुण को रिझाने से क्या मिलेगा धन, धान्य। और हरि को रिझाने से तो स्वयं हरि ही प्राप्त हो जायेंगे।"

मीरा के निवेदन पर उस व्यक्ति ने मीरा का ही एक पद गाया। तार झंकृत करते हुए उसने आँखे बंद करके गाना आरम्भ किया। रागों के कठिन उतार-चढाव तो मानों उनके सधे हुए कंठ का सरल खेल ही हो। "धन्य, धन्य!" मीरा के मुख से निकला।

आगंतुक ने संकोच से सिर नीचे झुकाते हुये कहा, "धन्य तो आप हैं सरकार! हम तो विषय के कीड़े हैं।"

मीरा ने अतिथि के गान से आनन्दित हो कर कहा- "सो कुछ नहीं, प्रभु ने आपको विशेष सम्पदा से निवाजा है। जिसको उस प्रभु ने जो दिया है, उसी से उसकी सेवा की जाये तो उस गुण की भी सार्थकता है।"

उस व्यक्ति ने पुन: निवेदन करते हुए कहा - "कृपा, मेहरबानी होगी यदि एक पद........! इस गुस्ताखी के लिए माफी बख्शें। कहते हुए आँखों से आँसू ढ़लक पड़े। मीरा ने पुनःआलाप ले ठाकुर जी की शरणागत-वत्सलता का एक करूणापूर्ण पद आरम्भ किया.........

सुणयाँ हरि अधम - उधारण। अधम उधारण भव्-भय तारण॥
गज डूबताँ, अरज सुन, धाया मंगल कष्ट निवारण॥
द्रुपद सुता सो चीर बढ़ायो, दुशासन मद - मारण॥
प्रहलाद री प्रतिज्ञा राखी, हिरण्याकुश उदार विदारण॥
ऋषि पत्नी किरपा पाई, विप्र सुदामा विपद निवारण॥
मीरा री प्रभु अरजी म्हारो, अब अबेर किण कारण॥

भजन सम्पूर्ण होने पर अतिथि ने दर्शन की इच्छा व्यक्त करते हुए विनम्रता से पूछा, "प्रभु श्री गिरिधर गोपाल के दर्शन हो जाते यदि

अनधिकारी न समझा जाए तो......!"

मीरा ने कहा- "संगीताचार्य जी! मानव तन की प्राप्ति ही उसका सबसे बड़ा अधिकार हैं। सबसे बड़ी पात्रता हैं। अन्य पात्रताएं हो या कि न हो, जीव जैसा है, जिस समय है, भगवत्प्राप्ति का अधिकारी हैं। अब वह ही न चाहे, तो यह अलग बात है।"

एक और उत्सुकता भरा प्रश्न किया- "क्या चाहते ही मानव को प्रभु दर्शन हो सकते हैं?" मीरा ने उत्तर दिया, "हाँ! क्यों नहीं! एक यह ही तो मनुष्य के बस में है। अन्य सभी कुछ तो प्रारब्ध के हाथ में हैं। जैसे मनुष्य धन, नारी, पुत्र, यश चाहता है, वैसे ही यदि हरिदर्शन चाहे तो उसकी अन्य चाहें तो प्रारब्ध के हाथों कुचली जा सकती हैं, किन्तु इस चाह को कुचलने वाला यदि वह (मनुष्य) स्वयं न हो तो महाकाल भी ऐसी हिम्मत नहीं कर सकते।" मीरा उठ खड़ी हुईं - "पधारे, दर्शन कर लें।" मंदिर कक्ष में जाकर उन्होंने प्रभु के दर्शन किये।

शाह ने अपने खीसे में से हीरे की बहुमूल्य कंठी निकाली और आगे बढ़ कर प्रभु को अर्पण करने लगे। तभी मीरा बोल पड़ी - "नहीं शाह! यह तो प्रजा का धन है। इसे उन्हीं दरिद्रनारायण की सेवा में लगाइये। जिस राज्य की प्रजा सुखी हो उस राज्य का नाश कभी नहीं होता। आप उदारता और नीतिपूर्वक प्रजापालन करें। ठाकुर तो बस भाव के ही भूखे हैं - इन्हें तो बस भाव से ही संतुष्टि हो जाती है।"

युवक ने डबडबायी आँखों से उनकी और देखा और हाथ की कंठी गिरधर के चरणों में रख दी। प्रसाद-चरणामृत ले लेने के पश्चात प्रणाम करके चलने को उद्यत होते हुए प्रौढ़ व्यक्ति ने पूछा - "आज्ञा हो तो एक अर्ज करूँ?" मीरा ने कहा- "जी निःसंकोच! व्यक्ति ने सकुचाते हुए पूछा - "आपने अभी इनको शाह कहकर बुलाया और मुझे संगीताचार्य!"

मीरा ने मुस्कुराते हुए पूछा - "तो क्या ये इस देश के शासक और आप इनके दरबारी गायक नहीं?" "धृष्टता क्षमा करें सरकार! मैं तो यह जानना चाहता था, कि यह रहस्य आपको कैसे ज्ञात हुआ? हम तो दोनों ही छद्मवेश में हैं और हमारे अतिरिक्त कोई तीसरा व्यक्ति इसकी जानकारी भी नहीं रखता।"

मीरा ने धीरे से हल्के स्वर में कहा - "मेरे भीतर भी तो कोई बसता है।" बस इतने शब्द कानों में पड़ते ही दोनों शरविद्ध पशुओं की भाँति

मीरा के चरणों में गिर पड़े।

नवीन दुर्ग का निर्माण करने के विचार से बादशाह अकबर अपने दरबार के उमरावों के साथ स्थान का निरिक्षण करने हेतु आगरा आये। वहीं मीरा की प्रशस्ति सुनी। उनके रूप, वैराग्य, पद-गायन के बारे में सुना। चित्तौड़ जैसे प्रसिद्ध राजवंश की रानी होकर भी सब कुछ छोड़कर वृन्दावन की वीथियों में मीरा एकतारा ले गाते हुए ईश्वर को ढूंढती हैं। मंदिरों में जब वह पाँव में घुंघरू बाँध कर गाते हुए नाचती हैं तो देखने और सुनने वाले सुध-बुध भूल जाते हैं। किसी-किसी को उसके घुंघरूओं और एकतारे के साथ श्री कृष्ण की वंशी भी सुनाई देती है। कोई कहते हैं कि गाते समय मीरा संसार भूल जाती हैं, कोई कहते हैं कवित्री हैं और गाते समय पद अपने आप बनते चले जाते हैं, निरंतर अश्रुधारा प्रवाहित होती है। वे इस लोक की तो लगतीं ही नहीं, आदि-आदि।

बाईस वर्ष का युवक बादशाह मीरा के दर्शनार्थ आतुर हो उठा। बादशाह अकबर ने अपने ह्रदय की बात अपने दरबारी गायक तानसेन से कही। तानसेन ने कहा - "अगर जनाब बादशाही तौर-तरीके से उनके दर्शन के लिए तशरीफ ले जायेंगे तो वे कभी सामने नहीं आएँगी। माना कि वो पर्दा छोड़ चुकी हैं, मगर वे खुदा की दीवानी हैं। वह आपके रुतबे का ख्याल नहीं करेंगी। हो सकता है जहाँपनाह वह आपको मिलने से इन्कार कर दे।"

"किन्तु मैं उनके दर्शनों के लिए बेताब हूँ तानसेन! इतना ही नहीं, मैं उनका गाया पद भी सुनना चाहता हूँ।" "यह तो और भी मुश्किल कार्य हैं जहाँपनाह! किन्तु यदि आप मेरे साथ सादे हिन्दू वेश में पैदल चलें, तो मुमकिन हैं कि हुजूर की ख्वाविश पूरी हो जाए।"

अकबर ने एक क्षण सोच तानसेन से पूछा - "कोई खतरे का अंदेशा ?" "नहीं आलिजाह! खुदा के दीवाने ओलिया और फकीरों की ओर उठने वाले पाँवो के सामने आने का खतरा तो खतरे भी नहीं उठाते। हुजूर! यहाँ से घोड़ों पर चला जाय और फिर वृन्दावन में पैदल। मैं जैसे कहूँ-करूँ, हुजुर को नकल करनी होगी।"

बादशाह हँसने लगे, "मंजूर है मौसिकी आलिया! जैसा तुम कहो। हम भी तो देखना चाहते हैं कोई तुमसे बेहतर भी गा सकता हैं, और राज्य, जर, जमीन होते हुए भी उस बंदी ने फकीरी से क्या हासिल

किया।"

पूछते-पूछते वे पहुँच गये। और जो कुछ देखा, अकबर ने तो उसकी कल्पना भी नहीं की थी। अकबर तानसेन से लौटते समय कहने लगे, "तानसेन! सब कुछ छोड़ देने के बाद भी वे हम, तुम से ज्यादा खुश कैसे हैं? उनके दर्शन कर दिल-दिमाग थम गये हैं। एक अजीब ठंडक, एक सुकून महसूस होता था वहाँ।"

आलीजाह! खुदा के दीवानों की दुनिया ही और होती हैं। उनका पद गाना और खुदा के हुजूर में उनकी वह बन्दगी आह! वह मिठास दुनिया का कोई गाने वाला नहीं पा सकता।"

फिर अकबर थोड़ा रूक कर बोले - "और आज तुमने जो वहाँ गाया तानसेन! वह तुमने पहले हमारे हुजूर में कभी क्यों नहीं गाया?" तानसेन ऊपर देखते हुए बोला, "वह तो सब उस मालिक का कमाल था, हुजूर! गुलाम तो किसी काबिल नहीं। और उन्होंने भी फरमाया कि अगर हम मालिक की बख्शी कला को उसकी बन्दगी में इस्तेमाल करें तो उसमें खुद-बे-खुद मिठास आ जाती है। और याद हैं जहाँपनाह! जब उसने हमें बिना हमारा परिचय लिए ही पहचान लिया, हुजुर! खास बात तो यह है कि उन्होंने अपना खुदा से ताल्लुक-रसूख (भगवान से सम्बन्ध) जाहिर किया।"

बेनजीर हैं तानसेन! यह वतन और यहाँ के बाशिन्दे। और जो हमें उन्होंने एक बादशाह के फर्ज भी बतलाये, हम उन पर अम्ल करें। हम कोशिश करेंगे कि अब आगरा का किला फकत किसी जदो-जहत के लिए ही नहीं, इन फकीर ओलिया से गुफ्तगूँ के लिए भी जरूरी हो गया है।"

घोड़ो पर सवार दोनों अपने रास्ते पर चल तो दिए किन्तु मीरा के गाये भजन रस उनके कानो में अभी तक घुल रहा था ....

भावना रो भूखो म्हारों साँवरो, भावना रो भूखो।
सबरी रा बेर सुदामा रा चावल, भर भर मुठ्या ढूका॥
दुरजोधन रा मेवा त्याग्या, साग विदुर घर लुको।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, औसर कबहूँ ना चुको॥

गिरिराज जी की परिक्रमा करते हुए श्री राधाकुण्ड में स्नान कर

मीरा सघन तमाल तरू के तले बैठी थीं। केसर और चमेली अभी स्नान कर रही थीं, किशन सूखे वस्त्रों की रखवाली कर रहा था और शंकर दाल -बाटी की संभाल में व्यस्त था।

"माधवी!" मीरा चौंक कर पलटी तो देखा सम्मुख चम्पा खड़ी थी। मीरा चरण स्पर्श को झुकी तो चम्पा ने आगे बढ़ उसे गले से लगा लिया। वे दोनों पेड़ की आड़ में बैठ गईं तो चम्पा ने स्नेह से कहा, "माधवी, एक संदेश है तेरे लिये, श्यामसुन्दर की इच्छा है कि अब तू द्वारिका चली जा।"

मीरा की आँखें भर आई, शब्द जैसे कण्ठ में ही अटक गये। कुछ क्षण के पश्चात स्वयं को संभाल कर वह बोली, "बहिन! ......क्या कहूँ? श्यामसुन्दर कृपा पारावार हैं! उन्होंने मेरे लिए कुछ अच्छा ही सोचा होगा। पर किशोरीजू....., किशोरीजू मुझे स्मरण करती हैं?" श्रीराधारानी का नाम लेते-लेते मीरा सिसकने लगी।

"तेरी इस देह का दोष है माधवी!" फिर बात को बदलते हुए चम्पा मुस्कराने का प्रयास करती हुई बोली, "श्री किशोरीजू की स्मृति में तो तू सदा है। देख, हम सखियों में कौन छोटा बड़ा है ....और हम सब प्रियाजी की अपनी हैं........और.....और.....बस अब तेरा धरा धाम पर रहने का अधिक समय तक नहीं रह गया है।"

मीरा उल्लसित हो उठी - "सच, सदा के लिये मैं किशोरीजू की सेवा में, उनके चरणों में रह पाऊँगी!" पर चम्पा को एकाएक चुप और मुख मुद्रा बदलते देख मीरा अपनी आशंका को परे ठेलते हुये उसे मनाते हुये बोली, "कहो न बहिन! कुछ छिपाओ न! प्रियतम का मेरे लिए पूर्ण संदेश कहो, प्रियतम से संदेश है तो मेरे लिए प्रियकर ही होगा। उनकी प्रत्येक बात, प्रत्येक विधान रसपूर्ण है। इस दासी को वे जैसे चाहें जहाँ रखें। मैं कहीं भी रहूँ, जिस अवस्था में रहूँ, उन्हीं की रहूँगी। इसमें सोचने की क्या बात है? द्वारिका भी तो मेरे ही प्राण प्रियतम का धाम है।"

चम्पा मीरा को सांत्वना युक्त शब्दों में पर स्पष्ट कहने लगी, "तुमने माधवी के रूप में प्रथम बार श्यामसुन्दर के ऐश्वर्यमय स्वरूप के दर्शन पाये। तुम्हीं ने कहा था कि उनके चार हाथ हैं, दो से वंशी संभाले हैं, एक से गिरिराज उठाए हैं और एक हाथ अभय मुद्रा (आशीर्वाद मुद्रा में) उठा है।" उसने मीरा की ओर देखा तो उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया। फिर

चम्पा पुनः कहने लगी - "तुमने सदा गिरधर गोपाल कहते हुये द्वारिकाधीश की उपासना-कामना की, तुम्हारे भावों के अनुसार द्वारिकाधीश से ही तुम्हारा विवाह हुआ।" "क्या कोई भूल हुई ? मैं अन्जान-अबोध बालक थी।" मीरा ने कम्पित स्वर में कहा।

" नहीं रे!" चम्पा बोली, "बस इतना ही कि वे भक्तवाञ्छाकल्पतरू हैं, भगवान भक्त के मन का भाव स्वीकार करते हैं। तुमने उनकी पत्नी के रूप से उपासना की तो फिर पत्नी को तो पति के घर में ही रहना चाहिये न!" मीरा भूमि की ओर देखती हुई चुप सी बैठी रही।

देख माधवी, संकोच न कर! जो भी कहना है, कह दे। मैं जाकर, जो तू कहे, उनसे जा कह दूँगी। वे तो निजजनप्राण हैं। उनका तो मुझसे तुम्हें कहलवाने का तात्पर्य यह था कि यदि यह व्यवस्था तुझे न रूचे, अथवा तुम जो चाहो, अथवा इसी में कोई परिवर्तन या कोई नवीन व्यवस्था चाहो, तो वैसा ही कर दिया जाये। वे तेरी इच्छा जानना चाहते हैं।" चम्पा ने स्नेह से मीरा का हाथ अपने हाथ में ले सहलाते हुये कहा।

चम्पा का अपनत्व से भरा स्नेहाभिसिक्त स्पर्श पा मीरा की आँखें बरस पड़ी। वह चम्पा से लिपट गई - "नहीं बहिन! नहीं, वे जो चाहें, जैसी चाहें, वैसी व्यवस्था करें। उनकी उदारता, करूणा अनन्त है। अपने जनों का इतना मान, इतना मन कौन रखेगा? मुझे तो यह जानकर कष्ट हुआ कि उन्हें मुझसे पुछवाने की आवश्यकता क्यों जान पड़ी? अवश्य ही अंतर में कोई आड़-ओट बाकी है अभी। यदि है भी तो बहिन, बस..... वह मिट जाये, ऐसी कृपा कर दो .....बस.....यही चाहिए मुझे।" चम्पा प्रसन्न हो उठी -"यही तो चाहिए बहिन! पर इतनी सी बात लोग समझ नहीं पाते!

चिन्मय श्री वृन्दावन धाम के एक बार दर्शन के पश्चात उसे छोड़कर कहीं ओर पग बढ़ाना, मानों लक्ष्य स्थल पर पहुँच दूसरी दिशा की ओर चलना प्रतीत हो रहा था। पर शरणागतवत्सल और मंगल विधान भगवान की करूणा का स्मरण कर, अपने आँसुओं के उमड़ आये सैलाब को संभालते हुये मीरा कहने लगी, "और बात रहने दो चम्पा! कुछ उनकी चर्चा करो बहिन! श्री श्यामसुन्दर, श्री किशोरीजू कभी अपनी इस दासी को स्मरण करते हैं क्या? तुम्हें देखकर प्रिय-मिलन सा सुख हुआ। उनकी वार्ता श्रवण को प्राण प्यासे हैं।"

अपने आँचल से चम्पा ने मीरा के झर-झर बहते आँसू पौंछे, "धीरज धरो बहिन! अब अधिक विलम्ब नहीं है। और बताओ, कभी अपनों को कोई भुला पाता है भला? नित्य सांझ को जब सब सखियाँ इकट्ठी होती हैं, जब नृत्य की प्रस्तुति होती है, तब किशोरीजू और श्यामसुन्दर के मध्य तेरी चर्चा चलती है। बहुधा तो मुझसे भी तेरे बारे में पूछते हैं। कई बार तो तेरा नाम लेते ही तेरे वियोग में उनकी आँखें भर आती हैं। वे तेरे दु:ख से दु:खी होकर कहते हैं -मीरा की सेवा, प्रशंसा करने वाला मुझे बहुत प्रिय है और उसका विरोध करने वाला मेरा भी वैरी है।"

"मीरा?" मीरा ने चौंककर सिर उठाया। "हाँ, कभी-कभी वे तेरा यह नाम भी लेते है। एकबार किशोरीजू ने पूछा तो उन्होंने कहा - "मुझे मीरा का यही नाम अधिक प्रिय है। माधवी बनकर उसने क्या पाया? मीरा होकर तो उसने मुझे अपने प्रेम-पाश में बाँध लिया है।" "तुमने कहा कि मेरा विरोध करने वालों से वह नाराज हैं। उनसे कहना बहिन! वे बेचारे अन्जान - अबोध उनकी दया के पात्र हैं। मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि उन पर भी कृपा करें।" मीरा ने हाथ जोड़कर चम्पा के पाँव पकड़ लिये। चम्पा हँसती हुईं बोली, "यह तो उनका स्वभाव है बहिन! भक्त के सामने अपनी समदर्शिता भूल जाते हैं वे।"

"किन्तु मेरी प्रार्थना भूल न जाना चम्पा! जीव ही अपना अभाग्य न्यौत लाता है। देख, बहिन! विरोध करने वाले कोई भी हों, उन्होंने मेरा हित ही किया है बहिन! विरोध से तो दृढ़ता आती है। यदि दु:ख देने वाले न हो तो जीव के पाप-कर्म कैसे कटें? नहीं-नहीं, चम्पा! उन जैसा तो हित करनेवाला तो कोई नहीं। भला कहो तो सही, सर्वेश की नाराजगी लेकर भी किसी के पाप काट देना क्या सहज है? बस चम्पा, मैं तो यही चाहती हूँ कि उन सबका भी भला हो।"

"बाईसा हुकम! ठाकुर जी को भोग लग गया। आप भी प्रसाद ले लेतीं।" चमेली ने आकर जैसे ही कहा, तो उसकी दृष्टि चम्पा पर पड़ी। चम्पा का आलौकिक रूप और वस्त्र आभूषण देखकर वह एकाएक हतप्रभ सी हो ठिठक गई। और फिर अपनी स्वामिनी के बराबर आसन पर उसे किसी सखी की समान बैठे देख चमेली को थोड़ा बुरा भी लगा। "अरी चम्पा! कहाँ चली गई थी बिना बताये? तुझे ढूँढ ढूँढकर तो उनके

पाँव ही थक गये। किसी बड़े राजा के यहाँ चाकरी करने लगी है क्या? बाईसा हुकम जैसी स्वामिनी तू सात जन्म में भी नहीं पा सकेगी, समझी?

"हाँ! हाँ, समझी।"- चम्पा हँसती हुई बोली, "आज तेरे हाथ का बना प्रसाद पाने की मन में आई, इसलिए आ गई।"- कहते हुये उठकर उसने चमेली को ह्रदय से लगा लिया। चम्पा का स्पर्श होते ही चमेली को उसके आलौकिक स्वरूप का ज्ञान हुआ। वह आश्चर्यचकित सी हो उसकी ओर देखती रह गई, और फिर कुछ समझ पाने पर उसके चरणों में गिर आँसू बहाने लगी। यही अवस्था केसर की भी हुईं। उनको देखा-देखी किशन और शंकर ने भी चरणों पर मस्तक रखा। इतने समय तक साथ रहकर भी न पहचान पाने के लिए और कभी खरी-खोटी कह पड़ने के लिए चमेली ने क्षमा याचना की। "उठो भाई!" उसने हाथ से मस्तक स्पर्श किया और उन सबको जीवन सफल होने का आश्वासन दिया। फिर चम्पा हँसती हुईं बोली, "चमेली! बहुत भूख लगी है। आज गिरधर का प्रसाद नहीं मिलेगा क्या?"

मीरा झट आगे आकर बोलीं, "सदा आप सब ने मेरी सेवा की है। आज मैं सबको परोसती हूँ ... आज यह सेवा मुझे करने दो।" "नहीं, हम दोनों आज क्यों न साथ ही प्रसाद पायें, फिर ऐसा सुयोग कब मिले?" चम्पा ने अपनत्व से भावुक होते हुये कहा - "आ, मेरी थाली में तू भी पा ले।"

भोजन के बीच केसर ने देखा कि सबकी नजर बचाकर उसकी स्वामिनी ने चम्पा के हाथ से उसका झूठा ग्रास छीनकर अपने मुख में डाल लिया।

"अब मैं चलूँ?" चम्पा चलने को प्रस्तुत हुई। सेवक - सेविकाओं ने पुनः प्रणाम किया। मीरा कुछ दूर तक पहुँचाने चलीं। मीरा का मन फिर भर आया - "जब तक वृन्दावन का रस नहीं चखा था, जब तक सब इतना भावमय नहीं था। तब इतना कुछ नहीं होता था। अभी तो लगता है जैसे कोई प्राणों को ही खींचकर बाहर निकाल रहा हो। यहाँ लग रहा था कि आप सब मेरे साथ हो, श्यामसुन्दर मेरे साथ हैं, वृन्दावन में मुझे कहीं एकान्त नहीं अनुभव होता था। मैं जैसे ...जैसे अपने घर में ....अब ...." कहते-कहते मीरा के शब्द जैसे आँसुओं में अटक गये।

"तू क्यों व्याकुल होती है पगली! तू जब चाहे, तब श्यामसुन्दर

नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जायेंगे। अब वह और तू दो रहे हैं क्या?" - चम्पा उसे सान्तवना देती कहने लगी। "नहीं बहिन! मीरा तो कबकी उनमें लय हो गई। इस देह में - इसके रोम-रोम में बस और बस वही हैं ..... फिर भी प्रत्यक्ष बिछुड़ना प्राणघाती लगता है।" "अब चलती हूँ, तू अपनी संभाल करना। तू यहीं ठहर!" - चम्पा ने मीरा को स्नहाभिसिक्त आलिंगन दिया और आगे चलकर पेड़ों के झुरमुट में लोप हो गई।

चम्पा का परिचय पाकर चमेली और केसर चकित थीं। जीवन साथ-साथ बिता दिया, फिर भी पहचान नहीं पाया कोई भी। और मीरा की आँखों में आज नींद नहीं थी। वह चिन्मय वृन्दावन का जिया प्रत्येक क्षण फिर से जी लेना चाहती थी। उसकी स्मृति पटल पर एक-एक करके यहाँ की सब लीला दर्शन उबर कर आने लगे। उसे वह दिन भी स्मरण में आया जिस दिन वे सब वृन्दावन पहुँचे और फिर यहीं सेवाकुन्ज सिद्ध स्थली के पास वह आकर यहाँ से कहीं ओर न जाने के विचार से रच बस गई और वह उसका अति रूचिकर पद.......

आली म्हाँने लागे वृन्दावन नीको......

मीरा अपने ही भाव और स्वर की लहरियों में उतरने लगी......

चम्पा और मंगला दो ही अविवाहित दासियाँ थी जो मीरा के विवाह के उपरान्त उसके साथ चित्तौड़ गई थीं। चम्पा के जाने के पश्चात् चमेली को मंगला की बहुत याद आने लगी। मेड़ता से वृन्दावन आते समय मीरा, मंगला को श्यामकुँवर सा बाई की देख-रेख के लिए छोड़ आई थी। यूँ तो श्यामकुँवर के पास दास दासियों की कमी न थी, पर फिर भी भगवत्सम्बन्धी भजन वार्ता सुनाने हेतु आदेश देकर मंगला को अपने पास ही रख लिया था।

पच्चीस वर्ष व्रज में निवास करके मीरा ने विक्रम संवत 1621 में द्वारिका के लिये प्रस्थान करने का निश्चय किया। उस समय उनकी आयु पचपन वर्ष के ऊपर थी। अपने प्राणपति श्री द्वारिकाधीश के दर्शन के लिए वे प्राणप्रियतम के आदेशानुसार तीर्थयात्रियों के दल के साथ प्रस्थान करने को प्रस्तुत हुईं। उस समय उनके केशों में सफेदी झाँक चुकी थी। ठीक प्रस्थान की पूर्व संध्या में मंगला आ गयी। मंगला को देख चमेली और केसर की प्रसन्नता की सीमा न रही।

मीरा भी इतने वर्षों के पश्चात् यूँ एकाएक मंगला को मिल अति प्रसन्न हुईं। कुशल समाचार पूछने पर मंगला ने बताया - "श्यामकुंवर बाईसा को पुत्र लाभ हुआ। जोधपुर के राव मालदेव की अनीति और अनाचार के कारण मेड़ता का पराभव हुआ और राव वीरमदेव जी को दर -दर की ठोकरे खानी पड़ीं। असीम उथल-पुथल घमासान पारस्परिक युद्ध और राजोचित चातुर्य के बाद मेड़ता पर राव वीरमदेव जी का पुनः अधिकार हो गया। मेड़ता प्राप्त करने के दो माह बाद ही वि०सं० १६०० में राव वीरमदेव जी का देहावसान हो गया। राव वीरमदेव जी के बाद राव जयमल मेड़ता की गद्दी पर आसीन हुये।"

मीरा पीहर का समाचार जान मिश्रित से भावों में गिर गई। फिर उसने पूछा, "अब तो सब कुशल हैं न मंगला, मेड़ते में। तू क्यों भाग आयी पगली! सुख से वही रहती।" मंगला ने अरज किया, "मेरी कुशलता और सुख तो इन चरणों में हैं हुकम! जहाँ ये चरण हैं वही मैं। वहाँ तो आपके आदेश के बंधन में बंधकर रह जाना पड़ा और रही बात अब मेड़ता की तो, सो सरकार! राजा जोधाणनाथ की तृष्णा-कोप मिटे तो कुशलता समीप आये। जोधाणनाथ के कारण राव जयमल को मेड़ता छोड़ना पड़ा। कुछ दिन इधर-उधर गुजारने के बाद वे चित्तौङ चले आये। महाराणा उदयसिंह जी ने बड़ा आदर-सत्कार कर उन्हें चित्तौड का दुर्गाध्यक्ष घोषित किया। जब अन्नराज मेड़ते छोड़ अन्यत्र पधारने लगे तो मैंने वहाँ से वृन्दावन आने का निश्चय कर लिया। बाईसा के हुक्म से आज्ञा प्राप्त करके मैं यात्रियों के साथ वृन्दावन के लिये चल पड़ी। वृन्दावन जाने का मेरा मन देख श्यामकुँवर ने फरमाया - जाओ जीजी! जाओ। अपने सुख के पीछे मैं तुम्हारा सुख क्यों मिट्टी करूँ। म्हाँरी म्होटा माँ को अरज करना कि मैं कितनी ही दूर क्यों न रहूँ, मन सदा आपके चरणों की ही परिक्रमा लगाता रहता हैं। अपनी इस छोरू श्याम को भूल न जायें, बस इतनी कृपा बनी रहे। कभी-कभार याद करके अपनी गोद की लाडली श्यामा को सनाथ बनाये रखें! इतना कहते-कहते वे बेतहाशा रोने लगीं।"

यह सुन मीरा की आँखों में आँसू भर आये और लाडली श्यामा के बचपन की अनेक स्मृतियाँ उसके मानस-पटल पर नृत्य करने लगीं। मंगला के मुख से लाडली श्यामा का समाचार सुनकर मीरा ने गंभीर

श्वास छोड़ते हुए कहा- "बेटा! तेरे गोपाल जी तेरी सार-संभाल करेंगे। वे ही तो एक अपने हैं। म्होटा मा काँ मोह छोड़!"

प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही मीरा श्यामा-श्याम की आज्ञा ले यात्रियों-संतो के साथ द्वारिका के लिए चल पड़ी। इन पच्चीस वर्षो में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। दूर-दूर के संत-यात्री उनके सत्संग-लाभ और दर्शन के लिए हाजिर होते। ज्ञान-भक्ति की गहन-से-गहन गाँठ वे सहज शब्दों में ही सुलझा देतीं। चमेली और मंगला ने यात्रा में उनके लिये सवारी का प्रबंध करना चाहा, पर मीरा ने मना कर दिया। उन्होंने कहा - "वृन्दावन और गिरिराज की परिक्रमा करने से अब चलने का अभ्यास हो गया हैं।"

यात्रियों, संतों की टोली के साथ जैसे-जैसे मीरा अपने गन्तव्य की तरफ़ बढ़ती जा रही थीं, उसका उत्साह भी बढ़ रहा था। जैसे द्वारिका का पथ कम होता जाता....... द्वारिकाधीश के दर्शन का उत्साह उसकी त्वरा को बढ़ा रहा था। वृन्दावन की सब स्मृतियाँ ह्रदय के एक कोने में सुरक्षित थीं .....पर यहाँ मीरा को अनुभव होने लगा .....मानों वे गिरधर के घर जा रही हो........ उसके ह्रदयगत भाव पद का स्वरूप धर संगीत की लहरियों में वातावरण को सुगन्धित करने लगे....

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ.......
गिरधर मोरे साँचे प्रीतम, उन सँग प्रीत निभाऊँ॥
जिनके पिया परदेस बसाये, राह तकत नैना थक जाये।
मोरे पिया मोरे मन में बसत हैं, नित नित दरसन पाऊँ ..
मात पिता और कुटुम्ब कबीला,झूठे जग की झूठी लीला।
साँचा नाता गिरधर जी का, उन संग ब्याह रचाऊँ ....
दूर से मुरली की धुन आये, मधुर मिलन के गीत सुनाये।
गिरधर जी का आया बुलावा, पँख बिना उड़ जाऊँ........
मैं तो गिरधर के घर जाऊँ......

चतुर्मास उन्होंने पथ में ही व्यतीत किया और मीरा सपरिकर द्वारिका पहुँची। द्वारिका और द्वारिकाधीश के दर्शन कर मीरा प्रसन्न मग्न हो गयीं। प्रभु के दर्शन कर, उनकी छवि को निहार उसका ह्रदय गा उठा ....

म्हारों मन हर लीन्हों रणछोड़।
मोर मुगट सर छत्र बिराजे कुंडल री छबि ओर॥
चरण पखारे रतनाकर री धरा गोमत जोर।
धुजा पताका तट-तट राजे झालर री झकझोर॥
भगत जणा रा काज सँवार्या म्हाँरा प्रभु रणछोर।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर कर गह्यो नन्दकिशोर॥

मीरा की कीर्ति उनसे पहले ही द्वारिका पहुँच गयी थी। उनके आगमन का समाचार सुनकर संत-भक्त सत्संग के लोभ से आने लगे, जैसे पुष्प गंध पाकर भ्रमरों का झुंड चला आता हो। उनकी अनुभव-पक्व -वाणी, स्निग्ध मुखाकृति, तेजोदिप्त नेत्र, त्यागमय जीवन और राग-रागनियों से युक्त भावपूर्ण अद्भुत-आलौकिक कंठ स्वर आने वाले भक्तों के सारे संशयो का नाश कर देते थे। मीरा की देह में अब हल्की सी स्थूलता आ गयी थी, किन्तु जब वे रणछोड़राय के सामने भाव-विभोर नृत्य करती तो लगता कि किसी अन्य लोक की देवांगना ही धरा पर उतर आई हैं।

गोमती की धारा और उसका सागर से मिलन उस सागर का अंतहीन विस्तार और गहराई उन्हें अपने स्वामी से मिलने का सन्देश देती, वे सब उनके ऐश्वर्य के प्रतीक से लगते। वे प्रातः सागर गर्भ से उदभूत अंशुमाली (सूर्य) को एकटक देखती रहती। इसी प्रकार सांयकाल जब वे प्रचण्ड रश्मि अपना तेज समेटकर अनुराग-रंजित हो देवी प्रतीची के भवन द्वार पर होते, उनके प्राण एक अनोखी पीड़ा से छटपटा उठते। कभी मीरा को लगता कि द्वारिकाधीश किनारे के उस पार मुस्कराते हुए खड़े हैं और गोमती की उत्तालित तरंगे ठाकुर के श्री चरण धोवन के लिए आपस में होड़ लगा रही हो।

मीरा की आँखों के सामने द्वापर की द्वारिका मूर्त हो जाती और......और उस द्वारिका में सहस्त्रो भवनों को समेटे हुए वह स्वर्ण परिखा, उसका वह रत्नजडित द्वार, उस द्वार के दर्शन मात्र से वे अधीर हो जातीं। उनकी देह काँपने लगती और द्वार में प्रवेश से पूर्व ही अचेत हो भूमि पर गिर पड़तीं। कभी उस द्वार पर टकटकी लगाए देखती रहतीं, "यह, यह तो अपना ही, अपने स्वामी और उनकी प्रियतमा पत्नियों के

महलों का द्वार है।

कितने लोग आ जा रहे थे उस द्वार से..... कितनों को मैं पहचानती हूँ...... ये, ये सात्यकी हैं और ये क्रतवर्मा नारायणी सेना के उदभट वीर सेनापति ....ये साम्ब जा रहे हैं और ये..... उद्धव, प्रधुम्न, अहा! प्रधुम्न ने कैसी मुख छवि पायी है बिलकुल अपने पिता की तरह, सहसा देखकर लगता है कि वही हैं.... और वे आ रहे हैं भुवनपति द्वारिकाधीश, मेरे.....मेरे.....प्राणपति......मेरे.....सर्वस्व....मेरे घूँघट की लाज......मेरे जीवन की अवधि......मेरे.....आगे कुछ कहने को नहीं मिलता। वह मदगज चाल, वह मोहन मुस्कान, दृगों की वह....वह अनियारी चितवन...अहा... उन्होंने मेरी ओर देखा, देखा पहचान आयी दृष्टि में ये.........ये मुस्कराये.... .....मेरी ओर देखकर ....।"

मीरा गोमती तट पर यह सब दर्शन करते-करते मूर्छित हो जाती और दासियाँ उपचार करने में जुट जातीं। दूर खड़े लोग उनकी दशा देख "धन्य, धन्य" कर उठते। उनकी चरण-रज सिर पर चढ़ाकर स्वयं को कृतार्थ मानते। उनके अधीर प्राण देह की बाधा को पार करने के लिये व्याकुल हो उठते - दासियाँ, सखियाँ समझाती पर उनकी व्याकुलता बढ़ती ही जाती। वे गाते हुए अपने भावों का श्रृंगार करतीं............

राय श्रीरणछोड़ दीज्यो द्वारिका रो वास।
शंख चक्र गदा पद्म दरसे मिटे जैम की त्रास॥
सकल तीर्थ गोमती के रहत नित-निवास।
संख झालर झांझर बाजे सदा सुख की वास॥
तज्यो देसरु वेस हू तजि तज्यो राणा वास।
दास मीरा सरण आई थाने अब सब लाज॥

वह प्रभु से निहोरा करती हुई कहतीं, "तुम्हारा विरद मुझे प्रिय लगा। इसलिए सब मेरे वैरी हो गये। अब यदि तुम सुधि ना लो, ना निभायो, तो मुझे कहीं कोई सहारा नहीं है।" मीरा ने अपने वे सुन्दर घने केश जिनमें कहीं-कहीं सफेदी झाँक उठी थी, मुँडवा लिए। भगवा वेश धर हाथ में इकतारा ले वे करूणा और भक्त वत्सलता के पद गातीं।

मीरा के भावों में अधिकतर विरह रस ही होता। एक ऐसी विरहणी की दशा जो ठाकुर के दर्शन सुख के लिए कब से वन-वन डोल

रही हैं। एक ऐसी विरहणी जो कब से द्वारिकाधीश की एक झलक के लिए..... एक संदेश के लिए तरस रही हैं ...... गोमती के किनारे झरती आँखों से वह घंटों उसकी लहरों से अपने प्रियतम का संदेश पूछते हुए कहतीं.........

कोई कहियो री हरि आवन की, आवन की मनभावन की।

एक बार एक दु:खी व्यक्ति, जिसका एकमात्र युवा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ, वह सभी तीर्थों में घूमता-फिरता द्वारिका पहुँचा और मीराबाई का नाम सुन दर्शन करने आया। अपनी विपद गाथा मीरा को सुना उसने साधु होने की इच्छा को प्रगट किया। मीरा ने समझाया - "क्या केवल घर छोड़ना और कपडे रंगाना ही तुम्हारी समस्या का हल है?" व्यक्ति बोला- "मैं दु:ख से तप गया हूँ। पुनः दु:ख का सामना नहीं करना चाहता।"

मीरा ने व्यक्ति को सांत्वना देते हुए कहा - "दु:ख-सुख भौतिक वस्तु नहीं हैं, कि कोई उठाकर तुम्हे दे दे। अथवा कोई सेना नहीं कि तुम भागकर उससे बच सको। तुम्हारा अर्थ हैं कि पुत्र की मृत्यु से तुम्हें जो दु:ख की अनुभूति हुई, वह तुम्हें फिर ना झेलनी पड़े। यही ना?" "जी सरकार।" वह व्यक्ति बोला।

मीरा ने आगे सहजता से समझाते हुए कहा, "कि इसका अर्थ तो केवल यह है कि इस दु:ख की अनुभूति से तुम्हे पीड़ा है। पुत्र इसलिए प्रिय है कि उसके जीवित रहने से सुख और मरने से दु:ख का अनुभव होता है। और यह इसलिए क्योंकि तुम्हारा उसमे मोह है। यह मेरा है, बड़ा होकर मेरा सहारा बनेगा, बहु आयेगी, सेवा करेगी, पौत्र होगा, वंश बढेगा, मरने पर मरणोत्तर कार्य करेगा, यही ना?" व्यक्ति ने स्वीकृति में सिर झुका दिया।

"सोचकर देखो! ये सब भावनाएँ केवल अपने लिए ही तो थीं। अपने सुख की इच्छा, और इस इच्छा में बाधा पड़ते ही तुम्हें दु:ख ने आ घेरा। परन्तु सोचकर देखो - यदि पुत्र जीवित होता और तुम्हारी इच्छा के विपरीत व्यवहार करता, तो क्या तब भी तुम साधु होने की इच्छा करते क्या?" "आपका फरमाना ठीक है।"

"तो इस दु:ख से मात्र निवृत होने की तुम्हारी इच्छा को भगवान से जुड़ने की, उन्हें पाने की लालसा का, भक्ति का नाम देना तो उचित नहीं

होगा। यह तो परिस्थिति से आँखें मूँद कर विमुख होना पलायन है, भक्ति की तो इसमें सुगन्ध भी कहीं नहीं।" मीरा कुछ रूक कर पुनः बोलीं, "पर सोचो तो तुम तो फिर भी ठीक हो जो दु:ख से निवृत होने के कारण और कुछ मोह से वैराग्य होने पर इस माया से निकल आने की बात तो सोचते हो। अधिकाँश लोग तो इस मोह के गर्त से निकलना ही नहीं चाहते। रात-दिन कलह, व्यथा, चिंता झेलकर भी वह मोह को नहीं छोड़ पाते। क्योंकि मोह ही दुःख का मूल हैं। पाप का पिता मोह, माता तृष्णा और क्रोध, लोभ, मद-मत्सर, आशा आदि कुटुम्बी हैं। इनका एक भी सदस्य मन में घुसा नहीं कि धीरे-धीरे पुरे कुटुंब को ले आता हैं। फिर पाप की पत्नी अशांति तथा बेटी मृत्यु भी आकर क्रमशः हमें ग्रस लेती हैं। और इनसे बचने का उपाय केवल और केवल भजन हैं, साधू होना नहीं। अभी तुम्हारे षट विकार दूर नहीं हुए हैं कि खाने-सोने की चिंता न रहे। यदि साधू हुए, तो सबसे पहली तो चिंता तुम्हे यह लगेगी कि कहाँ रहें, क्या खाये, और कहाँ सोये। यदि वैराग्य ही नहीं हैं तो कठिनाई नहीं सह पाओगे और संसार से विरक्ति ना होकर साधू वेश से ही विरक्ति हो जायेगी।"

मीरा ने इकतारा उठाया और सदा के मधुर स्वर में उसे और जीव मात्र को उपदेश देते हुये गाया कि, " हे मेरे मन! तू उस अविनाशी हरि के चरण कमल का ध्यान धर! जो तुझे आज धरती और आकाश के मध्य जो भी दिखाई दे रहा है, वह सब विनष्ट हो जायेगा! तीर्थ यात्रा, कोई व्रत के पारण और न ही इस शरीर को कोई कष्ट देने से तुझे प्रभु की प्राप्ति हो सकती है! यह संसार तो एक चौसर की बाजी के समान है जो शाम ढ़लते ही उठ जायेगी और उसी तरह यह देह भी मिट्टी में ही मिल जायेगी! योगभक्ति का अर्थ समझे बिना ऐसे ही भगवे वस्त्र पहन कर घर त्याग का कोई लाभ नहीं! अगर प्रीति पूर्वक भक्ति की युक्ति ही नहीं समझी, तो बार-बार उल्टे इसी जन्म मरण के चक्कर में ही रह जाना पड़ेगा ......

भज मन चरणकँवल अविनाशी।
जेताई दीसे धरण गगन बिच, तेताई सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा लिये करवत कासी॥
इण देही का गर्व न करणा, माटी में मिल जासी।

या संसार चौसर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी॥
कहा भयो है भगवा पहरयाँ, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगत नहीं जाणी, उलट जनम फिर आसी॥
अरज़ करूँ अबला कर जोड़े, श्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी॥

मीरा ने उसे सहजता से बताते हुये कहा, "अगर तुम भक्ति पथ पर शुभारम्भ करना ही चाहते हो तो शुष्क वैराग्य और सन्यास से नहीं बल्कि भजन से करो। भजन का नियम लो, और इस नियम को किसी प्रकार टूटने न दो। अपने शरीर रूपी घर का मालिक भगवान को बनाकर स्वयं उसके सेवक बन जाओ। कुछ भी करने से पूर्व भीतर बैठे स्वामी से उसकी आज्ञा लो। जिस कार्य का अनुमोदन भगवान से मिले, वही करो। इस प्रकार तुम्हारा वह कार्य ही नहीं, बल्कि समस्त जीवन ही पूजा हो जायेगा। नियम पूर्ण हो जाये तो भी रसना (जीभ) को विश्राम मत दो। खाने, सोने और आवश्यक बातचीत को छोड़कर, रसना को बराबर प्रभु के नाम उच्चारण में व्यस्त रखो।"

"वर्ष भर में महीने दो महीने का समय निकाल कर सत्संग के लिए निकल पड़ो और अपनी रूचि के अनुकूल स्थानों में जाकर महज्जनों की वार्ता श्रवण करो। सुनने का धैर्य आयेगा तो उनकी बातें भी असर करेंगी। उनमें तुम्हें धीरे-धीरे रस आने लगेगा। जब रस आने लगेगा, तो जिसका तुम नाम लेते हो, वह आकर तुम्हारे भीतर बैठ जायेगा। ज्यों-ज्यों रस की बाढ़ आयेगी, ह्रदय पिघल करके आँखों के पथ से निर्झरित होगा, और वह नामी ह्रदय-सिंहासन से उतर कर आँखों के समक्ष नृत्य करने लगेगा। इसलिए ......

राम नाम रस पीजे मनुवा, राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सत्संग बैठ नित, हरि चर्चा सुन लीजे॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित्त से दूर करी जे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजे॥

"आज्ञा हो तो एक बात निवेदन करना चाहता हूँ!" एक सत्संगी ने पूछा। और मीरा से संकेत पा वह पुनः बोला, "जब घर में रहकर भजन

करना उचित है अथवा हो सकता है तो फिर आप श्रीचरण (मीरा) रानी जैसे महत्वपूर्ण पद और अन्य समस्त सुविधाओं को त्याग कर ये भगवा वेश, यह मुण्डित मस्तक ....?"

"देखिए, जिसके लिए कोई बन्धन नहीं है, जिसके लिए घर बाहर एक जैसे है, ऐसे हमारे लिए क्या नियम?"

म्हाँरा पिया म्हाँरे हिवड़े रहत है, कठी न आती जाती।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मग जोवाँ दिन राती॥

"सार की बात तो यह है कि बिना सच्चे वैराग्य के घर का त्याग न करें।" "धन्य, धन्य हो मातः!" सब लोग बोल उठे।

"क्षमा करें मात! आप ने फरमाया कि भजन अर्थात जप करो। भजन का अर्थ सम्भवतः जप है। पर जप में मन लगता नहीं माँ!" उसने दुःखी स्वर में कहा, "हाथ तो माला की मणियाँ सरकाता है, जीभ भी नाम लेती रहती है, किन्तु मन मानों धरा-गगन के समस्त कार्यों का ठेका लेकर उड़ता फिरता है। ऐसे में माँ, भजन से, जप से क्या लाभ होगा? बल्कि स्वयं पर जी खिन्न हो जाता है।"

मीरा ने उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुये कहा, "भजन का अर्थ है कैसे भी, जैसे हो, मन-वचन-काया से भगवत्सम्बन्धी कार्य हो। हमें भजन का ध्यान ऐसे ही बना रहे, जैसे घर का कार्य करते हुये, माँ का ध्यान पालने में सोये हुये बालक की ओर रहता है या फिर सबकी सेवा करते हुये भी पत्नी के मन में पति का ध्यान रहता है। पत्नी कभी मुख से पति का नाम नहीं लेती, किन्तु वह नाम उसके प्राणों से ऐसा जुड़ा रहता है कि वह स्वयं चाहे तो भी उसे हटा नहीं पाती। मन सूक्ष्म देह है। जो भी कर्म बारम्बार किए जाते हैं, उसका संस्कार दृढ़ होकर मन में अंकित होता जाता है। बिना मन और बुद्धि के कोई कार्य बार-बार करने से मन और बुद्धि उसमें धीरे-धीरे प्रवृत्त हो जाते हैं। जैसे खारा या कड़वा भोजन पहले अरूचिकर लगता है, पर नित्य उसका सेवन करने पर वैसी ही रूचि बन जाती है।"

"जप किया ही इसलिए जाता है कि मन लगे, मन एकाग्र हो। पहले मन लगे और फिर जप हो, यह साधारण जन के लिये कठिन है। यह तो ऐसा ही है कि जैसे पहले तैरना सीख लें और फिर पानी में उतरें।

जो मन्त्र आप जपेंगें, वही आपके लिए, जो भी आवश्यक है, वह सब कार्य करता जायेगा। मन न लगने पर जो खिन्नता आपको होती है, वही खिन्नता आपके भजन की भूमिका बनेगी। बस आप जप आरम्भ तो कीजिए। आरम्भ आपके हाथ में है, वही कीजिए और उसे ईमानदारी से निभाईये। आपका दृढ़ संकल्प, आपकी निष्ठा, सत्यता, को देख भजन स्वयं अपने द्वार आपके लिए खोल देगा।"

द्वारिका में मीरा घंटों सागर के तट पर खड़ी रहतीं। सागर की उत्ताल तरंगे उसे विभोर कर देतीं, किन्तु प्रिय-विरह उन्हें चैन न लेने देता। मीरा को वृन्दावन की उन रात्रियों का स्मरण हो आता, जब वह ललिता जू के संग गोवर्धन गिरि के कुञ्जों, यमुना पुलिन और वृंदा वीथियों में श्री श्यामसुन्दर की लीला दर्शन करती हुईं घूमती थीं। मीरा सोचती, "वृन्दावन पहुँच कर तो लगता था, बस गन्तव्य आ गया। अब कहीं नहीं जाना, कुछ देखना सुनना बाकी नहीं रहा। किन्तु धणी का धणी कौन है ? अब ये द्वारिकाधीश कहाँ परदेस जा बसे कि प्राणों की पुकार सुनते ही नहीं, मेरे ह्रदय का क्रन्दन उन्हें क्यों सुनाई नहीं देता! हाय यह मेरे प्राण इस पिण्ड (शरीर) में क्यों अटके हुए हैं? न तो प्रभु स्वयं दर्शन देते हैं और न ही कोई संदेश भिजवाते हैं। क्यूँ न मैं कटारी ले कर स्वयं को समाप्त कर लूँ? बस एक बार आपके दर्शन की लालसा ने ही मेरे प्राण बाँध रखे हैं!"

मीरा की व्याकुलता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। और उसे शांत करने का एक ही उपाय था, 'सत्संग'। संतों के दर्शन कर उनमें मानों नये प्राणों का संचार हो जाता था। वे स्वयं कहतीं......

श्याम बिन दु:ख पावाँ सजनी कौन म्हाँने धीर बँधावे।
साध संगत में भूल न जावे मूरख जनम गमावे।
मीरा तो प्रभु थाँरी सरणाँ जीव परम पद पावे॥

कभी-कभी तो मीरा श्रीकृष्ण के विरह में यूँ अचेत हो जाती, मानों देह में प्राण ही न हो। दासियाँ रो उठतीं, किन्तु मंगला धीर धरकर कीर्तन करने को कहती। उनके संकीर्तन से वह सचेत तो हो जातीं, पर उसकी पीड़ा देख वे पछताने लगती कि जब तक वह अचेत थीं, पीड़ा भी शांत थी। शायद मूर्छा में प्रभु दर्शन का सुख पा रही हों! सचेत होने पर वे कभी नील वर्ण सागर को अपना प्रियतम जानकर मिलने के लिए दौड़ पड़तीं।

और कभी गगन के नीले रंगों में घनश्याम को पकड़ने दोनों हाथ उठाकर उछल पड़तीं। दिन तो जैसे तैसे साधु-संग, भजन-कीर्तन में निकल जाता, किन्तु रात तो बैरिन ही होकर आती। मंगला बारम्बार समझाती, "बाईसा हुकम! द्वारिकाधीश पधारते ही होंगे! वे आपसे कैसे दूर रह सकते हैं? आप थोड़ा धीरज धारण करें।"

मीरा प्रभु के विरह में उस मीन की तरह तड़फती, जिसे जल से बाहर निकाल दिया हो। "मंगला! अब मैं उनके बिना कैसे रहूँ? मेरा पल-पल युग के समान बीत रहा है? क्या उन्हें मेरी इस पीड़ा का अहसास भी है? मिलकर बिछुड़ना तो उनका खेल है, पर मैं क्या करूँ? मैं चाहती तो हूँ कि वह जैसे, जिस हाल मैं मुझे रखें, उनकी प्रसन्नता में प्रसन्न रहूँ, किन्तु ......यह देह....... देह ही तो बाधा है! पापी प्राण इतना कष्ट पाते हैं, पर देह का मोह छोड़कर निकलते क्यों नहीं?"

तुमरे कारण सब सुख छोड़या, अब मोहि क्यूँ तरसावौ हौ।
विरह व्यथा लागी उर अन्तर, सो तुम आय बुझावौ हौ॥
अब छोड़त नहीं बणै प्रभुजी, हँसकर तुरत बुलावौ जी।
मीरा दासी जनम - जनम की, अंग से अंग लगावौ जी॥

मीरा का प्राण प्रियतम श्री श्यामसुन्दर के लिए विरह प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा था। एक दिन वह अचेत पड़ी थीं। मुखाकृति भी पहचान में नहीं आती थी। मुख से झाग और आँखों से पानी निकल रहा था। मीरा की तप्तकांचन वर्ण देह झुलसी कुमुदिनी के समान हो गई थी, पर सम्पूर्ण देह ऐसी फूली-सी लगती थी जैसे उसमें पानी सा भर गया हो। मुख से भी अस्पष्ट स्वर निकलता। मीरा की ऐसी दशा देख दासियाँ अतिशय व्याकुल थीं वे सब प्रयत्न करके भी स्थिति को संभाल पाने में असहाय थी।

सब मिल कर रोते हुए कण्ठ से प्रार्थना कर रही थीं, "हे द्वारिका नाथ! आपके भरोसे पर हम द्वारिका आई .....पर आप तो हमारी सुध ही नहीं ले रहे। हम तो जनम से अभागण हैं - जो ऐसी स्वामिनी पाकर भी न तो तुम्हारी भक्ति कर पाई और न ही हमसे इनकी उचित सेवा ही बन पड़ रही है। इतने पर भी, हे जगन्नाथ! किसी जन्म में हमसे भूल से भी कोई पुण्य बन गया हो तो कृपा कर हमारी स्वामिनी को दर्शन दो, ...दर्शन

दो ! हम असहायों का इस परदेस में तुम्हारे सिवा अब कौन अपना है जिसे हम अपना दु:ख बताये?" यूँ प्रार्थना करते-करते वे फूट-फूट कर रो पड़ीं। उसी समय द्वार पर स्वर सुनाई दिया, "अलख!"

"हे भगवान! अब इस राजनगरी में कौन निरगुनिया आ गया?" कहते हुए चमेली ने स्वागत के लिए द्वार खोला। उसने देखा - "यह तो आलौकिक साधु है। भगवा वस्त्र धारण किये, सोलह-सत्रह वर्ष का साँवला सिलौना किशोर।" चमेली ठगी सी कुछ क्षण उसका तेजस्वी मुख दर्शन करती रही। फिर प्रणाम कर खोये से स्वर में बोली - "पधारे भगवन! आसन ग्रहण करें। आज्ञा करें, क्या सेवा करूँ?"

"देवी! तुम्हारा मुख म्लान है। कोई विपत्ति हो तो कहो।" सन्यासी ने स्निग्ध स्वर में कहा। "आप हमारी क्या सहायता करेंगे, आप तो स्वयं बालक हैं! हमारी विपत्ति असीम हैं! और द्वारिकाधीश के अतिरिक्त उसका समाधान किसी के पास नहीं!" चमेली ने उदास और झुँझलाते हुए स्वर में कहा। तभी मंगला बाहर आई और सन्यासी को एकटक सी देखने लगी।

"क्या कोई नियम है कि सन्यासी को वृद्ध ही होना चाहिए अथवा यह कि ज्ञान बड़े-बूढ़ों की ही बपौती है?" सन्यासी ने हँसते हुये कहा। मंगला आगे बढ़ बात संभालते हुये बोली, "नहीं प्रभु! इसका ऐसा आशय नहीं था। वास्तव में हमारी स्वामिनी बहुत अस्वस्थ हैं और हम सब उनके जीवन से निराश है। बस मन व्यथित होने से किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही है। हमसे कुछ अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिए। और भीतर पधार प्रसाद ग्रहण करें।"

"तुम्हारे दु:ख का कारण तुम्हारी स्वामिनी का रोग है। देखिए, जिस घर से मैं भिक्षा लूँ, उस घर के लोग दु:खी-व्यथित हों, यह मैं सह नहीं पाता। मैं केवल उन रूग्ना को देखना चाहता हूँ। यदि मेरी शक्ति की परिधि में हुआ तो अवश्य ही.....". यति ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"पधारें प्रभु!" मंगला ने उन्हें भीतर आने का संकेत किया। योगी ने भीतर प्रवेश किया। मीरा को देख कर वह मुस्कुराया और सिर पर हाथ रख कुछ बड़बड़ाया। आश्चर्य और प्रसन्नता से सबने देखा कि मीरा की फूली हुई देह धीरे-धीरे सामान्य होने लगी। दो तीन घड़ी पश्चात ही मीरा उठ कर बैठ गयीं। जोगी ने सिर से हाथ हटाकर स्निग्ध सवर में पूछा -

"क्या हो गया तुम्हें?" यह कह यति खिलखिला कर हँस पड़ा।

मीरा किसी अपरिचित लेकिन अपनत्व से परिपूर्ण स्वर एवं स्पर्श को पा चौंक उस किशोर योगी को देखने लगी। यह......यह हँसी तो ब्रज में कई बार देखी सुनी है। मीरा के मुख से अनायास ही निकला, "श्याम ....सुन्दर!" जोगी फिर हँसा, "नहीं! मैं रमता जोगी। जैसा भेस, वैसी बात! किन्तु देवी! केवल मेरा वर्ण, मेरी सूरत आपके स्वामी से मिलती है, मैं वह हूँ नहीं। यह तो माया एवं आपका प्रेम है देवी, जो आपको सर्वत्र प्रभु ही दिखाई देते हैं। पर, एक बात है कि आप सचमुच ही बडभागी हैं। आपकी व्याकुलता ने प्रभु को व्यथित कर दिया हैं। वे आपसे मिलने को वैसे ही व्याकुल हैं, जैसे आप व्याकुल हो रही हैं। वे सर्वेश्वर, दयाधाम अपने जनों की पीड़ा सह नहीं पाते।" कहते-कहते यति की आँखे भर आयी।

"आप..........आप कौन हैं......... मेरे उपकारी?" मीरा ने चकित, दुखित, पर प्रसन्न स्वर में पूछा। "मैं उनका निजी सेवक!....प्रभु ने आपके लिए सन्देश पठाया है।" "क्या? क्या कहा मेरे स्वामी ने?........... क्या फरमाया है? मेरे लिए कोई आदेश दिया है क्या प्रभु ने?"........कहते ही मीरा की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। और कहा - "क्या कहूँ! मुझ अभागिन से उनकी आज्ञा का पालन पूरी तरह से नहीं हो पा रहा। मैं उनका वियोग प्रसन्न मन से नहीं झेल पा रही। निश्चय तो यही किया था कि जब स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य की तो मुझे उसे प्रसन्न मुद्रा से निभाना भी चाहिए, पर बताओ, विरह में कैसे कोई प्रसन्न रह सकता है? पर...... मेरी बात छोड़े .... मुझे कहिये, क्या सन्देश हैं प्रियतम का? .....वे यदि न आना चाहें, आने में कोई कष्ट हो ....,बाधा हो तो कभी न आयें ......मैं ऐसे ही जीवन के दिन पूरे कर लूँगी,....... और फिर जीवन होता ही कितना है?"

मीरा ने यति से स्नानकर प्रसाद पाने की प्रार्थना की। और पीछे खड़े हुए सेवक वर्ग की ओर देख कर बोलीं - "ये सब भी न जाने मेरी चिन्ता में कब से उपवास कर रहे हैं।" मीरा एकदम से उठने लगी तो दोनों ओर से केसर और मंगला ने थाम लिया। चमेली शीघ्रतापूर्वक रसोई में चली गयी और किशन यति की सेवा में लगा। भोजन विश्राम के पश्चात मीरा ने यति के चरणों में प्रणाम किया - "देव! आप जो भी हो, आपने

मुझे सांत्वना प्रदान की है। आप मेरे पति का सन्देश लेकर पधारे हैं, अतः आप मेरे पूज्य हैं। यद्यपि मेरे प्राण मेरे प्रियतम का सन्देश सुनने को आकुल हैं, फिर भी कोई सेवा स्वीकार करने की कृपा करें तो सेविका कृतार्थ होगी।"

"सेवक की क्या सेवा देवी ....? स्वामी की प्रसन्नता ही उसका वेतन भी है और सेवा ही व्यसन! आपकी यदि कोई इच्छा हो तो पूर्ण कर मैं स्वयं को बड़भागी अनुभव करूँगा।"

"अंधे को क्या चाहिये भगवन! दो आँखें और चातक क्या चाहे - दो बूंद स्वाति जल! मेरे आराध्य की चर्चा कर मुझे शीतलता प्रदान करें। क्या प्रभु कभी इस सेविका को याद करते हैं?......क्या कभी दर्शन देकर कृतार्थ करने की चर्चा भी करते हैं?......आप तो उनके अन्तरंग सेवक जान पड़ते हैं, अतः आपको अवश्य ज्ञात होगा कि उनको कैसे प्रसन्नता प्राप्त होती है? उन्हें क्या रुचता है? कैसे जन उन्हें प्रिय हैं? उनका स्वरुप, आभूषण वस्त्र.., उनकी पहनिया (पादुकायें).....उनकी क्रियायें .... उनका हँसना-बोलना ......,भोजन क्या कहूँ उससे सम्बंधित प्रत्येक चर्चा मुझे मधुर पेय-सी लगती हैं - कि जिससे कभी पेट न भरे.....यह पिपासा कभी शांत नहीं होती। कृपा कर बस आप उनकी ही बात सुनायें।"

"देवी! आपका नाम लेकर मेरे स्वामी एकांत में भी विह्वल हो जाते हैं। उनके वे कमलपत्र से दो नयन भर जाते हैं, कभी-कभी उनसे अश्रु मुक्ता भी ढ़लक पड़ते हैं। केवल लोक-कल्याण के लिए ही आपको परस्पर वियोग सहना पड़ रहा है।"

"मैं तो कोई लौक-कल्याण नहीं करती योगीराज! मुझे तो अपनी ही व्यथा से अवकाश नहीं है। औरों का भला मैं क्या कर पाऊँगी?"

यति ने मधुर स्वर में कहा - "आप नहीं जानतीं पर आपकी इस देह से भक्ति भाव-परमाणु विकीर्ण होते हैं। वे ही कल्याण करते हैं। जो आपके पास आते हैं, आपका दर्शन करते हैं, सेवा करते हैं, संभाषण करते हैं, उन सबका कल्याण निश्चित है। आप जिस स्थान का स्पर्श करती हैं, जहाँ थोड़ी देर के लिए भी निवास किया हैं, वह स्थान इतना पवित्र हो जाता है, कि इसके स्पर्श मात्र से ही लोगो में भगवत्स्मृति जाग्रत हो जाएगी।"

मीरा ने उन प्रशंसा पूर्ण शब्दों पर ध्यान न देते हुए सहज जिज्ञासा से यति से पूछा, "कोई ऐसा दिन आयेगा कि प्रभु मुझे दर्शन देने पधारेंगे?" कहते ही मीरा का गला भर आया और....., और रूँधे हुये कण्ठ से बोलीं....."मैं अपने विवाह के समय का उनका वह रूप भूल नहीं पाती। उसके बाद तो केवल एक बार ही दर्शन पा सकी। सारी आयु रोते कलपते ही बीत गयी महाराज!" कहने के साथ ही नेत्रों से आँसुओं की झरी लग गयी।

"क्या कहूँ...... विधाता की गति जानी नहीं जाती। विधाता ने हिरण को इतने दीर्घ, सुन्दर कजरारे नेत्र तो दिये लेकिन उनका उस वन में क्या प्रयोजन? बगुले का श्वेत उज्जवल वर्ण होता है तो उसकी कण्ठ ध्वनि विचित्र सी होती है और कोयल चाहे काली होती है पर उसका कण्ठ कितना मधुर होता है। इसी तरह नदी का जल मीठा और निर्मल रहता है तो समुद्र का जल विस्तृत पर खारा होता है। यह तो प्रारब्ध के खेल हैं कि किसके भाग्य में क्या आता है? कहीं तो मूर्ख को भी इतना सम्मान और यश मिलता है और कहीं विद्वान को हाथ फैलाना पड़ता है। इसी तरह महाराज मेरी भक्ति, कीर्ति का मेरे लिए उसका क्या प्रयोजन, जब मेरे प्रभु ने ही अभी मेरी भक्ति को स्वीकार नहीं किया!"

राम कहिए, गोबिंद कहिये मेरे,
राम कहिए, गोबिंद कहिये मेरे।
संतो कर्म की गति न्यारी, संतो॥
बड़े - बड़े नयन दिए मृगनको,
बन - बन फिरत उठारी।
उज्जवल बरन दीनि बगलन को,
कोयल करती निठारी।
संतो करम की गति न्यारी, संतो॥
और नदी पण जल निर्मल कीनी,
समुंद्र कर दिनी खारी।
संतो कर्म की गति न्यारी, संतो॥
मुर्ख को तुम राज दीयत हो,
पंडित फिरत भिखारी।

संतो कर्म की गति न्यारी, संतो॥

जोगी मीरा को द्वारिकाधीश का संदेश देते कहने लगा, "क्या कहूँ देवी! आपको देखकर ही स्वामी की आकुलता समझ में आती हैं। आप तो उनके ह्रदय में विराजती हैं। आप चिंता त्याग दें! प्रभु आपको अपनाने शीघ्र ही पधारेंगे, और फिर उनसे कभी वियोग नहीं होगा। मुझे उन्होंने आपके लिए यही संदेश देकर भेजा हैं।" योगिराज ने मीरा को सांत्वना देते हुये कहा।

मीरा प्रभु का स्नेह से परिपूर्ण सन्देश सुन हर्ष से विहवल हो उठी। कितने ही दिनों के पश्चात वह प्रसन्नता से पाँव में नुपुर बाँधकर, करताल ले नृत्य करने लगी। मीरा के प्रसन्न ह्रदय की फुहार ने उसके रचित पद की शब्दावली को भी आनन्द से भिगो दिया ....

सुरण्या री म्हें तो हरि आवेंगे आज।
मेहलाँ चढ़चढ़ जोवाँ सजनी कब आवेंमहाराज॥
दादुर मोर पपीहा बोले कोयल मधुराँ साज।
उमड्यो इन्द्र चहूँ दिश बरसे दामन छोड्या लाज॥
धरती रू प नव-नव धार्या इंद्र मिलण रे काज।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बेग मिलो महाराज॥

यति और दासियाँ मीरा को यूँ प्रसन्न देख आनन्दित हुये। जब-जब यति जाने की इच्छा प्रकट करता तो मीरा चरण पकड़कर रोक लेती - "कुछ दिन और मेरे प्यासे कर्णो में प्रभु की वार्ता रस सुधा-सिंचन की कृपा करें!" और मीरा के अश्रु भीगे आग्रह से बंधकर योगी भी ठहर जाते। मीरा ने एक बार भी उनसे उनका नाम, गाँव या काम नहीं पूछा, केवल बारम्बार प्रभु के रूप-गुणों की चर्चा सुनाने का अनुरोध करती, जिसकी एक-एक सुधा-बूँद शुष्क भूमि-सा प्यासा उसका ह्रदय सोख जाता। वह बार-बार पूछती, "कभी प्रभु अपने मुखारविंद से मेरा नाम लेते हैं? कभी उनके रसपूर्ण प्रवाल अधरों पर मुझ विरहिणी का नाम भी आता है? वे मुझे किस नाम से याद करते हैं योगिराज? सबकी तरह मीरा ही कहते हैं कि ....!"

"देवी! वे आपको मीरा कहकर ही स्मरण करते हैं। जैसे आप उनकी चर्चा करते नहीं अघाती (थकती), वैसे ही कभी-कभी तो हमें

लगता हैं कि प्रभु को आपकी चर्चा करने का व्यसन हो गया हैं। वे जैसे ही अपने अन्तरंग जनों के बीचएकांत में होते हैं, आपकी बात आरम्भ कर देते हैं। देवी वैदर्भी ने तो कई बार आग्रह किया आपको बुला लेने के लिए अथवा प्रभु को स्वयं पधारने के लिये।"

"सच कहते हैं भगवन? प्रभु के पाटलवर्ण उन सुकोमल अधरों पर दासी का नाम आया?' कहकर, जैसे वे स्वयं प्रभु हो, धीरे से अपने नाम का उच्चारण करती - 'मी....... रा।' मीरा फिर कहती --'भाग्यवान अक्षरों! तुम धन्य हो! तुमने मेरे प्राणधन के होठों का स्पर्श पाया है! स्पर्श पाया है उनकी मुख वायु का! कहो तो, किस तपस्या से, किस पुण्य बल से तुमने यह अचिन्त्य सौभाग्य पाया? ओ भाग्यवान वर्णों! वह राजहंस सम धवल (श्वेत) पांचजन्य ही जानता है उन अधरों का रस ...... इसलिए तो मुखर पांचजन्य उस सुधा-मधुरिमा का जयघोष करता रहता है यदा-कदा।"........वह हंसकर कहती और नेत्र बंद कर मुग्धा-सी धीरे-धीरे अपना ही नाम उच्चारण करने लगती। मीरा की वह भावमग्न दशा देखकर योगी उसकी चरण-रज पर मस्तक रख देते, उनकी (यति) आँखों से निकले आँसुओं से वह स्थान भीग जाता।

वह दिन आ गया जब योगी ने जाने का निश्चय कर अपना झोली-डंडा उठाया। मीरा उन्हें रोकते हुए व्याकुल हो उठी - "आपके पधारने से मुझे बहुत शान्ति मिली योगीराज! अब आप भी जाने को कहते हैं, तब प्राणों को कैसे शीतलता दे पाऊँगी। आप ना जायें प्रभु! न जायें!" एक क्षण में ही मानो जैसे आकाश में विद्युत दमकी हो ......ऐसे ही योगी के स्थान पर द्वारिकाधीश हँसते खड़े दिखलाई दिये..... और दूसरे ही क्षण अलोप! मीरा व्याकुल हो उठी ....

जोगी मत जा, मत जा, मत जा, जोगी।
पाँय परु मैं तेरे, मत जा जोगी॥
प्रेम भक्ति को पेंडों ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चन्दन की चिता बणाऊँ, अपने हाथ जला जा॥
जल बल होय भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा॥
मत जा, मत जा, मत जा, जोगी॥

मीरा रात दिन व्याकुल होकर सोचती - "कितने ही दिन प्रभु के साथ रही, पर मैं अभागिन उन्हें पहचान नहीं पाई। उन्हें योगी समझकर दूर-दूर ही रही। अच्छे से उनके चरणों में शीश भी नहीं निवाया। हे ठाकुर! करूणा भी करने आये थे तो वह भी छल से! अगर स्वयं को प्रकट कर देते तो प्रभु आपकी करूणा में कुछ कमी हो जाती।" वह रोते-रोते निहोरा देने लगी। फिर मीरा के भाव ने करवट बदली और स्वयं की प्रीति में ही कमी पा कर बोली, "हा! कहतें है कि सच्चा प्रेम तो अंधेरी रात में सौ पर्दों के पीछे भी अपने प्रेमास्पद को पहचान लेता है। पर मुझ अभागिन में प्रेम होता तो उन्हें पहचानती न? मुझमें प्रेम पाते तो वह योगी होने का नाटक क्यों करते? अब मैं क्या करूँ, उन्हें कैसे पाऊँ? क्या योगी भी एक स्थान पर अधिक देर तक कभी रूककर किसी के अपने हो पायें हैं?"

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होई।
प्रीत कियाँ सुख न मोरी सजनी जोगी मीत न होई।
रातदिवस कल नहिं परत है तुम मिलियाँ बिन मोई॥
ऐसी सूरत याँ जग माँही फेरि न देखिसोई।
मीरा रे प्रभु कब रे मिलोगे मिलियाँ आनन्द होई॥

पूर्णिमा की उज्ज्वल रात्रि है। समुद्र के ज्वार को उमड़ते हुये देख मीरा उससे बातें करने लगी - "हे सागर! तेरी दशा भी मुझ जैसी ही है। तू कितना भी उमड़े, उत्ताल लहरें ले, किन्तु चन्द्र तक की दूरी तय करना तेरे बस की बात नहीं - इसी तरह, मेरे भी प्राणनाथ मुझसे दूर जा बसे हैं। मैं गुणहीन उन्हें कैसे रिझाऊँ? पता नहीं, वह धाम कहाँ है जहाँ मेरे प्रभु विराजते हैं?"

मीरा गम्भीर रात्रि में एकटक सागर की तरफ देखती रहती - "हे महाभाग्यवान रत्नाकर! तुम स्वामी को कितने प्रिय हो? ससुराल होने पर भी वह स्थाई रूप से तुम्हारे यहाँ ही रहना पसन्द करते हैं। इतना ही मानों पर्याप्त न हो, द्वारिका भी तुम्हारे ही बीच बसाई। अपने प्रभु के प्रति तुम्हारा प्रेम असीमित है। सदा उनसे मिले होने पर भी तुम उनके मधुर नामों का गुणगान करते रहते हो। अहा! मधुर नाम कीर्तन करते-करते, उनके श्यामल स्वरूप का दर्शन करते-करते तुम स्वयं उसी वर्ण के हो गये

हो ! तुम धन्य हो, जो अपने प्रभु के रंग में रच बस गये हो, और मैं अभागिनी अपने प्रियतम के दर्शन से भी वंचित हूँ। क्या तुम मेरा संदेश मेरे स्वामी तक पहुँचा दोगे?"

"उनसे कहना कि एक दिन एक सुन्दर सुकुमार किशोर एक दिन जरीदार केसरिया वस्त्रों से सुशोभित अपने श्याम कर्ण अश्व पर सवार होकर मेरे पिता के द्वार पर आया था। मण्डप में बैठकर मेरे पिता ने उसके हाथ में मेरा कन्यादान किया। जब एकान्त कक्ष में मैंने उनके दर्शन किए तो..... वह रूप...... वह छवि उसका कैसे वर्णन करूँ? हे सागर! तुम्हारी तो फिर भी कोई सीमा, कोई थाह होगी पर उनके रूप माधुर्य को किसी परिधि किसी उपमा में नहीं बाँधा जा सकता। क्या तुमने उनकी वे रतनारी अखियाँ देखी हैं? क्या कभी उस अणियारी चितवन के तुमने दर्शन किये हैं? क्या कहा? उसी चितवन से ही घायल हो कर रात्रि पर्यन्त हाहाकार करते हो? सत्य कहते हो भैया! उनकी मुस्कान से अधिक क्रूर कोई बधिक (शिकारी) नहीं सुना जाना। इनकी चितवन की छुरी भी ऐसी जो उल्टी धार की, जो कण्ठ पर चलती ही रहे, छटपटाते युग बीत जाये, पर न बलि-पशु मरे और न छुरी रूके .... कहो तो यह कैसा व्यापार है?"

"हाँ ....तो मैं तुम्हें बता रही थी कि मैं तो अभी उस रूप माधुरी की मात्र झाँकी ही कर पाई थी कि मुझे अथाह वियोग में ढकेल, मेरे प्रियतम, मेरे हथलेवे का चिन्ह, मेरी माँग का सिन्दूर सब न जाने कहाँ अन्तर्हित हो गये। हे रत्नाकर! तुम उनसे कहना, मैं तबसे उस चितचोर की राह देख रही हूँ! मेरा वह किशोर, सुन्दर शरीर आयु के प्रहार से जर्जर हो गया है, मेरे घुटनों तक लम्बे केश सफेद हो गये हैं, किन्तु आज भी मेरा मन उसी भोली किशोरी की भाँति अपने पति से मिलने की आशा संजोये बैठा है। तुम उनसे कहना ......कि यह विषम विरह तो कभी का इस देह को जला कर राख कर देता, किन्तु दर्शन की आशा रूपी बरखा नेत्रों से झरकर उस विरह अग्नि को शीतल कर देती रही। तुम उन द्वारिकाधीश मयूर मुकुटी से पूछना, तुमने कहीं उस निष्ठुर पुरूष को कहीं देखा है? उसकी विरहणी की आँखें पथ जोहते-जोहते धुँधलाने लगी हैं। देह जर्जर हो गई है। आशा की डोर ने ही अब तो श्वासों को बाँध रखा है, पर अब यह वियोग और नहीं सहा जाता।" सागर से मन की बात करते वह गाने

लगी.........

दूखण....... लागे नैन, दरस बिन .....दूखण लागे नैन॥

द्वारिका में मीरा को सागर तट पर बैठे रहना, उससे अपने ह्रदय की बातें करना बहुत भाता था। वह घंटों तक समुद्र की लहरों को अपलक निहारा करती। कभी उसे लगता कि समुद्र के बीचों-बीच द्वारिका ऊपर उठ रही है। उसकी परिखा -द्वार से श्याम कर्ण अश्व पर सवार होकर मुस्कराते हुए श्यामसुन्दर पधार रहे हैं। हीरक जटित ऊँचा मुकुट, जिसमें लगा रत्नमय मयूर पंख अश्व की चाल से झूम जाता है। गले में विविध रत्नहारों के साथ वैजयन्ती पुष्प माल, कमर में बँधा नंदक खड्ग, कमरबन्द की झोली से झाँकता पाञ्चजन्य शंख, घुँघराली काली अलकावलि से आँखमिचौनी खेलते मकराकृत कुण्डल, बाहों में जड़ाऊ भुजबन्द और करों में रत्न कंकण, केसरिया अंगरखा और वैसी ही धोती, वैसा ही जरीदार गुथे हुये मुक्ता का रेशमी दुपट्टा, जो वायुवेग से पीछे की ओर फहरा रहा है। जैसे ही सागर की तरंगों पर दौड़ता हुआ अश्व आगे आया, द्वारिकाधीश ने मुस्कराते हुये दायाँ हाथ ऊपर उठाया - वैसे ही मीरा उतावली हो सम्मुख दौड़ पड़ी -"स्वामी! ..... मेरे प्राणनाथ! पधार गये आप ?" कहकर वह दौड़ती हुई ही अपने यहाँ गाये जाने वाले लोकगीत गाने लगी........

केसरिया बालमा ह्वालो नी, पधारो म्हाँरो देस.....।

अरे..... मैं केसर के घोल से प्रियतम के पथ का मार्जन करूँ,या मोतियन के चौक पुरा कर उनके स्वागत में रंगोली बनाऊँ? अरी सखी! पहले मैं गजमुक्ता के थाल भर कर अपने प्राणधन की नजर तो उतार लूँ! आज बरसों के पश्चात मेरे स्वामी घर पधारे हैं।" प्राणप्रियतम से मिलने की उत्सुकता में त्वराधिक्य के कारण मीरा जल में जा गिरती, इसके पूर्व ही घोड़े की लगाम खिंच गई, घोड़े के आगे के दोनों पैर ऊपर उठ गये। विद्युत की गति से वे अश्व से कूदे और दो सशक्त भुजाओं ने मीरा को आगे बढ़कर थाम लिया। मीरा उनका हाथ पकड़े हुए ही घर आई। आते ही मीरा ने पुकारा..... "ललिता! देख, देख प्रभु पधारे हैं! शीघ्रता पूर्वक भोग की तैयारी कर! वह हर्ष से बावली होकर गाने लगी...........

साजन म्हाँरे घर आया हो।
जुगाँ जुगाँ मग जोवती विरहिणी पिव पाया हो॥
रतन करौं निछावराँ ले आरती साजाँ हो।
मीरा रे सुख सागराँ म्हाँरे सीस बिराजाँ हो॥

मिलन की उछाह में वह दिन रात भूल जाती, भूल जाती कि वह साधक वेश में निर्धन जीवन बिता रही है। मीरा सेवक-सेविकाओं को राजसी प्रबन्ध की आज्ञा देतीं। वह कई-कई दिनों तक इस आनन्द में निमग्न रहती। अपने प्राण-सखा के साथ वह हँस-हँसकर झूले पर बैठी बातें करती न थकती। ऐसे में कोई वृद्ध संत आ जाते तो वह एकदम झूले से उठकर घूँघट डाल तिरछी खड़ी हो जाती। "घूँघट किससे किया माँ ? मैं तो आपका बालक हूँ।" वह कहते। तो मीरा श्यामसुन्दर की ओर ओट करके मुस्कुरा कर लाज भरे नयनों से झूले की तरफ संकेत कर देती। इन दिनों घर में एक महोत्सव सा छाया रहता। मीरा के उस भावावेश के आनन्द में सब आनन्दित रहते।

शंकर और किशन सेठों की दूकान पर काम करने जाते। उन्हें जो वेतन मिलता, उसी से साधु-सेवा और घर खर्च चलता। मीरा नित्य नियम-पूर्वक द्वारिकाधीश के मन्दिर में प्रातः-सांय दर्शन भजन करने पधारतीं। सांयकाल नृत्य-गान अवश्य होता। भजनों की चौपड़ी ललिता चमेली के पास ही रहती। एक दो बार तो वह भावावेश में समुद्र में जा गिरीं, सेविकाओं की सावधानी काम आई। उन्होंने समुद्र तट से दूर घर लेकर रहना प्रारम्भ किया। किन्तु मीरा के प्राण तो जैसे समुद्र में ही बसते थे। सूर्योदय, सूर्यास्त, पूर्णिमा का ज्वार और शुक्ल पक्ष की रात्रियों में सागर दर्शन उन्हें बहुत प्रिय था। कभी-कभी तो रात में भजन-कीर्तन का आयोजन भी समुद्र तट पर ही होता।

एक रात मीरा सागर तट पर बैठी थी। उसके पीछे ही कुछ दूर मंगला और किशन भी शीतल मंद बयार (पवन) के झोंकों के कारण नींद लेने लगे। तभी मीरा ने चौंककर देखा, कि सामने खड़ी एक रूपसी नारी झुककर आदर पूर्वक उसका कर स्पर्श करते हुए धीमे स्वर में बोली, "तनिक मेरे साथ पधारने की कृपा करें!" मीरा यन्त्रवत सी उठकर चल दी। जल के समीप पहुँच कर उसने अपनी दाहिनी हथेली बढ़ाई, तो मीरा

ने उसका आशय समझ उसका हाथ थाम लिया। उसका हाथ पकड़ वह जल पर भूमि की भांति चलने लगी। कुछ ही दूर चलने पर मीरा ने देखा कि जल में से द्वारिका की स्वर्ण परिखा ऊपर उठ रही है। द्वार के आस-पास का जल शांत था। मीरा ने अनुभव किया कि पाँवो के तले जल की कोमलता तो है पर न तो पाँव डूब रहे हैं और न ही वस्त्र गीले। समीप पहुँचते ही परिखा के स्फटिक द्वार के स्वर्ण कपाट संगीतमय ध्वनि करते खुल गये। भीतर प्रवेश करते ही मीरा आश्चर्य से स्तब्ध सी रह गई। भूमि स्वर्णमयी थी, और चारों ओर रत्नों से मण्डित भवन सुशोभित थे।

"मेरा नाम शोभा है। मैं पट्टमहिषी देवी वैदर्भी की सेवा में हूँ।" उस रूपसी ने आदरयुक्त वाणी में कहा। 'मुझे मीरा कहते हैं, यह तो आप जानती होंगीं।" मीरा ने कहा। "हाँ हुकम! आप मुझे यूँ आदर न दें, मैं तो मात्र एक दासी हूँ। स्वामी आपको स्मरण करके प्रायः आँखों में आँसू भर लेते हैं, इसलिए मैं स्वामिनी की आज्ञा से आपके श्री चरणों में उपस्थित हुईं।" "अपने स्वामी से जुड़ा प्रत्येक जन मेरे लिए पूज्य एवं प्रिय है। बड़ी कृपा की देवी ने मुझ तुच्छ दासी पर।" मीरा ने भावुक हो स्निग्ध स्वर में कहा।

वे दोनों हीरों से निर्मित जगमगाते द्वार में प्रविष्ट हो दाहिनी ओर मुड़ गईं। आगे विस्तृत चौक था, चारों ओर रत्न जटित भवन, बीचों-बीच विभिन्न पुष्पों और फलों से लदे उपवन। उस उपवन के मध्य पुष्करणी में कुमुदिनियाँ खिल रही थीं। आम्र की डालियों पर सुन्दर झूले और वृक्षों पर बैठे मयूर, पपीहा और दूसरे कई पक्षी। इतना वैभव, इतना सब दिव्य कि .... शब्द छोटे पड़ रहे थे। चारों ओर रूपवान दासियों की चहल पहल थी, सब उसे सम्मान देते चल रही थीं। मीरा ने तो मेवाड़ और चित्तौड़ का वैभव देखा था, पर यहाँ की तो साधारण दासी भी उन महारानियों से अधिक ऐश्वर्य और सौन्दर्य की स्वामिनी थी।

अनेक कक्ष-दालान पारकर दोनों एक सजे हुये कक्ष में पहुँचीं जहाँ एक ऊँचे रत्नजटित स्वर्ण सिंहासन पर सौन्दर्य, ऐश्वर्य और सौकुमार्य की साम्राज्ञी विराजमान थीं। शोभा ने पादपीठ पर सिर रख प्रणाम किया। मीरा जैसे ही प्रणाम के लिए झुकी, महादेवी वैदर्भी ने आगे झुककर मीरा को ह्रदय से लगा लिया - "आ गई तुम।" उन्होंने मीरा को अपने समीप बिठाना चाहा, पर मीरा पादपीठ पर ही देवी के चरणों को

गोदमें लेकर बैठ गईं। "सभी बहिनें तुमसे मिलना चाह रही हैं। स्वामी यदा -कदा तुम्हारी स्मृति में नयन भर लातें हैं। कठिन कठोर मर्यादाएँ बड़ी दु:खदायी होती हैं, बहिन! अतः मुझे ही सबकी रूचि जानकर मध्यम मार्ग शोधना पड़ा।" देवी ने मीरा का चिबुक स्पर्श कर दुलार पूर्वक कहा, "पहचानती हो मुझे? मैं तुम्हारी सबसे बड़ी बहन रूक्मिणी हूँ! आओ इधर सुखपूर्वक बैठें!" ऐसा कहकर हँसते हुये मीरा का हाथ थाम कक्ष में बिछे रेशमी गद्दे पर मसनद के सहारे वे विराजित हो गईं।

दासियाँ मधुर पेय लेकर उपस्थित हुईं। देवी रूक्मिणी की आज्ञा से एक पात्र मीरा ने भी उठा लिया और धीरे-धीरे पीने लगीं। किसी भी प्रकार वह समझ नहीं पाई कि वह पेय किस फल का रस था। खाली पात्र लौटाते हुये उसने आश्चर्य से देखा कि उसके हाथों की झुर्रियाँ समाप्त हो गई हैं, और वह स्वयं भी षोडश वर्षीया किशोरी के समान सुन्दर और सुकुमार हो गई है।

उसी समय सम्मुख द्वार से राजमहिषियों ने प्रवेश किया। देवी रूक्मिणी और मीरा उनके स्वागत में उठ खड़ी हुईं। देवी ने दो पद आगे बढ़कर सबका स्वागत करते हुये कहा, "पधारो बहिनों! अपनी इस छोटी बहिन से मिलिये।" आनेवाली महारानियों ने महादेवी के चरण स्पर्श किए और उन्हें आलिगंन दिया। मीरा ने भी भूमि पर सिर रखकर सबका एक साथ अभिवादन किया। सबके आसन ग्रहण करने के पश्चात देवी ने उनका परिचय कराते हुए बताया, "यह मेरी छोटी बहिन सत्यभामा, यह.......।" "अब बस सरकार! बाकी सबसे परिचय कराने का अधिकार मुझे मिले! यों भी आप हमारी ज्येष्ठा हो!" हँसते हुये मधुर स्वर में सत्यभामा ने कहा।" यह है देवी जाम्बवती, मेरी बड़ी बहिन!" हरित परिधान धारण किए संकोचशीला जाम्बवती ने मुस्कुरा कर चिबुक स्पर्श किया। "यह देवी भद्रा, यह मित्रविन्दा, यह सत्या, यह लक्ष्मणा और यह रविनन्दिनी कालिन्दी।" मुस्कराते, परिहास करते सब महारानियाँ क्रमवत अतिशय स्नेह से मीरा को मिलीं, किसी ने आलिंगन किया, किसी ने कहा, "बहिन! तुम्हें मिलने की बड़े दिनों से लालसा थी।" सबके हँसने से यूँ लगा जैसे बहुत सी चाँदी की नन्हीं घंटियाँ एक साथ टनटनाई हों, "और ये हमारी बहिनें सोलह सहस्त्र एक सौ!" मीरा ने सबको एकसाथ हाथ जोड़ -कर और मस्तक नवा कर प्रणाम किया। तभी लक्ष्मणा जी हँसती हुई

बोलीं, "सरकार ! हमारी बहिन इस तरह आभूषण और श्रृंगार के बिना रहे ......लगता है हमें ही वैराग्य का उपदेश करने कोई वैष्णवी आई हो !" सबने लक्ष्मणा की बात का अनुमोदन किया।

"इसे पृथक महल में भेजकर श्रृंगार धारण कराने की व्यवस्था की है मैंने !" देवी रूक्मिणी बोलीं। "तुम बोलती क्यों नहीं बहिन ! तनिक अपने मुख से बोलो तो मन प्रसन्न हो ! तुम्हारा नाम क्या है ?" देवी मित्रविन्दा ने स्नेहासिक्त स्वर से पूछा। "जी क्या निवेदन करूँ ? यह मीरा आपकी अनुगता दासी है। मुझे भी सेवा प्रदान कर कृतार्थ करें।" मीरा ने सकुचाते हुये कहा। "तो हमारे दुलार से, स्नेह से, तुम्हें कृतार्थता का बोध नहीं हुआ बहिन ?" सत्यभामा जी हँसी। मीरा ने अचकचाकर पलकें उठाईं, "सरकार! आप सबके कृपा अनुग्रह से दासी धन्य-कृतार्थ हुई है।"

तभी सैरन्ध्री मीरा को श्रृंगार हेतु लेने आ गई। मणि प्रदीप्त कक्ष में मीरा को सुगन्धित जल से स्नान करा, अगुरू धूप से केश सुखाये। अमूल्य दिव्य वस्त्र अलंकार धारण करा कर सुन्दर रीति से केश प्रसाधन किया। उसका सौन्दर्य द्वारिकाधीश की महिषियों से तनिक भी न्यून नहीं लग रहा था। सोलह श्रृंगार से सुसज्जित कर दासियों ने उन्हें देवी जाम्बवती के पास बिठा दिया।

"अहा ! देखो कितनी सुन्दर लग रही है हमारी बहिन !" सत्या ने मीरा का चिबुक उठाकर ऊपर दिखाया। मीरा तो संकोच की प्रतिमा सी पलकें झुकाई बैठी रही जैसे अभी-अभी विवाह मण्डप से उठकर आई हो। थोड़ी ही देर में संगीत और नृत्य का समाज जुट गया। सब महारानियाँ बारी से नृत्य करने लगीं। सत्यभामा ने मीरा को अपने साथ ले लिया। कितने समय तक यह नृत्योत्सव चलता रहा। इसके पश्चात दासियाँ पुनः पेय लेकर प्रस्तुत हुईं, और उसके बाद भोजन की तैयारी। इतने राग-रंग में मीरा को प्रसन्नता तो हुई पर मन ही मन वह प्राणप्रियतम के दर्शन के लिए आकुल थी। भोजन के समय भी प्रभु को वहाँ न पा उससे रहा नहीं गया। मीरा ने सकुचाते हुये जाम्बवती से पूछ ही लिया, "प्रभु के भोजन से पूर्व ही हम भोजन कर लें ?"

"स्वामी का भोजन आज माता रोहिणी के महल में है। अपने समस्त सखाओं एवं परिकर के साथ वे आज माता रोहिणी को सुख दे रहे होंगें।"

हास-परिहास में सबने मिल कर भोजन लिया। और उसके पश्चात् देवी रूक्मिणी को प्रणाम कर सभी महारानियाँ विदा हुईं। "काञ्चना ! अपनी स्वामिनी को इनके अपने महल में ले जाओ!" देवी रूक्मिणी ने एक नव-वयादासी से कहा। "जैसी आज्ञा महादेवी!" देवी रूक्मिणी की आज्ञा पाकर मीरा संकोच पूर्वक उठ खड़ी हुईं। मीरा ने महादेवी को प्रणाम किया तो उन्होंने ह्रदय से लगाकर उसे स्नेह से विदा किया। दासी पथ बताते चली। मीरा ने देखा कि इस महल का रास्ता रूक्मिणी के महल के अन्तर्गत ही था पर फिर भी कितने कक्ष और दालानों को उन्होंने राह में पार किया। स्थान-स्थान पर मीरा का फूलों से स्वागत हुआ जो उसे पद-पद पर संकुचित कर रहा था।

वह सोचती -"मुझ नाचीज के लिए इतना समारम्भ!" पर मीरा को द्वारिकाधीश की महारानियों का परस्पर स्नेह और निरभिमानिता प्रशंसनीय लगी और दूसरी ओर दासियों की विनय युक्त सेवा तत्परता और सावधानी भी सराहनीय थी।

एक रत्नजटित कौशेय वस्त्रों से आच्छादित हिंडोले पर मीरा को काञ्चना ने बिठा दिया। कोई दासी चंवर, कोई पंखा करने लगी तो कोई पेय ले उपस्थित हुई। एक लगभग तीस वर्ष की दासी ने प्रणाम कर निवेदन किया, "सरकार! दासी का नाम शांति है। मेरी अन्य बहिनें प्रणाम की आज्ञा चाहती हैं।" मीरा की इंगित करने पर सब समक्ष आ प्रणाम करती और शांति सबका नाम और काम बताती जाती। मीरा को शांति का स्वर, जाना पहचाना सा लग रहा था। वह सोचने लगी कि "इसे कहाँ देखा है?" और अचानक पुरातन स्मृति उभर आई और वह मन ही मन बोल उठी -"अरे , यह तो मेरी धाय माँ लग रही हैं।" शान्ति ...... तुम मेरी .....?" मीरा ने वाक्य अधूरा छोड़कर ही शान्ति की तरफ देखा। शान्ति ने स्वीकृति में सिर हिलाकर मुस्कुरा दी। मीरा ने पूछा, "और काञ्चना ही मिथुला थी?" "हाँ सरकार!" "तो क्या चमेली, केसर, मंगला आदि सब..........?" जी सरकार! जब नित्यधाम से प्रभु अथवा परिकर में से कोई भी जगत के धरातल पर आता है तो उसे अकेला नहीं भेजा जाता। दयामय प्रभु सहायकों के रूप में कई निज जनों को साथ भेजते हैं। प्रधानता भले एक की रहे, परन्तु अन्तर्जगत से पूरा परिकर अवतरित होता है। उनसे जुड़कर संसार के हजारों जन कल्याण - पथगामी होते हैं।

काञ्चना को अपनी स्वामिनी महादेवी वैदर्भी का वियोग दुस्सह था, अतः उसे शीघ्र बुला लेने की योजना थी। आठों पट्टमहिषियों ने आपको अपनी एक-एक दासी सेवा सहायता के लिए प्रदान की।" "और तुम ?" मीरा ने आश्चर्य से मुस्कराते हुए पूछा। "मैं महादेवी जाम्बवती जी की सेविका हूँ। सरकार .... यह आपका ही महल है और यह सब आपकी आज्ञा अनुवर्तिनी दासियाँ। आप इन्हें आज्ञा प्रदान करने में तनिक भी संकोच न करें।"

मीरा करूणासागर प्रभु की योजना, उनकी अपने भक्तों को पग पग पर संभालने की सोच से भावुक भी थी और आश्चर्य युक्त भी। फिर वह अपनी कृतज्ञता जताते हुई बोलीं, "शांति! इस समस्त वैभव के साथ साथ तुम भीपट्टमहिषी का प्रसाद हो मेरे लिए।" "धृष्टता क्षमा हो सरकार! तो क्या..... स्वामी भी .....?" शांति ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"हाँ शांति! जीव को जो भी मिलता है, भले प्रभु ही हों, सब कुछ देवी के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है।" मीरा ने एक ही वाक्य में द्वारिका की महिषियों की अनुगत्यमयी प्रीति पूर्वक भक्ति का सार बताते हुए कहा।

उसी समय द्वार पर प्रहरी ने पुकार की - "अखिल ब्रह्माण्ड नायक, यदुनाथ द्वारिकाधीश पधार रहे हैं!"

एकाएक चारों ओर हलचल सी मच गई। दो दासियों ने मीरा से कक्ष में चलने की विनय की। वे जिस कक्ष में उन्हें ले गईं, वहाँ सात्विकता की ही प्रधानता थी। कक्ष की पूर्ण साज-सज्जा श्वेत थी। केवल मीरा के वस्त्राभूषण ही भिन्न रंग के कारण चमक रहे थे। वहाँ शांत और सुखद प्रकाश था। पलंग पर टंगे श्वेत चंदोवें में मुक्ता की झालरें लटक रही थीं। द्वार, पलंग, भूमि और नाना उपकरण स्फटिक, हीरे और मोतियों से बने थे। श्वेत मल्लिका पुष्पों और बीचों-बीच गूँथे श्वेत कमल सम्पूर्ण कक्ष को सात्विक और सौरभमयी बना रहे थे। दासियाँ प्रणाम कर बाहर चली गईं तो मीरा स्तब्ध सी मन्त्रमुग्ध हो चारों ओर देखने लगी............।

तभी द्वार-रक्षिका ने सावधान किया। वह चौंककर खड़ी हो गई। मीरा की दृष्टि द्वार पर उस भुवन वन्दनीय चरणों के स्वागत के लिए गड़ सी गई। उसके प्राण अपने प्राणप्रियतम के दर्शन पर बलिहार होने को आतुर ....। धीरमन्द गति से आते वे चरण अरविन्द द्वार पर थोड़ा

थमे। मीरा अपलक नीचे दृष्टि किए अपने प्राणनाथ के चरणों के दर्शन कर अपने जन्मों की साध पूर्ण कर रही थी। पदत्राण (पादुकायें) सम्भवतः द्वार पर सेविकाओं ने उतार लिए होंगे। जैसे ही प्रभु थोड़ा और सम्मुख बढ़े, मीरा के ह्रदय के आवेग, संकोच और लज्जा के द्वन्द ने उसकी साँस की गति बढ़ा दी और अब तुलसी, कमल, चन्दन, केशर और अगुरू के सौरभ से मिश्रित देह सुगन्ध ने उसे अवश सा कर दिया। वह प्राणधन के चरण स्पर्श की चेष्टा में वह गिरने ही लगी थी कि सदा की आश्रय सबल बाहुओं ने संभाल लिया। कितने दिन, कितने मास, और कितने ही वर्ष प्रियतम का सामीप्य सुख सौभाग्य मीरा का स्वत्व बना, वह नहीं जान पाई। जहाँ देश, काल दोनों ही सापेक्ष हैं, वहाँ यह गिनती नगण्य हो जाती है।

आँख खुली तो स्वयं को मीरा ने सागर तट पर पाया। वही पिघले नीलम सा उत्ताल लहरें लेता हुआ सागर और मीरा के ह्रदय में सुलगता हुआ वही विरह का दाह! "बाईसा हुकम! उषाकाल हो गया। पधारे अब! आज रात्रि तो सबकी ठंडी हवा में यहीं आँख लग गई, पता ही नहीं लगा।" मंगला घुटनों के बल सम्मुख बैठकर कह रही थी।

"मैं तो द्वारिका में थी। यहाँ कैसे आ गई? यह कौन सा देश है?" मीरा ने व्याकुलता से इधर-उधर देखते हुये कहा, जैसे पाँवो के तले से धरती ही खिसक गई हो! "यह द्वारिका ही है हुकम! और मैं आपकी चरणदासी मंगला हूँ। अब पधारने की कृपा करें!" मंगला ने बाहँ पकड़ कर उन्हें उठाया। ठण्डी रेत में बैठे-बैठे पाँव अकड़ गये थे, उसने दबाकर उनकी जकड़न दूर की।

"मंगला मैं द्वारिकाधीश से, उनकी महारानियों से मिली। वहाँ का वैभव अतुलनीय है और पट्टमहिषी वैदर्भी का सौहार्द, स्नेह अपनत्व अकथनीय है। वह...... वह .... देश कैसा सुहावना है........!" मीरा ने हल्के स्वर में कहना आरम्भ तो किया, पर अंत में वाक्य अधूरा छोड़कर वाणी ह्रदय में दिव्य द्वारिका, वहाँ के सुगंधित एवं संगीतमय वातावरण, स्नेहाभिसिक्त व्यवहार, वहाँ के अनुभव की सरसता में समा गयी।

दिव्य द्वारिका के दर्शन के पश्चात मीरा के लिए स्वभाविक था कि उसी रस दर्शन की फिर से अनुभूति की लालसा रखना, उसकी फिर से प्रतीक्षा करना। जैसे वृन्दावन में प्रायः वह नित्य ही रात्रि में दिव्य वृन्दावन

के दर्शन करती थी, यहाँ भी प्रत्येक सूर्य अस्त के समय सागर तट पर खड़े मीरा को फिर से दिव्य द्वारिका के उस सुगन्धित वातावरण में प्रवेश पाने की प्रतीक्षा होती - पर सब कुछ तो ऐसा नहीं होता जैसा हम चाहते हैं।

जहाँ इधर श्री द्वारिका धाम में मीराबाई पल-प्रति-पल विरह में उस क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी, जब वह अपने जीवन धन प्राणाराध्य श्री द्वारिकाधीश का पुनः सानिध्य प्राप्त कर पायेगी ....तो उधर व्यवहारिक जगत में मेड़ता और चित्तौड़ पर संकट के घनघोर बादल मँडरा रहे थे।

मीराबाई के चित्तौड़ -परित्याग के बाद एक-न-एक संकट के बादल सामने आते ही रहे। बादशाह अकबर ने योजनाबद्ध रीति से चित्तौड़ पर हमला बोल दिया। अकबर का सैन्य बल अधिक होने से 1568 में चित्तौड किले पर मुगल आधिपत्य स्थापित हो गया। मेड़ता के राव जयमल चित्तौड किले की रक्षा हेतु लड़ते हुए अद्भुत वीरगति को प्राप्त हुए। किले पर से भगवा ध्वज के उतरते ही राजपूती गौरव धूलि-धूसरित हो गया। सुख-शांति-समृद्धि को दुःख-दरिद्रता-दीनता ने डस लिया। किसी साधू के कहने पर जन-मानस में यह विचार तेजी से बुदबुदाने लगा कि भक्तिमति मेड़तणी कुँवराणीसा मीराबाई को सताये जाने का ही दुष्परिणाम हैं। अब तो यदि महिमामय मीराबाई वापिस मेवाड़ पधारे तो ही रूठे हुये देव संतुष्ट हों!

चित्तौड़ के राजपुरोहित जी के साथ राठौड़ों के पुरोहित, मेवाड़ के प्रथम श्रेणी के दो उमराव, जयमल जी के दोनों पुत्र हरिदास और रामदास और कई राठौड राणावत राजपूत सरदार एकत्रित हो एक दिन मीरा के निवास-स्थान का पता पूछते हुए द्वारिका जी पहुँचे।

मेवाड़ के राजपुरोहित जी ने मीराबाई को चित्तौड पर आई विपदा का चित्रण करते हुए बताया, "आप के वहाँ से आने के पश्चात धीरे-धीरे राज्य में अकाल पड़ गया। प्रजा दीन-हीन एवं राजकोष रिक्त है। बड़े-बूढ़ों का कहना है कि राज्य की यह अनर्थ कुँवरानीसा मेड़तणीजी को सताने और उनके चित्तौड़ परित्याग के कारण बिन न्यौता आया है। इसलिए मैं आपसे हाथ जोड़ निवदेन कर रहा हूँ कि आप वापिस पधारें तो मेवाड़ की धरा पुनः शस्य-श्यामला हो उठे।" राजपुरोहित जी ने सिर

से साफा उतारकर भूमि पर रखा - "मेरी इस पाग की लाज आपके हाथ में है..... हमें सनाथ करें......हम आपके वहाँ से आ जाने से अनाथ हो गए हैं......।" मेड़ते के राजपुरोहित उठकर कक्ष में गए। मीरा ने भूमि पर सिर रख उन्हें प्रणाम किया। पुरोहित जी के साथ ही हरिसिंह जी और रामदास जी भी कक्ष में आये। उन्होंने मीरा को प्रणाम किया। सबने आसन ग्रहण किया। सबके मुख-मलीन थे। राजपुरोहित जी ने कहा - "बाईसा हुकम ! केवल आपका श्वसुर कुल ही आपदाग्रस्त नहीं है, पितृकुल भी तितर-बितर हो गया है। एक बार किसी साधू ने कहा था, की मेवाड़ में किसी साधू के अपमान हुआ हैं जिसके कारण यह विपत्ति बरस पड़ी हैं।" महाराज ने भी हाथ जोड़कर प्रणाम के साथ अर्ज-विनय की है।" आप वापिस पधारें तो सबकी विपत्ति दूर हों।"

"पुरोहित जी महाराज !" मीरा ने उदास दुखित स्वर में कहा - "मनुष्य केवल अपने ही कर्मो का फल पाता है। चित्तौड़ और मेड़ता की विपदगाथा सुनकर जी दुःखा, किन्तु सच मानिये, यह मेरे कारण नहीं हुआ। मुझे कभी लगा ही नहीं कि कोई दुःख गया और आया भी हो, तो मुझे आँख उठाकर देखने का समय नहीं था, तब वह दुःख कैसे आया, किसके द्वारा आया, यह सब मुझे कैसे मालुम होता ? यह वहम आप दोनों ही ओर के महानुभाव अपने मन से निकाल दें ....और मेरे लौटने की बात कैसे संभव है? कभी आप लोगो ने अपने ससुराल में सुख-पूर्वक रहती हुई अपनी बहिन-बेटी को कहा - "कि अब तुम पीहर चलो तो सब सुखी हो जायँ?".....अब इस दिव्य भूमि पर, धाम में आकर कहीं लौटना होता है भाई?" कहते हुए मीरा की आँखों से अश्रुबिंदु झलक पड़े।

"हरिदास ! रामदास ! क्षत्राणी तलवार की भेंट चढ़ने के लिए ही पुत्र को जन्म देती हैं बेटा ....! तुम्हारे पिता, काका, भाई युद्ध में मारे गए, इसमें अनोखी बात क्या हुई ? वीरों को जागतिक सुख नहीं, अपना धर्म और कर्तव्य प्रिय होता है.... ! तुम्हारे पिता ने मुझसे अनेक बार युद्ध में वीरगति प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त की थी, तुम्हें तो अपने पिता पर गौरव होना चाहिए।"

"सम्यक कर्तव्य-पालन का सुख ही सच्चा सुख है, अन्यथा देह तो प्रारब्ध के अधीन है। इसे तो वह सब सहना ही है, जो उसका प्रारब्ध उसे दे.........राजपूत की जीवन-निधि धन-धरा-परिवार नहीं है, ईमान ही

उसका कर्तव्य है। अबलाओं की भाँति रोना क्षत्रिय को शोभा नहीं देता। उठो और प्रजा की सेवा में जुट जाओ, जिसके लिए तुम्हारा जन्म हुआ है।" मीरा ने साथ चलने की बात को टालते हुए कहा, "कुछ दिन मुझे विचार करने का समय प्रदान करें। तब तक आप सभी सरदार द्वारिकाधीश के दर्शन एवं सत्संग का लाभ उठावें।"

मीरा ने उन्हें कह तो दिया कि उसे सोचने का समय प्रदान करें पर उसके अन्तर्मन में एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ। वह करूणावरूणालय भगवान को करूणा की दुहाई देने लगी...... "यहाँ तक आने के पश्चात मैं वापिस लौट जाऊँ ..... यूँ शरण में आये को लौटा देना तो आपका स्वभाव नहीं ठाकुर! फिर ऐसी परिस्थितियाँ क्यूँ उत्पन्न कर रहे हो, जो आपके स्वभाव में ही नहीं .... मैं तो आपकी जन्म-जन्म की दासी हूँ ......मुझे दिशा दिखाओ .....हे नाथ!" मीरा करूणा की गुहार लगाते ह्रदय का क्रन्दन स्वरों में उड़ेलने लगी..........

करूणा सुनो, .श्याम मोरी, मैं तो होये रही चेरी तोरी ..।

मीरा रो रो कर अपने आराध्य से प्रार्थना करने लगी - "इतनी निष्ठुरता तुम में कहाँ से आ गयी हे दयाधाम! क्यों मुझे अपने चरणों से दूर कर रहे हो?....... बहुत भटकी हूँ। अब तो इस देह में भटकने का दम भी नहीं रहा है। और न ही उन महलों के राजसी वैभव में बंद होकर व्यर्थ चर्चा में उलझने की हिम्मत हैं। अब मुझे अपने से दूर मत करो, मत करो.............।"

रात्रि में अनायास ही किसी का स्पर्श पाकर वह जग पड़ी। काञ्चना सम्मुख खड़ी थी। मीरा का मन उसे देख उत्साह से हुलस उठा। उसने पूछना चाहा कि क्या महादेवी ने मुझे याद फरमाया है, किन्तु आस-पास सोई हुई दासियों का विचार करके वह चुप रही। वह काञ्चना का हाथ थामें हुए बाहर आयी। घर के पीछे ही कुआँ और छोटी सी बगिया थी, वही आकर कांञ्चना कुएँ की जगत पर बैठ गयी और मीरा को भी बैठने का संकेत किया। "मुझे महादेवी रूक्मिणी ने भेजा हैं कि आपको मैं आपके पिछले जन्म का वृत्तान्त बता दूँ , जिससे आपकी घबराहट, दुःख कुछ कम हो जायें।" ......मीरा ने मौन दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"आप व्रजकुल की माधवी हैं।" उसने मीरा की ओर देखा। उसका

अभिप्राय समझकर मीरा ने स्वीकृति में सिर हिला दिया। काञ्चना आगे बतलाने लगी - "सूर्यग्रहण के समय जब समस्त ब्रजवासी, बाबा, मैया के साथ देवी वृषभानुजा श्री राधारानी कुरुक्षेत्र पधारीं, तब उनके साथ आप भी थीं। कुछ समय कुरुक्षेत्र में रहकर सम्पूर्ण व्रज-शिविर को साथ लिये-लिये प्रभु द्वारिका पधारे। जहाँ अभी गोपी तलाई का स्थान हैं, वहीं सभी जन ठहरे। देवी वृषभानुजा, उनकी सखियाँ, गोपालों और व्रज के जन-जन का अनन्य प्रेम और असीम सरलता देखकर द्वारिका के लोग और महारानियाँ मन-ही-मन न्यौछावर थीं। वे एक-एक दिन अपने यहाँ सबको प्रीति भोज के लिये आमन्त्रित करना चाहती थीं, परन्तु संख्या की बहुलता के कारण सम्भव नहीं लगता था, अतः यह निश्चित हुआ कि सर्वप्रथम एक-एक दिन आठों पटरानियाँ भोजन का आयोजन करें, एक दिन महाराज उग्रसेन और कुछ दिन ऐसे ही प्रधान-प्रधान सामंतो के यहाँ। अंत में सौ-सौ महारानियाँ मिलकर एक-एक दिन भोजन का आयोजन करें। निश्चय के अनुसार ही बृजवासियों का भोजन और स्नेहाभिसिक्त स्वागत सत्कार हुआ।

श्री किशोरी जू के शील, सदाचार, सरलता और सौन्दर्य पर महारानी वैदर्भी जी ऐसे मुग्ध हुईं, जैसे अपने ही प्राणों के साथ देह का लगाव होता है। वे बार-बार उन्हें आमंत्रित करतीं, अपने ही सुकुमार हाथों से रंधन कार्य करतीं और अतिशय प्रेम एवं अपार आत्मीयता पूर्वक अपने हाथों से जिमाती। कभी-कभी दोनों एक ही थाली में भोजन करतीं और प्रभु की बातें चर्चा करते हुए ऐसी घुल-मिल जातीं कि लगता जैसे दो सहोदरा बहिनें बहुत काल पश्चात मिली हों। भानुनन्दिनी अकेली नहीं पधारतीं थीं, उनके साथ दो-चार सखियाँ अवश्य ही होतीं। एक बार उनके साथ आप भी पधारी थीं। द्वारिकाधीश की पट्टमहादेवी साक्षात लक्ष्मीरुपा वैदर्भी के महल का असीम ऐशवर्य और अतुल वैभव देखकर एक-दो क्षण के लिए आपके मन में भी उस वैभावानंद की सुखानुभूति प्राप्त करने की और द्वारिकाधीश की महारानी बनने की स्फुरणा उभरी। थोड़ी ही देर में वह सब भूल कर आप श्री किशोरी जू के साथ वापिस व्रज-शिविर में लौट गयीं, किन्तु काल के अनंत विस्तीर्ण अंक में आपका वह संकल्प जड़ित हो गया। अपनी उस अभिलाषा की पूर्ति की एक झाँकी आप कुछ दिन पूर्व पा चुकी हैं। अब जो यत्किंचित आपकी

आकांक्षा शेष बाकी रही है, वह प्रसाद भी पाकर आप शीघ्र ही किशोरी जू की नित्य सेवा में दिव्य वृन्दावन में पधार जायेंगी।"

मीरा, पलकें झुकाए अपने पूर्व जन्म का वृतान्त और अपनी क्षणिक अभिलाषा का ब्यौरा श्रवण कर रही थी। उसकी आँखों से धीरे-धीरे स्त्रवित होती हुई अश्रुओं की धारा उसके वस्त्रों को भिगो रही थी। पर थोड़ी हिम्मत जुटाकर मीरा ने रूँधे कण्ठ से पूछा, "क्या मुझे द्वारिका से मेवाड़ लौटना होगा ?...........अब मैं इस देह को और नहीं रखना चाहती। इस देह के रहने से, इसके सम्बन्धों से ही ये जंजाल उठ खड़े हो रहे हैं।"

"नहीं अब विलम्ब नहीं। कुल ......बस पांच-सात दिन और।" काञ्चना मुस्कुराई, "आप दिव्य द्वारिका के सच्चिदानन्द महल में पधार जायेंगी।....किन्तु देह नहीं छूटेगी, केवल आपका स्वरूप ही परिवर्तित होगा ....। यही समाचार देने मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ। अब आज्ञा हो।" ......कहते हुए काञ्चना उठ खड़ी हुई।

मीरा ने उठकर काञ्चना के दोनों हाथ थाम लिये - "महादेवी रूक्मिणी बहिन के चरणों में मेरी ओर से प्रणाम निवेदन करना। बड़ी कृपा की, जो तुम आ गयी काञ्चना ! तुम्हारे आगमन से ह्रदय को शीतलता मिली, जैसे जले घाव पर शीतल लेप लगा हो .....अब ह्रदय में कोई दुविधा नहीं ....सब स्वच्छ और दूर तक नजर आ रहा है। सभी महारानियों को और प्रभु को मेरा प्रणाम निवेदन करना।"- मीरा ने शांत स्वर से कहा।

प्रणाम करके काञ्चना चल दी। कुछ दूर तक उसकी देह का प्रकाश और झिलमिलाते हुये पीत वस्त्र दिखलायी देते रहे, फिर वह लोप हो गई। मीरा धीमे और छोटे पग भरती अपने कक्ष में वापिस लौट आई। उसका मनचाहे शांत था, बहुत से प्रश्नों का समाधान हो गया था, पर फिर भी जीव की अपूर्ण और स्वभाविक अभिलाषाओं का चिन्तन कर और उनकी पूर्ति के लिए करूणापूर्ण प्रभु की चेष्टा का मनन कर वह आश्चर्यचकित भी थी।

मीरा ने पाँच -छः दिन तक कोई भी ठोस उत्तर राजपुरोहित जी को नहीं दिया। वह तो काञ्चना के द्वारा इंगित किए गए उस प्रतीक्षित पल की बाट जोह रही थीं। उसे कभी भी वापिस चित्तौड़ लौटकर जाना

ही नहीं था। वह तो ऐसे ही कुछ दिन और बिता रही थीं। पर राजपुरोहित जी को जब कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिला तो उन्होंने अनशन करने का निश्चय कर लिया। राठौड़ों के पुरोहित जी भी उनके समीप साथ देने बैठ गये। अनशन की बात सुनकर मीरा ने कई प्रकार से उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, पर उन्होंने रीते हाथ लौटने की अपेक्षा मरना श्रेयस्कर समझा। दो दिन और निकल गये। ब्राह्मणों को यूँ भूखे मरते देख वह व्याकुल हो उठीं। अंत में मीरा ने उन्हें आश्वासन दिया - "मैं प्रभु से पूछ लूँ। वे आज्ञा दे देंगें तो मैं आपके साथ चलूँगी।"

उस समय द्वारिकाधीश की मंगला आरती हो चुकी थी, और पुजारी जी द्वार के पास खड़े थे। दर्शनार्थी दर्शन करते हुये आ जा रहे थे। राणावतों और मेड़तियों के साथ मीरा मंदिर के परिसर में पहुँचीं। मीरा ने प्रभु को प्रणाम किया। पुजारी जी मीरा को पहचानते थे और उन्हें यह विदित था कि इन्हें लिवाने के लिए मेवाड़ के बड़े-बड़े सामन्तों सहित राजपुरोहित आयें हैं। चरणामृत और तुलसी देते हुये उन्होंने पूछा -"क्या निश्चित किया? क्या जाने का निश्चय कर लिया है? आपके बिना द्वारिका सूनी हो जायेगी।" "हाँ जी महाराज! वही निश्चित नहीं कर पा रही! अगर आप आज्ञा दें तो भीतर जाकर प्रभु से ही पूछ लूँ!" "हाँ हाँ! पधारो बा! आपके लिए मन्दिर के भीतर जाने में कोई भी बाधा नहीं!"- पुजारी जी ने अतिशय सम्मान से कहा।

पुजारी जी की आज्ञा ले मीरा मन्दिर के गर्भगृह में गईं। हृदय से प्रभु को प्रणाम कर मीरा इकतारा हाथ में ले वह गाने लगी........

मीरा को प्रभु ....,साँची दासी बनाओ.........।

अंतिम पंक्ति गाने से पूर्व मीरा ने इकतारा मंगला के हाथ में थमाया और गाती हुईं धीमें पदों से गर्भ गृह के भीतर वह ठाकुर जी के समक्ष जा खड़ी हुईं। वह एकटक द्वारिकाधीश को निहारती बार-बार गा रही थीं -

"मिल बिछुरन मत कीजे।"

एकाएक मीरा ने देखा कि उसके समक्ष विग्रह नहीं ब्लकि स्वयं द्वारिकाधीश वर के वेश में खड़े मुस्कुरा रहे हैं। मीरा अपने प्राणप्रियतम

के चरण स्पर्श के लिए जैसे ही झुकी, दुष्टों का नाश, भक्तों को दुलार, शरणागतों को अभय और ब्रह्माण्ड का पालन करने वाली सशक्त भुजाओं ने आर्त, विह्वल और शरण माँगती हुई अपनी प्रिया को बन्धन में समेट लिया। क्षण मात्र के लिए एक अभूतपूर्व प्रकाश प्रकट हुआ, मानों सूर्य-चन्द्र एक साथ अपने पूरे तेज के साथ उदित होकर अस्त हो गये हों।

इसी प्रकाश में प्रेम-दीवानी मीरा समा गई। उसी समय मंदिर के सारे घंटे-घड़ियाल और शंख स्वयं जोर-जोर से एक साथ बज उठे। कई क्षण तक वहाँ पर खड़े लोगों की समझ में नहीं आया कि क्या हुआ। एकाएक चमेली "बाईसा हुकम !" पुकारती मंदिर के गर्भ गृह की ओर दौड़ी। पुजारी जी ने सचेत होकर हाथ के संकेत से उसे रोका और स्वयं गर्भ गृह में गये। उनकी दृष्टि चारों ओर मीरा को ढूँढ रही थी। अचानक प्रभु के पाशर्व में लटकता भगवा-वस्त्र खंड दिखाई दिया। वह मीरा की ओढ़नी का छोर था। लपक कर उन्होंने उसे हाथ में लिया। पर मीरा कहीं भी मन्दिर में दिखाई नहीं दीं। निराशा के भाव से भावित हुए पुजारी ने गर्भ गृह से बाहर आकर न करते हुए सिर हिला दिया। उनका संकेत समझ सब हतोत्साहित एवं निराश हो गये।

"यह कैसे सम्भव है? अभी तो हमारे सामने उन्होंने गाते हुये गर्भ गृह में प्रवेश किया है। भीतर नहीं हैं तो फिर कहाँ हैं? हम मेवाड़ जाकर क्या उत्तर देंगें।" - वीर सामन्त बोल उठे।

"मैं भी तो आपके साथ ही बाहर था। मैं कैसे बताऊँ कि वह कहाँ गईं? स्थिति से तो यही स्पष्ट है कि मीरा बाई प्रभु में समा गईं, उनके विग्रह में लीन हो गईं।" पुजारी जी ने उत्तर दिया। पर चित्तौड़ और मेड़ता के वीरों ने पुजारी जी की आज्ञा ले स्वयं गर्भ गृह के भीतर प्रवेश किया। दोनों पुरोहितों ने मूर्ति के चारों ओर घूम कर मीरा को ढूँढने का प्रयास किया। सामन्तों ने दीवारों को ठोंका, फर्श को भी बजाकर देखा कि कहीं नीचे से नर्म तो नहीं! अंत में जब निराश होकर बाहर निकलने लगे तो पुजारी ने कहा, "आपको बा की ओढ़नी का पल्ला नहीं दिखता, अरे बा प्रभु में समा गई हैं।" दोनों पुरोहितों ने पल्ले को अच्छी तरह से देखा और खींचा भी, पर वह तनिक भी खिसका नहीं, तब वह हताश हो बाहर आ गये। इस समय तक ढोल-नगारे बजने आरम्भ हो गये थे। पुजारी जी ने भुजा उठाकर जयघोष किया - "बोल, मीरा माँ की जय! द्वारिकाधीश की

जय! भक्त और भगवान की जय!" लोगों ने जयघोष दोहराया। तीनों दासियों का रूदन वेग मानों बाँध तोड़कर बह पड़ा हो। अपनी आँखें पौंछते हुये दोनों पुरोहित उन्हें सान्तवना दे रहे थे। इस प्रकार मेड़ता और चित्तौड़ की मूर्तिमन्त गरिमा अपने अराध्य में जा समायी।

नृत्यत नुपूर बाँधि के गावत ले करतार।
देखत ही हरि में मिली तृण सम गनि संसार॥
मीरा को निज लीन किय नागर नन्दकिशोर।
जग प्रतीत हित नाथ मुख रह्यो चुनरी छोर॥

(समाप्त)

सारांश:- पुस्तक: "मीरा चरित"
लेखिका:- सौभाग्य कुँवरी राणावत
प्रकाशक:- मृत्युञ्जय सिंह सिसोदिया,45, रविन्द्र पथ, पो. बड़नगर, ज़िला उज्जैन